सत्क्रियासार- दीपिका

एवं

संस्कार-दीपिका

श्रील गोपालभट्ट गोस्वामीपाद कृता

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति (रजि.)

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

मथुरा

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

सत्क्रियासार-दीपिका

एवं

संस्कार-दीपिका

(श्रीकृष्णचैतन्यसम्प्रदायानुमोदिता वैष्णव-दशसंस्कारपद्धतिः)

श्रीगौरपार्षदप्रवरेण

श्रीमद्गोपालभट्टगोस्वामिना

कृता

जगद्गुरु ॐ विष्णुपादाष्टोत्तरशतश्री-
श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती-गोस्वामि-प्रभुपादानुकम्पित-
प्रियपार्षदप्रवर-"श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितेः" प्रतिष्ठाता-
नित्यलीलाप्रविष्ट-ॐ विष्णुपाद-अष्टोत्तरशत श्री-
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव-गोस्वामि-महाराजानुग्रहीत-

त्रिदण्डिस्वामिना

श्रीमद्भक्तिवेदान्त-नारायण-महाराज-

अनुदिता-सम्पादिता च

[सेवानुकूल्यम्—

प्रकाशक—

श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी 'विद्यालंकार'

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा ।

प्रथम संस्करण—

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीकी तिरोभाव तिथि

सोमवार, ६ श्रावण, कृष्णपक्ष, सम्वत् २०५२, गौराब्द ५०९

प्राप्तिस्थान—

(१) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ० प्र०) दूरभाष : ४०६४५३

(२) श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, नदीया (प० बं०)

(३) श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प० बं०)

(४) श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन, मथुरा (उ०प्र०)

(५) श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८ हलधर बागान लेन कलकत्ता-४

(६) श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)

(७) श्रीकेशवगोस्वामी गौड़ीय मठ, शिलिगुड़ी, दार्जिलिंग (प० बं०)

(८) श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, तुरा, वेस्ट गारो हिल्स (मेघालय)

(९) श्रीगोलोक गंज गौड़ीय मठ, गोलोक गंज, ग्वालपाड़ा, (आसाम)

(१०) श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ० प्र०)

(११) श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी, (दार्जिलिंग)

(१२) श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो० वासुगाँव, (कोकड़ाझार) (आसाम)

भूमिका

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके आदेशानुसार श्रीलसनातन गोस्वामीने 'श्रीहरिभक्तिविलास'-नामक एक वैष्णव स्मृति-ग्रन्थका संकलन किया। वर्तमान 'श्रीहरिभक्तिविलास'-ग्रन्थ श्रीगोपालभट्टगोस्वामी प्रभुके द्वारा सम्पादित है। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने 'सत्क्रियासार-दीपिका' नामक दशसंस्कार-पद्धति और 'संस्कार-दीपिका' नामक 'वेषाश्रय-पद्धति'-ग्रन्थकी भी रचना की है।

अवैष्णव-स्मृति लेखक बन्द्यघाटीवाले रघुनन्दनभट्टाचार्य महाशयने 'श्रीहरिभक्तिविलास'-ग्रन्थकी रचनाके प्रायः अर्द्धशताब्दी पश्चात् 'अष्टाविंशति-तत्त्व'-नामक एक स्मृति-प्रबन्धकी रचना की है। उससे पूर्व भी बंगालमें 'भवदेव-पद्धति' और 'सत्क्रियासार-दीपिका'—इन दो संस्कार-विधियोंका प्रचलन देखा जाता है।

स्मार्त्त भट्टाचार्यके संस्कार-तत्त्वनिबन्धका किसी भी दिन व्यावहारिक जगतमें प्रचलन नहीं था। स्मार्त्त विचारके प्राबल्यसे 'सत्क्रियासार-दीपिका' का भी प्रचुर प्रचलन नहीं था। कमलाकरभट्ट-रचित अवैष्णव-विचारयुक्त 'निर्णय-सिन्धु' आदि ग्रन्थके पूर्व' श्रीकृष्णदेवाचार्यके 'नृसिंहपरिचर्या' और श्रीकेशवभट्टके 'स्मृति-निबन्ध'-ग्रन्थका प्रचार था, ऐसा माना जाता है।

जैसे स्मार्त्त भट्टाचार्यके द्वारा रचित मिश्रित अवैष्णव-स्मृति तथा वैष्णव स्मृतिमें प्रभेद देखा जाता है, उसी प्रकार वैष्णवपर श्रीहरिभक्तिविलाससे अवैष्णवपर स्मृतिके विचारोंका भेद भी परिलक्षित होता है। अवैष्णवपर स्मृतियोंका अधिक प्रचलन होनेके कारण वैष्णव-स्मृतिके प्रचलनमें नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित हुए थे। नाना प्रकारके देवताओंका पूजन, प्रेतश्राद्ध और एकादशी आदि व्रत विषयक विचारोंमें वैष्णव-स्मृतिके साथ अवैष्णव-स्मृतियोंका कोई मेल नहीं है। वैष्णव-सदाचार-सम्पन्न गृहस्थके अभावके कारण कुछ समयसे स्मार्त्त-विचार ही वैष्णव आचारके रूपमें गृहीत हाते आ रहे हैं। वैष्णव जगत्के लिए अवैष्णवोचित आचार आदरणीय नहीं हैं—इसकी शास्त्रीय युक्तिपूर्ण आलोचना भी भोगी भक्ति-विरोधी समाजके लिए अप्रीतिकर होनेके कारण वैष्णव सदाचार विषयक ग्रन्थोंका प्रचार भी रुद्ध हो गया था।

इस ग्रन्थके पुनः प्रचारसे भक्ति-विरोधी स्मार्त्त विचारोंके बादल सम्पूर्ण रूपसे छट जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है । वैष्णव-स्मृतिके प्रचार और प्रसारसे जिनके हृदयमें शूल-विद्ध होता है, केवल वैसे लोग ही भगवद्भक्तिका आदर नहीं कर पाते, किन्तु शुद्ध-वैष्णव-समाजके लिए अमावस्याके घने अन्धकारमें अग्रसर होनेके लिए शुद्ध सदाचार ही ध्रुव ताराके समान परमावश्यक है ।

जड़ कर्मोंमें आसक्त बहिर्मुख स्मार्त्त-विचारोंका प्रकोप केवल बंगदेशीय वैष्णव-समाजपर ही था, ऐसा नहीं; भारतवर्षमें सर्वत्र ही वैष्णव-स्मृतिका विचार न्यूनाधिक रूपमें विपन्न हुआ था । इसलिए सत्क्रियासार-दीपिकाका भी बहुत प्रचार नहीं देखा जाता है । शुद्ध भक्तिस्रोतके पुनः प्रवर्तक श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी प्रचेष्टासे इस ग्रन्थका बँगला भाषामें प्रकाशन बहुत पहले ही हो चुका है । अब इस ग्रन्थका तृतीय-संस्करण प्रकाशित होनेसे वैष्णव-विश्वासके अनुकूल भक्तिसदाचार स्थापन करनेका सुयोग प्राप्त हुआ है । साथ ही इस ग्रन्थका द्वितीय-संस्करण भी समाप्त हो जानेके कारण वैष्णव सदाचार पालन करनेवाले व्यक्ति इस ग्रन्थका अभाव अनुभव कर रहे थे । श्रीयुक्त अविद्याहरण दासाधिकारी सेवाबान्धव महोदयके विशेष आग्रहसे महोपदेशक पण्डितप्रवर अध्यापक श्रीयुक्त यदुवर भक्तिशास्त्री, सम्प्रदायवैभवाचार्य, एम० ए०, वि० एल० महोदयने सत्क्रियासार-दीपिकाके इस विशुद्ध-संस्करणको प्रकाशित करनेकी प्रचुर प्रचेष्टा की है। उनकी ऐसी सेवाचेष्टा नहीं होने से इस ग्रन्थका सर्वांगसुन्दर संस्करण प्रकाशित होना असम्भव था। उन्होंने इस ग्रन्थके सम्पादन-कार्यमें सहायताकर गौड़ीय-वैष्णव-जगत्का बहुत बड़ा उपकार किया है। इसके लिए सम्पूर्ण-गौड़ीय-वैष्णव-जगत् उनका कृतज्ञ रहेगा ।

सत्क्रियासार-दीपिका ग्रन्थके साथ 'वेषाश्रय-पद्धति'-ग्रन्थ भी श्रील ठाकुर भक्तिविनोदके बंगानुवादके साथ प्रकाशित हुआ है।

श्रीजगन्नाथ गौड़ीय मठ, मयमनसिंह
पहला वैशाख, १३४२ } **श्रीसिद्धान्त सरस्वती**

निवेदन

श्रीगौरपार्षद श्रीमद्गोपालभट्ट गोस्वामीने "सत्क्रियासार-दीपिका" एवं "संस्कार-दीपिका"-नामक दो वैष्णव-स्मृतिग्रन्थोंका संकलन किया है। श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सम्प्रदायैक-संरक्षक परमहंस-परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादने आजसे बहुत पहले ही श्रीगौड़ीय मठ, कलकत्तासे उक्त दोनों वैष्णव-स्मृति-ग्रन्थोंका सम्पादन कर प्रकाशित किया था। तत्पश्चात् ४४६ श्रीगौराब्दमें उक्त ग्रन्थका तृतीय संस्करण उन्हींके द्वारा सम्पादित होकर ढाका 'मनोमोहन प्रेस'से मुद्रित हुआ। ३१ वर्षके बाद इसका चतुर्थ संस्करण श्रीचैतन्य मठ, मायापुरसे ४८० श्रीगौराब्दमें प्रकाशित हुआ था।

लगभग पिछले ५०-६० वर्षोंसे यह स्मृति-ग्रन्थ दुष्प्राप्य होनेपर तथा सुधी वैष्णव-सज्जनोंके पुनः-पुनः अनुरोध करनेपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति (रजि.) से 'प्रथम संस्करण'के रूपमें यह ग्रन्थ पुनः प्रकाशित हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त 'प्रभुपाद'के द्वारा लिखित भूमिकामें मूल वक्तव्य परिस्फुट है।

"सत्क्रियासार-दीपिका" और "संस्कार-दीपिका"-ग्रन्थ षड्गोस्वामियोंमें अन्यतम वैष्णव-स्मृति-आचार्यवर्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा संकलित है। शुद्ध भक्ति-प्रवाहके मूल भगीरथ जगद्गुरु-श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने उक्त ग्रन्थके तीन विभिन्न संस्करणोंको मिलाकर उसकी शुद्ध पाण्डुलिपि प्रस्तुत की थी। सन् १६०४ ई०में वह ग्रन्थ सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ और गौड़ ब्रजमण्डलके प्रसिद्ध वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजने इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके ३०वर्ष पूर्व वैष्णवसमाजके कल्याणके लिए विशेषतः सिद्ध-वैष्णव महात्माका आदेश पाकर स्वयं इस ग्रन्थका अनुवादकर सम्पादन किया था।

जगद्गुरु प्रभुपादने कहा है—"लोगोंकी लौकिक और पारमार्थिक रुचिके अनुसार एक ही शास्त्रमें स्मार्त्त और परमार्थ—इन दोनोंके विचारोंमें आचारगत पार्थक्य लक्षित होता है। लौकिक व्यवहारमें

कुशल श्रीरघुनन्दनादि स्मार्त्त पण्डितोंने अपने लिखित निबन्धों और ग्रन्थोंमें स्मार्त्तोंके और वैष्णवोंके लिए पृथक्-पृथक् व्यवस्थाओंका स्थान-स्थानपर उल्लेख किया है। दूसरी ओर पारमार्थिक-स्मार्त्त-ग्रन्थ श्रीहरिभक्तिविलासमें अवैष्णव-भावसम्पन्न स्मार्त्त-वचन 'वैष्णवों'के लिए पालनीय नहीं है—ऐसी व्यवस्था दी गयी है। वैष्णव आचार्यके निकट मन्त्र ग्रहणकर, स्मार्त्त रघुनन्दनादि विचारोंको ग्रहण करना अपने शुद्ध स्वरूपकी विस्मृतिका फल समझना चाहिए। वैष्णव आचार्योंका अनुगमन करनेके लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होनेपर समाजके हितैषीजन वैष्णव-स्मृतिका आदर करना सीखें।"

"आजसे लगभग ४७५वर्ष पूर्व श्रीमन्महाप्रभुके निर्देशानुसार, श्रीलसनातन गोस्वामीने श्रीहरिभक्तिविलास नामक वैष्णव-स्मृतिकी रचना की। किन्तु दुर्भाग्यवश आज गौड़ीय वैष्णव नामधारी समाजमें इसका आदर नहीं देखा जाता। श्रीलगोपालभट्ट गोस्वामीने वैदिक पद्धतिका अवलम्बनकर जिस 'सत्क्रियासार-दीपिका' नामक ग्रन्थका संकलन किया है, वह स्मृति-ग्रन्थ रघुनन्दनके १००वर्ष पूर्वमें संरक्षित था। उपयुक्त आचार्योंके अभावमें वैष्णव-समाजमें वह किसी पेटिकामें आबद्ध रत्नकी भाँति अज्ञात था। श्रीगौर सुन्दरकी प्रेरणासे श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर महोदयने वैष्णव जगत्में इसका प्रचारकर शुद्धभक्त समाजके एक बड़े अभावको दूर किया है। उनके इस ऋणका परिशोधन करनेमें शुद्ध गौड़ीय-वैष्णव-समाजको हजारों वर्ष लग जायेंगे। श्रीगौरसुन्दरकी इच्छा होनेपर वैष्णव-समाज अपनी निर्मलताके संरक्षणके लिए बिना किसी वाद-विवादके अपने समाजमें इस ग्रन्थका प्रचुर प्रचलन करायेगा।"

"साधारणतः रागानुगा भक्तिके नामपर आजकल उश्रृंखलताका व्यभिचार फैल रहा है। वैष्णव-समाज इस विषयपर गम्भीर रूपमें विचारकर इस वैष्णव-स्मृतिका अनुगमन करते हुए भक्ति-पथपर अग्रसर हो—यही हम लोगोंका सविनय निवेदन है।"

"श्रीसरस्वती ठाकुरने और लिखा है—वेदान्तमें प्रकृतिवादियोंको स्मार्त्त कहा गया है। कर्मजड़, स्मार्त्तवाद और प्रकृतिवादमें कोई अन्तर नहीं है। हमारे देशकी भाँति पाश्चात्य देशोंके भी बहुतसे मनीषियों,

साहित्यकारों और दार्शनिकोंके ऊपर जड़-प्रकृतिका प्रभाव देखा जा सकता है। भारतीय आर्य-ऋषिगण जिस विशेष शास्त्रके विधानके अनुसार अपनी व्यावहारिक क्रियाएँ सम्पादन करते हैं, साधारणतः हमारे देशमें वही 'स्मृतिशास्त्र'के नामसे परिचित है। भक्तों और अभक्तोंके व्यावहारिक विधानमें पार्थक्य है । स्मृतिशास्त्र—अभक्तोंके शरीर और मन आदिके कल्याणके लिए होते हैं; किन्तु भक्तोंका विधान कृष्ण-सेवाके लिए होता है। जिस समय जीव, देह और मनमें आत्म बुद्धिकर फलभोगकी अभिलाषासे नाना प्रकारके कर्मोंका आवाहन करता है, उस समय वह 'प्राकृत-स्मार्त्त'के नामसे परिचित होता है।"

"विंशति धर्मशास्त्रके मतसे हारित-मत वैष्णवोंके लिए अपेक्षाकृत आदरणीय है। विंशति-धर्म शास्त्रके अतिरिक्त पुराणोंमें कहे गये विधानसमूह भी वैदिक प्रयोगकी भाँति व्यवहार कुशल स्मार्त्तोंके लिए आदरणीय हैं। वैष्णवगण भी वैदिक प्रयोग-ग्रन्थ एवं पुराणोंमें उनके लिए उपयोगी अनुष्ठानोंको स्वीकार करते हैं और उनका अनुष्ठान भी करते हैं। मध्ययुगीय व्यावहारिक स्मार्त्तोंने देश-विदेशोंमें कुछ स्मृति निबन्धोंकी रचनाएँ की हैं। वैष्णवोंने भी अपने-अपने सम्प्रदायके लिए शास्त्रोंसे मौलिक प्रमाणोंको ग्रहणकर वैष्णव जीवनकी उन्नतिके लिए विधि-विधानोंका ग्रन्थके रूपमें संकलन किया है।"

"श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके आदेशसे श्रीलसनातन गोस्वामीने गौड़ीय-वैष्णवोंके लिए विशुद्ध शास्त्रोंका अवलम्बनकर 'श्रीहरिभक्तिविलास'-नामक ग्रन्थका संकलन किया, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने उस ग्रन्थको और भी अधिक प्रमाणोंसे पुष्ट करते हुए उसका सम्पादन किया । उसके लगभग अर्द्धशताब्दीके पश्चात् प्रसिद्ध स्मार्त्त बन्द्यघाटीय श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य बंगीय व्यवहार कुशल स्मार्त्तोंके लिए लौकिक व्यवहार-निर्वाहके लिए 'अष्टाविंशति-तत्त्व' नामसे कुछ प्रबन्धोंकी रचनाएँ कीं। उक्त प्रबन्धोंमें बहुतसे स्थलोंपर 'हरिभक्तिविलास'से पार्थक्य परिलक्षित होता है। आधुनिक कालमें कलिकालकी वृद्धि होनेके कारण वैष्णवोंका विशुद्ध विचार भी तार्किकोंके वृथा-वितण्डाके अन्तर्भुक्त हो गया है। यह सब कुछ पारमार्थिक-निष्ठाकी शिथिलताका द्योतक है। प्रा कृत विचारोंसे प्रभावित,

अप्राकृत विचारोंसे रहित स्मार्त्तोंका आनुगत्य करना महान वैष्णवोंके लिए शोभनीय नहीं है। उन्हें सब प्रकारसे वैष्णव-स्मृतिका अनुगमन करना चाहिए—हमारा यह विशेष अनुरोध है।"

"स्मृतिके जाननेवालोंको स्मार्त्त कहते हैं। इसलिए स्मृति किसे कहते हैं ?—ऐसा प्रश्न स्वाभाविक है। अवरोह पथके माध्यमसे परम सत्यवस्तु परव्योमाधीश नारायणसे ब्रह्माके हृदयमें परम सत्यवस्तुका प्रकाश हुआ था। ब्रह्माजीने नारदजीके निकट सत्यवस्तुका कीर्तन किया। नारदजीने उसीको व्यासके निकट कीर्तन किया। व्याससे ही वैयासिक सम्प्रदायमें वह सत्यवस्तु अवरोह मार्गसे सत्साम्प्रदायिक वैष्णवोंके निकट प्रकाशित हुई। दूसरी आंर ब्रह्मासे शौक्र परम्पराके अनुसार च्युत-गोत्रीय ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई। अच्युत कुलकी भाँति च्युत गोत्रीय ऋषियोंका पथ अवरोह धारामें आनेके बदले वहिःप्रज्ञा परिचालित होकर आरोह पथसे चलती है। वैसे ऋषिवर्ग और उसके अधीन तीन वर्ण अपने-अपने जड़ेन्द्रिय ज्ञानको अपने अनुकूल समझकर प्रत्यक्ष और अनुमानादिका अनुसरणकर आम्नाय परम्परा या अवरोह मार्गको कण्टकित कर रहे हैं। सद्गुरुके मुख-निःसृत वचन और विचार शास्त्रोंके अनुकूल होते हैं। सत्यवस्तुको ग्रहण करनेके लिए जो आरोह पथ स्वी कृत होता है, वह अवरोह-पथका केवल नकलमात्र है। किन्तु अवरोह पथका जहाँ अनादर परिदृष्ट होता है, वहाँ अद्वयज्ञान सत्य-वस्तुकी न्यूनाधिक रूपमें अवहेलना होती है। जहाँ श्रीगुरुदेवके अप्राकृतिक गौरवको लाघव करनेकी चेष्टा होती है, वहाँ गुरुरवज्ञा रूप आरोह-पथ भ्रम-प्रमादादि दोषोंसे भरपूर रहता है तथा वहाँ आत्मम्भरितामय एक वृत्तिकी कल्पना मात्र होती है। वैसी रोगग्रस्त अवस्था भविष्यमें उशृंखलताकी आकर-भूमिके रूपमें निर्दिष्ट होती है। जिस समय गुरुकी अवज्ञा करनेवाला व्यक्ति अपनी कुचेष्टासे वेद-पुरुषको दर्शन करनेकी चेष्टा करता है, उसी समय दृश्य वस्तुके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मतभेद उपस्थित होते हैं। श्रुत विषयोंको हृदयमें धारणकर उसे आचरण करना ही स्मृतिका यथार्थ अनुष्ठान है। रघुनन्दन भट्टाचार्य महाशयने आरोह-पथके पथिकोंके लिए जो कुछ 'स्मृति'के नामपर प्रचार किया है, वह पारमार्थिकोंके लिए आदरका विषय नहीं है।

बंगदेशीय रघुनन्दनने अपनी प्रतिभाके बलसे जिस स्मृतिका संग्रहकर बंगदेशीय नाना स्थानोंमें प्रचार किया है, उसके आनुगत्यमें आजकल हरिसेवा-विरोधी समाज प्रस्तुत हो रहा है।"

"पारमार्थिक-समाज गौड़ीय-वैष्णवोंके नामसे अपना परिचय देनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुके आदेशसे संग्रहीत 'श्रीहरिभक्तिविलास'की मर्यादा अक्षुण्ण रखनेके लिए कोई प्रयास नहीं किया है। फिर भी वे लोग स्मार्त्तोंके लौकिक सम्मान मर्यादा आदिसे मुग्ध होकर आत्महत्या नहीं कर सकते। वे क्रमशः इस विषयको समझें कि श्रीगौरसुन्दरके द्वारा प्रचारित अमल वैष्णवधर्म आज स्मार्त्तोंके जालमें आबद्ध होकर ईशवैमुख्यका वर्द्धन कर रहा है। हे गौड़ीय-वैष्णवगण ! स्मार्त्त रघुनन्दनका उल्लंघन करना होगा; ऐसा सोचकर परमार्थको जलाञ्जलि मत दें। रघुनन्दनके निकट सुपरिचित न होकर उनसे नित्यकालके लिए बिदाई लें।"

श्रील सरस्वती प्रभुपादने और भी कहा है,—"जो लोग जड़ अर्थकी सिद्धिके लिए नित्य विष्णुसेवाका त्याग करते हैं, वे लोग विष्णुको 'गणेश'के रूपमें देखते हैं। जब वे प्रापञ्चिक अनुभूतिके अधीन होकर धर्मकी कामनासे विष्णुकी पूजा करते हैं उस समय वे विष्णुदर्शनके बदले 'सविता'का दर्शन करते हैं। वे लोग धर्म और अर्थकी कामनासे लौकिक लोकोंकी प्राप्तिके लिए विष्णुकी पूजा करते हैं तब वे सूर्य, गणेश और शक्तिकी सेवाको ही विष्णुकी सेवा समझते हैं। पुनः मोक्षकी कामनाकर उपास्य वस्तुको 'रुद्र'के रूपमें दर्शन करते हैं। विशुद्ध सत्त्व-रुचि विशिष्ट जीव 'विष्णु'की, सत्त्व-रजोमिश्र-गुणविशिष्ट जीव 'सूर्य'की, सत्त्व-तमोमिश्र-गुण विशिष्ट जीव 'गणेश'की, रजस्तमोगुण-विशिष्ट जीव 'शक्ति'की तथा तमोगुण विशिष्ट जीव 'रूद्र'की उपासनामें प्रवृत्त होते हैं। पञ्चोपासकगण-कालक्षुब्द्ध नश्वर फलकी आकांक्षा करनेवाले होते हैं, ऐकान्तिक वैष्णव वैसे नहीं होते । वे नित्यभगवान्‌के सेवक होते हैं। पञ्चोपासक लोग अपनी-अपनी लौकिक कामनाओंकी अभिलाषा रखते हैं; वैष्णवगण कर्मफलके अतीत, नित्य भगवद्विग्रहके नित्योपासक होते हैं।"

सात्त्वत एवं असात्त्वत समाजके सम्बन्धमें जगद्गुरु श्रील सच्चिदानन्द

भक्तिविनोद ठाकुरने कहा है,—"कुछ लोग ऐसे हैं जो सम्प्रदाय शब्द सुननेके साथ ही क्रोधित हो उठते हैं। वे कहते हैं कि सम्प्रदाय विभागद्वारा मतभेदकी सृष्टि होती है और मतभेदके द्वारा धर्मका विवाद उपस्थित होकर समाजको नष्ट कर देता है। वे ऐसा समझते हैं कि समाजमें केवल वे ही पण्डित हैं और सभी निर्बोध हैं। वस्तुतः उनकी अपेक्षा समाजमें अनेकानेक बुद्धिमान, सुचिन्तक और पण्डित व्यक्ति सम्प्रदाय स्वीकारकर धर्मका अनुशीलन किया करते हैं। सम्प्रदाय-विरोधी लोग सम्प्रदायके विरुद्धमें एक वृथा मतवाद खड़ाकर अपनेको असम्प्रदायी मानते हैं। उसका फल यह होता है कि उसी मतवादको ग्रहणकर वे एक नये सम्प्रदायकी सृष्टि करते हैं। असरल-अदूरदर्शी, वितर्कप्रिय व्यक्तिगण स्वरूपगत सम्प्रदायका निर्माण करके भी अपनेको असम्प्रदायी प्रचार करते हैं और कुछ नहीं।"

"इतिहासकी आलोचना करनेसे यह देखा जाता है कि इस पवित्र भारत भूमिमें कभी भी सम्प्रदाय-विरुद्ध कोई मत नहीं था। जबसे पाश्चात्य विद्वानोंके साथ भारत वर्षका सम्बन्ध हुआ है, उसी समयसे सम्प्रदाय-विरोधी विचार पनपे हैं। पाश्चात्य पंडितोंके साथ कथोपकथनकर, उनके भाषणको सुनकर, उनकी पुस्तकोंको पढ़कर हमारे देशके संकीर्ण बुद्धिके कुछ लोगोंके हृदयमें कुसंस्कार पैदा हो गया है कि वे 'सम्प्रदाय'-शब्द सुनते ही भड़क उठते हैं। वे अपने कुसंस्कारकी भूल कभी भी अनुसंधान नहीं करते।"

"सत्सम्प्रदायमें प्रवेशकर सम्प्रदायको पवित्र करनेकी चेष्टा करना ही बुद्धिमान व्यक्तिका कर्त्तव्य है। बाजारमें अच्छी वस्तु नहीं मिल रही और तरह-तरहकी कृत्रिमता चल रही है—ऐसा समझनेपर बाजारका सुसंस्कार करना ही कर्त्तव्य है, किन्तु इन्हीं सब कारणोंसे बाजार प्रणालीको सम्पूर्ण रूपसे बन्द कर देनेके लिए जो चेष्टा करते हैं, उनकी बुद्धिकी कभी भी प्रशंसा नहीं की जा सकती है। इसलिए पाश्चात्य देशके संकीर्ण ज्ञान-विशिष्ट व्यक्तियोंकी बातको सुनकर अथवा उनकी पुस्तकोंको पढ़कर हमें विशुद्ध सम्प्रदाय-प्रणालीका अनादर नहीं करना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानोंमें जितना वागाडम्बर है, उतना यथार्थ पाण्डित्य नहीं

है। अल्प आयुवाले युवकोंमें स्वभावतः पाण्डित्यकी अपेक्षा वागाडम्बरके प्रति ही अधिक आकर्षण होता है और वे उसीके पक्षपाती होते हैं।"

आन्तरिक मन और प्राणसे सत्सम्प्रदायिक न होनेसे सम्प्रदायके आभ्यन्तरीण सदाचारकी बातें बोधगम्य नहीं हो सकती हैं। अवैष्णव पञ्चोपासक स्मार्त्तोंके सम्बन्धमें श्रील गोपालभट्ट गोस्वामीने कहा है,— (क)"अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत्" अर्थात् अवैष्णवोंके निकट मन्त्र ग्रहण करनेसे नरकगमन होता है; इसलिए पुनः शास्त्रके विधि-विधानोंके अनुसार वैष्णव गुरुके निकट मन्त्र ग्रहण करना चाहिए(ख) कलिकालमें शौक्र ब्राह्मणोंकी शुद्धता नहीं है। पाञ्चरात्रिक विधानके द्वारा ही उनकी यथार्थ शुद्धि है। (ग) भगवद्भक्त शूद्र कुलमें पैदा हों, या निषाद, श्वपच आदि अन्त्यज कुलमें ही जन्म ग्रहण क्यों न करें, जो लोग उनको उस जातिके व्यक्तिके रूपमें दर्शन करते हैं, वे निश्चय ही नरकमें गमन करते हैं। (घ) जो मूढ़ व्यक्ति वैष्णव महात्माओंकी निन्दा करते हैं, वे अपने पितृपुरुषोंके सहित महानरकमें पतित होते हैं। (च) जो जड़बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति अन्य देवताओंको विष्णुके समान समझता है, वह एकाग्रचित्त होने पर भी ऐकान्तिकी हरिभक्तिको प्राप्त नहीं कर पाता है। जो व्यक्ति नारायणको ब्रह्मा-रुद्रादि देवाताओंके समान दर्शन करता है वह निश्चित ही पाखण्डी है। (छ) मायावाद असत् शास्त्र है, इसलिए वह बौद्धमत है। कलिकालमें मैं (महादेव) ब्राह्मणकी मूर्ति धारणकर असुरोंको मोहित करनेके लिए इस अवैदिक मायावादका प्रचार करूँगा। (ज) विष्णु और वैष्णवोंकी प्रीतिके लिए नृत्य और गीत करना कर्त्तव्य है, किन्तु अपनी जीविका उपार्जनके लिए नृत्य-गीत आदि करनेसे पापमें निमग्न हुआ जाता है।" श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके द्वारा संकलित "सत्क्रियासार-दीपका" में 'श्रीहरिभक्तिविलास'का सार सन्निविष्ट हुआ है, अतः वह विशुद्ध तत्त्व-सिद्धान्त-प्रकाशक सात्त्वत-स्मृति ग्रन्थ है।

स्त्रियोंके लिए संन्यासाश्रम ग्रहण करना प्रशस्त नहीं है। घरमें रहकर हरिभजन करना ही उनके लिए मंगलप्रद है। स्त्रियोंको वेषादि प्रदानके नामपर आजकल जगत जंजाल उपस्थित हो रहा है। किसी स्थलमें विशेष दृष्टान्त होनेपर भी सर्वसाधारणके लिए वह अनुकरणीय

आदर्श नहीं है। इस विषयमें जाननेके लिए श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुका 'संस्कार-दीपिका'-ग्रन्थ द्रष्टव्य है। परिशिष्टमें 'संस्कार-दीपिका' या 'वेषाश्रय-पद्धति'-ग्रन्थ भी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगानुवाद के साथ प्रकाशित हो रहा है।

श्रीभागवत पत्रिकाके योग्य सम्पादक तथा अनेक संस्कृत और बंगला भक्ति-ग्रन्थोंका अनुवाद करनेवाले मदीय सतीर्थ त्रिदण्डि स्वामी श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने इस ग्रन्थका हिन्दी संस्करण प्रस्तुत किया है। आशा है यह वैष्णव-स्मृति हिन्दी भाषा-भाषियोंके साधन-भजनमें विशेष सहायक होगी।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रीकृष्णकी हैमन्तिकी रासयात्रा-तिथि शुक्रवार, १ अग्रहायण, १४०१ बंगाब्द	श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवाभिलाषी त्रिदण्डिभिक्षु **श्रीभक्तिवेदान्त वामन**

दो शब्द

श्रीमद्गोपालभट्टगोस्वामी द्वारा रचित "सत्क्रियासार-दीपिका" नामक दशसंस्कारकी पद्धति एवं "संस्कार-दीपिका" नामक वेषाश्रय-पद्धतिका राष्ट्रभाषा हिन्दी-संस्करण प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार आनन्द हो रहा है। हिन्दी भाषी ऐकान्तिक गोविन्द उपासक वैष्णवोंमें बहुत दिनोंसे इस ग्रन्थका अभाव बुरी तरहसे खटक रहा था। आज परमाराध्य ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी गुरुपादपद्मकी अहैतुकी कृपा एवं प्रेरणासे यह महत्वपूर्ण कार्य संभव हो सका है।

जगत्वरेण्य अष्टोत्तरशतश्री श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद'ने तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान आचार्य एवं सभापतिने इस ग्रन्थकी उपयोगिता एवं महत्ताके विषयमें क्रमशः इस ग्रन्थकी "भूमिका" एवं "निवेदन" में सुन्दर रूपसे प्रकाश डाला है। अतः इस विषयमें अधिक कुछ कहना नहीं है। फिर भी दो-एक बातोंका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ।

श्रीलगोपालभट्ट गोस्वामी गौड़ीय छह गोस्वामियोंमें से एक प्रमुख गोस्वामी हैं। ये वैदिक एवं पौराणिक शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान थे। इनका जन्म दक्षिण भारतके सुप्रसिद्ध श्रीरंगम क्षेत्रमें एक श्रीसम्प्रदायके प्रसिद्ध विद्वान्, ब्राह्मणवैष्णव वंशमें हुआ था।

इनके पिताका नाम वेंकटभट्ट था। उनके और भी दो भाई थे, त्रिमल्लभट्ट और प्रबोधानन्द। श्रीप्रबोधानन्दजी सर्वशास्त्रोंके सुपण्डित और स्वभावसुलभ कवि थे। प्रकाण्ड विद्वत्ताके कारण तत्कालीन विद्वत् सभाने इनको 'सरस्वती' उपाधिसे विभूषित किया था। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीकी देख-रेखमें बालक गोपालभट्टका अध्ययन एवं शिक्षा-दीक्षा हुई थी। ये चारों ही 'श्री' सम्प्रदायमें दीक्षित वैष्णव थे। श्रीचैतन्यमहाप्रभुका दक्षिण भारत परिभ्रमणके समय चातुर्मास्यमें श्रीरंगम क्षेत्रमें इनसे सम्पर्क हुआ। श्रीमन्महाप्रभुके ऐकान्तिक कृष्णभक्तिके विचारोंका इनपर इतना अधिक प्रभाव हुआ कि वे चारों ही उनके अनुगत ऐकान्तिक कृष्णभक्त हो गये। कालान्तरमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी इच्छा और प्रेरणासे पहले प्रबोधानन्द सरस्वतीजी और बादमें गोपालभट्ट गोस्वामी श्रीधाम वृन्दावनमें उपस्थित हुए।

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीधाम वृन्दावनमें वर्तमान 'श्रीराधारमणजी'के निकट भजन करते थे। उनकी सेवाकी उत्कण्ठा देखकर उनकी पूजित "श्रीशालिग्राम शिला" 'श्रीराधारमण'के रूपमें प्रकट हो गयी। उनकी पीठकी ओर दर्शन करनेसे अभी भी 'शालिग्राम'के रूपमें दीखते हैं।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके निर्देशानुसार श्रीलसनातन गोस्वामीने "श्रीहरि-भक्तिविलास" नामक एक वैष्णव-स्मृतिका संकलन किया है। उसीको श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने सम्वर्द्धितकर सम्पादन किया है। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने ऐकान्तिक गोविन्द उपासक ब्राह्मणादि चारों वर्णों तथा वर्ण बहिर्भूत दूसरे-दूसरे गृहस्थ वैष्णवोंके भगवद्धर्मकी रक्षा तथा उत्कर्षके लिए 'सत्क्रियासार-दीपिका' नामक विवाहादि वैदिकी संस्कारोंकी पद्धति तथा त्यागी भक्तोंकी सुविधाके लिए 'संस्कार-दीपिका' नामक वेषाश्रय पद्धति-ग्रन्थकी रचना की है। प्रस्तुत प्रकाशनसे हिन्दी भाषा-भाषी ऐकान्तिक कृष्ण उपासकोंका बड़ा ही उपकार होगा।

कुछ लोग ऐसी शंका करते हैं कि"सत्क्रियासार-दीपिका" एवं "संस्कार-दीपिका" इन दोनों ग्रन्थोंके लेखक श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी नहीं हो सकते; क्योंकि उन्होंने सत्क्रियासार-दीपिका ग्रन्थमें अपने नामका उल्लेख किया है। किन्तु श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने सर्वज्ञ होनेके कारण उसी समय यह जान लिया था कि भविष्यमें ऐसी शंका उठ सकती है। इसलिए इसका समाधान करना आवश्यक है। अतः उन्होंने सत्क्रियासार-दीपिकाके प्रारम्भमें ही इस विषयका स्वयं ही स्पष्टीकरण कर दिया—

"नन्वपरग्रन्थकारवद् ग्रन्थकर्त्तृत्वेनास्मद्विधस्य स्वनाम निबद्धुमनुचितं, "अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते" इति दोष-श्रवण-भयात्, तथापि स्वयूथ्यानां साधूनामाज्ञया स्वनाम निबद्धम्,—श्रीमद्गोपालभट्टनामायं कोऽपि जीवः। श्रीमद्गोपालभट्टत्वेन ज्ञापितं (यदयं) श्रीकृष्णचैतन्यचरणारविन्द-मकरन्द-सततपायित्वेन सदैव साधुनिदेशवर्त्तीति।"

अर्थात्—"अहंकार विमूढ़ात्मा व्यक्ति 'मै ही कर्त्ता हूँ'—ऐसा समझता है।" श्रीगीताके इस श्लोकसे सूचित अपराधके भयसे, साधारण ग्रन्थकारकी भाँति इस ग्रन्थके ग्रन्थकारके रूपमें अपना नाम उल्लेख करना अनुचित है। तथापि स्वसम्प्रदायी वैष्णवोंकी आज्ञासे ही अपने नामका उल्लेख

किया गया है। यह व्यक्ति श्रीमान्‌गोपालभट्ट नामक कोई एक जीव है। यह सदासर्वदा श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुके चरणकमलोंकी सुधापान करनेवाला होनेके कारण सदा ही सद्वैष्णवोंकी आज्ञाके अधीन है।"

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीकी उपर्युक्त टिप्पणीसे उक्त प्रकारकी शंका सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती है। विशेषतः इस पुस्तकका निर्देश कलकत्ताके महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री द्वारा Notes SKT MSS (2nd Series Vol. I No 397 Vol. II p.p. 209-10 No. 235) में किया गया है। इसके अतिरिक्त जयपुरके राजकीय ग्रन्थागारमें भी इसकी एक प्रति सुरक्षित है। उक्त पुस्तकमें भी ग्रन्थ-रचियता श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका उल्लेख है।

यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ कि आधुनिक कालमें शुद्धभक्ति प्रवाहके पुनः प्रवर्तक भक्ति-भगीरथ श्रीश्रीमद्‌भक्तिविनोद ठाकुर सप्तम गोस्वामीके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इनका श्रीधाम वृन्दावनके विख्यात श्रीराधारमण मन्दिरके सेवायत सुप्रसिद्ध श्रीसार्वभौम मधुसूदन गोस्वामीसे बहुत ही मधुर सम्बन्ध था। इन गोस्वामीजीकी भजन-कुटीमें एक सुन्दर पुस्तकालय था, जिसमें सभी गोस्वामियों एवं वैष्णव-आचार्योंके प्राचीन एवं तत्सामयिक ग्रन्थोंका अमूल्य संग्रह था; जो अभी भी वर्तमान है। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरजीने श्रीमधुसूदन गोस्वामीकी सम्मतिसे उक्त पुस्तकालयमें संरक्षित इस ग्रन्थकी प्राचीन प्रतिसे अनुलिपि प्रस्तुतकर ऐकान्तिक वैष्णवोंके कल्याणके लिए उसे सज्जनतोषणी पत्रिकामें १६०३ से १६०६ तक के खण्डोंमें प्रकाशित किया। पुनः १६३५ ई. में कलकत्ता स्थित गौड़ीय मठसे वही संस्कार-दीपिकाके साथ प्रथम पुस्तकाकारमें प्रकाशित हुई। अतः निर्विवादरूपमें इस ग्रन्थकी रचनाका समय १५६६ वैक्रमीयके पूर्वका है तथा वह श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा रचित है।

इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपि प्रस्तुत करने, प्रूफ-संशोधन करने आदि कार्योंमें श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी एम.ए., एल-एल.बी., 'साहित्यरत्न', श्रीमान् शुभानन्द ब्रह्मचारी 'भागवत भूषण', श्रीनवीन कृष्ण ब्रह्मचारी 'विद्यालंकार', श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी 'सेवारत्न', श्रीसुबलसखा ब्रह्मचारी, श्रीपुरन्दर ब्रह्मचारी तथा श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी की सेवा प्रचेष्टा अत्यन्त

सराहनीय है। श्रीराधारमणजी अहैतुकी कृपाकर इन्हें ऐकान्तिक भक्ति प्रदान करें, यही उनके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव कृपालेशप्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

सत्क्रियासार-दीपिकाकी विषय-सूची

विषय पत्रांक

सत्क्रियासार-रचनाका उद्देश्य १

इसके मूलमें वैष्णव-आज्ञा १

इसके मूलीभूत शास्त्रसमूह २

सम्बन्ध श्लोकार्थ २

प्रणाम श्लोकार्थ ३

परमानन्द-शब्दकी व्याख्या ४

प्रयोजन श्लोकार्थ ४

अनन्य-शब्दका तात्पर्य ४

गृही-द्विजादिपदोंका विषय ४

भगवद्धर्मकी एवं भगवद्धर्मान्तर्गत पद्धतिकीश्रेष्ठता ५

विषय-श्लोकार्थ ५

गोविन्दभक्त-शब्दका विषय ६

पितृ-देवार्चन-निषेधके प्रमाण ७

अनन्यशरणभक्तोंके लिए पितृदेवार्चन करना-शास्त्र निषिद्ध..................... ७

नारायणोपनिषद् ७

नारायणोपनिषद्व्याख्या ९

सृष्टिस्थितिप्रलयकारण श्रीनारायण १०

श्रीनारायणके अतिरिक्त दूसरे सभी देवताओंका स्वतन्त्र-ईश्वरत्व निषेध ११

सर्वर्षि-शब्दका विषय................. १२

दिक्-शब्दका विषय..................... १३

अधः-शब्दका विषय १३

ऊर्ध्व-शब्दका विषय १३

मूर्त्त-शब्दका विषय १३

अमूर्त्त-शब्दका विषय १३

विषय पत्रांक

अन्तः-शब्दका विषय.................. १४

बहिः-शब्दका विषय १४

सर्वमिदं नारायणः इसका तात्पर्य १४

नारायण ही एकमात्र देवता इसका तात्पर्य १५

सायुज्याभिलाषीका प्राप्य अव्यय विष्णु १६

सारूप्याभिलाषीका प्राप्य परम-विष्णु १६

सालोक्याभिलाषीका प्राप्य पद विष्णु १७

सान्निध्याभिलाषीका प्राप्य पार विष्णु १७

अव्यय-पद-विष्णुका अर्थ १७

भगवत्पूजा द्वारा सभीकी पूजा और तुष्टि १८

आदि पुरुष-पदका अर्थ २०

दस प्राण २०

अच्युत शब्दका अर्थ २१

कृष्णोपनिषद् २२

कृष्णका पुरुषोत्तमत्त्व................ २३

पुरुषोतमत्त्वकी व्याख्या............. २३

कृष्णके सच्चिदानन्द विग्रहकी दुर्ज्ञेयता २४

कृष्णकी सर्वकर्ममूलता २५

कृष्णका ही एकमात्र पूजत्व २५

काशंकृदादीशमुखप्रभुपूज्य वाक्यका अर्थ २६

विषय	पत्रांक
कृष्णभक्तका प्रत्यवायाभाव	२७
पितृदेवार्चन-निषेध द्वितीय प्रमाण	२७
पितृ-देवार्चनादि-शब्दका अर्थ	२८
संकल्प-शब्दका अर्थ	२८
दान-शब्दका अर्थ	२८
मनुष्यमात्रके छह ऋण और उसके अधीनताके शास्त्र-प्रमाण	२६
मुकुन्दसेवा द्वारा सर्वविध ऋणोंसे मुक्ति	२६
सर्वात्मना पदका तात्पर्य	३०
शुद्धान्तकरणता	३०
ऋणी-किंकर-शब्दका तात्पर्य	३१
अन्य देवताओंमें अर्चनकी नश्वरता	३२
देवव्रत और पितृव्रतगणोंकी गति	३२
कृष्णभक्तोंकी पितृसेवा	३३
भूतव्रतगणोंकी गति	३४
कृष्णका अनन्य शरण ही सेव्य है	३४
पितृदेवार्चन निषेधका तृतीय प्रमाण	३४
वैष्णव शब्दका अर्थ	३५
पितृदेवार्चन निषेधका चतुर्थ प्रमाण	३५
अन्य देवताओंके पूजनसे विष्णु भक्तोंका पतन	३६

विषय	पत्रांक
पितृ देवार्चन निषेधमें पञ्चम प्रमाण	३६
वैष्णवोंके लिए स्मार्त्त प्रायश्चित्तका निषेध	३७
सात्वत-प्रायश्चित्त-विधान	३७
नारद पंचरात्रमें उसकी व्यवस्था	३८
अनन्यशरणता विवेक	३६
पितृदेवार्चन निषेधके लिए षष्ठ प्रमाण.	४१
कर्मियोंके लिए सर्वदेवता यजनकी आवश्यकता	४१
सर्व देवताओंके यजनमें कमी होनसे कर्मकी विफलता	४२
इस विषयमें प्रथम प्रमाण	४२
इस विषयमें द्वितीय प्रमाण	४३
इस विषयमें तृतीय प्रमाण	४५
इस विषयमें चतुर्थ प्रमाण	४६
असम्पूर्ण-क्रिया करनेसे कर्मीका प्रत्यवाय	४७
शुद्ध भक्तोंके लिए सेवानामापराध	४७
वैष्णव-अवैष्णवोंके लिए सर्वेश्वर श्रीहरि ही एकमात्र पूज्य	४८
देवतान्तर-यजन अविधि	४८
अविधिपूर्वक भगवद्भजन	४८
भजन्त्यविधिपूर्वकं-श्लोककी त्रिविध व्याख्या	४६
शुद्धसत्त्व कृष्णभक्तोंके लक्षण	५२

विषय	पत्रांक
देवतान्तर पूजाकी तुच्छता	५२
एकमात्र कृष्ण ही पूर्णकाम	५३
कृष्णमायामुग्ध व्यक्तिका देवातान्तर भजन मूर्खता है	५४
चौदह भूवनमें एकमात्र श्रीहरि ही पूज्य हैं	५५
कृष्णही एकमात्र शरण हैं	५५
अनन्य शरणताका-विवेक	५८
भगवद्भजन ही निष्कर्म है	५६
गोविन्द बहिर्मुखगणोंके आतिथ्य सेवासे नामापराध	५६
अन्य देवताओंकी निन्दा-स्तुति अकर्त्तव्य.	६१
दूसरे देवताओंका अवशेष-धारण निषेधका अर्थ	६१
गोविन्दके बहिर्मुख लोगोंके साथ व्यवहार-विधि	६२
ब्राह्मणकी आदिवैष्णवता	६३
ब्राह्मणकी चाण्डालता	६३
देवतान्तर पूजासे अवैष्णवोंका भी अपराध	६४
इस विषयमें १-२ प्रमाण	६४, ६५
विष्णुकी सेवासे सद्गुरुकी प्राप्ति और पतिनिष्ठरूपसे विष्णुभक्ति	६६
भगवद्भक्तोंके सद्ग्रहणकी कर्त्तव्यता	६६
सत्-शब्दकी व्याख्या	६७
सद्भाव-पदका सात प्रकारका अर्थ	६७

विषय	पत्रांक
साधुभाव-पदका अर्थ	६८
प्रशस्तकर्म-पदका पाँच प्रकारका अर्थ	७०
विष्णुयज्ञ सर्वदिवसव्यापी	७०
सत्-शब्दसे-विष्णुयज्ञ, तपस्या, दान, तदर्थीय कर्म	७१
शुद्ध वैष्णवोंका एकमात्र कर्त्तव्य	७१
देव-पितृगणोंका अवश्य पूज्यत्व	७१
गोविन्दपूजासे सबकी पूजा	७२
इस विषयमें प्रथम प्रमाण	७२
इस विषयमें द्वितीय प्रमाण	७२
इस विषयमें तृतीय प्रमाण	७६
इस विषयमें चतुर्थ प्रमाण	७७
हरिनाम-कीर्त्तनके द्वारा पूजाकी सर्व सर्म्पूणता	७३
हरिकीर्त्तन क्या क्या है?	७३
कलियुगमें कृतार्थ होनेका उपाय	७३
कलिकालमें सर्वत्यागसे कृतार्थता	७६
कृष्णभक्तका सर्वधर्मानुष्ठान	७७
कृष्णाभक्तका सर्वपापानुष्ठान	७७
अभक्त कर्मी कौन?	७८
अभक्त कर्मी सर्वपापी क्यों?	७८
अभक्तकृत पाप और धर्म इसका तात्पर्य	७८
सर्वकर्म अनुष्ठाता अभक्तकी नरक प्राप्ति	७९
विष्णुभक्तमात्रकी सर्वोत्तमता	८०

विषय	पत्रांक
वर्णोंका क्रमिक श्रेष्ठत्व	८०
संकरान्त्यजादिका उत्तमताका हेतु	८१
एकादश प्रकारके शूद्र	८१
ब्राह्मणके भागवतमें कहे गये अष्ट और द्वादश गुण	८३
महाभारतोक्त ब्राह्मणके द्वादश गुण	८२
वर्णापेक्षा आश्रमोंकी क्रमिक श्रेष्ठता	८६
साधारण गृहस्थका कर्त्तव्य	८६
संन्यास और त्यागका भेद	८६
संन्यासका अर्थ	८८
निष्काम कर्मके फलोदयके विषयमें प्रथम प्रमाण	८९
इस विषयमें द्वितीय प्रमाण	९०
इस विषयमें तृतीय प्रमाण	९१
मंगलाचरण	९३
छायामण्डप और वेदी	९३
विष्णुस्मरण	९५
पुरुषसूक्त	९५
स्वस्तिवाचन	९९
मंगलवाचन	९९
अधिवास	१०१
स्मार्त्तनान्दीमुख-निषेध	१०६
सात्त्वत-नान्दीमुख	१०६
वासुदेवार्चन व्यवस्था	१०७
गणेशादिकी-पूजाका निषेध	१०७-१०९
विष्णुकेआवरणदेवताआदि	१०९-११०
विष्णुके आवरण-देवता अवश्य पूज्य	१०९
पञ्चमहाभागवत (पार्षद)	१०९
नवयोगेन्द्र (पूज्य)	११५
भागवतोत्तमगण (पूज्य)	११५
वैष्णवीगण (पूज्य)	११५
राधाकृष्ण उपासकोंके पूज्य पार्षदगण	११६
वासुदेव पूजामें मन्त्रव्यवस्था	११६
ज्ञातिकर्म	११७
सम्प्रदान-प्रकरण	११८
वरण-पद्धति(जामाता)	११९
गवोपस्थापन	११९
जामाताको विष्टरादि-अर्पण	१२०
सम्प्रदान विधि	१२३
सम्प्रदान वाक्य	१२३
वैष्णवी गायत्री	१२६
श्रीश्रीराधाकृष्ण स्मरण	१२६
कामस्तुति	१२६
दक्षिणा-विधि	१२३
वर-कन्याका ग्रन्थिबन्धन	१२७
गवीमोक्षण	१२८
अच्छिद्रवाचन	१२८
वैगुण्यसमाधान	१२९
कुशण्डिका-प्रकरण	१२९
कुशण्डिका वेदीका	१२९
अभ्युक्षण-घट	१२९
स्थण्डिल	१३०
अग्निस्थापन-विधि	१३०

विषय	पत्रांक
पंचरेखा	१३०
उत्करनिरसन	१३१
रेखाभ्युक्षण	१३१
अग्निसंस्कार	१३२
अग्निस्थापन	१३२
ब्रह्मस्थापन	१३३
भूमिजप	१३५
अग्निसम्मुखीकरण	१३५
परिसमूहन	१३६
स्वस्तिक निवेदन	१३७
विंशतिकाष्ठिका होम	१३७
आज्यसंस्कार	१३७
स्रुवसंस्कार	१३६
उदकाञ्जलिसेक (कुशण्डिका)	१३६
अग्निपर्य्यक्षण	१४०
विरूपाक्षजप	१४०
पाणिग्रहणप्रकरण	१४१
नये वस्त्र	१४२
महाव्याहृतिहोम	१४३
व्यस्तसमस्त-महाव्याहृति होम	१४५
लाजहोम	१४५
कन्यापरिणयन	१४५
सप्तपदीगमन	१४६
पतिका आशीर्वाद	१४६
अभ्यागत-आमन्त्रण	१५०
पाणिग्रहण	१५०
उत्तर विवाह	१५३
ध्रुवादि-दर्शन	१५४
भोजनादि-धृतिहोम	१५५

विषय	पत्रांक
वरवधूका महाप्रसाद भोजन	१५६
दम्पतीका त्रिरात्र ब्रह्मचर्य	१५६
वधुका पति गृहमें प्रवेश	१५६
वधूका गृहप्रवेश	१५६
धृतिहोम	१५७
चतुर्थीहोम	१५८
उदीच्यकर्म	१६२
वैष्णव होम-क्रम	१६४
उदकाञ्जलिषेक (उदीच्य)	१६७
दर्भजुटिकाहोम	१६७
पूर्णाहुति	१६८
शांतिदान	१६८
गर्भाधान	१७०
अर्घ्यानुष्ठान-प्रमाण	१७१
पुंसवन	१७३
सीमन्तोन्नयन	१७५
दर्भपिञ्जली	१७७
शोष्यन्तीहोम	१८०
जातकर्म	१८२
निष्क्रामण	१८३
नामकरण	१८६
तिथिहोम (नामकरण)	१८६
नक्षत्र होम (नामकरण)	१८७
पौष्टिक कर्म	१८६
अन्नप्राशन	१६०
मूर्द्धाभिघ्राण	१६४
चूड़ाकरण	१६५
कपूष्णिका	१६७
कपूच्छल	१६६

विषय	पत्रांक
उपनयन	२०१
उपनयनहोम	२०१
ब्रह्मचारी-प्रेषण	२०६
मेखलादान	२०७
उपवीत-परिधापन	२०७
अजिन-परिधापन	२०८
सावित्री-अध्यापन	२०६
ब्रह्मचारीकी भिक्षा	२१०
ब्रह्मचारीका होम	२११
सावित्रीचरुहोम	२१३
समावर्त्तन	२१८
समावर्त्तन होम	२१८
नारायणोपस्थापन	२२१
मेखला त्याग	२२२
उपवीत धारण मन्त्र	२२२

श्लोक-सूची

श्लोक पत्रांक

अ

अंङ्गहीनं क्रियाहीनं १२८
अतसीकुसुमोपमेय ६६
अतोऽस्मि लोके २३
अत्र पिण्डप्रदो ६०
अथ नित्यो देव ......कश्चित् ८,६७
अथ नित्यो ...... भाव्यम् ८
अनन्यशरणो नित्यं ५८
अनन्यशरणो भक्तो १०६
अनन्यसाधनार्थश्च ५८
अविस्मितं तं ५३
अवैष्णवानां सम्भाषा ५८
अम्बरीषञ्च जनकं ११०
अयमुक्तो विधिर्दाने १२३
अर्चयेद्विबुधांश्चेत्तु ११३
अर्चयेन्मन्त्र रत्नेन १०६
अर्चिताः पितरो देवा ७२
अर्च्चिते देवदेवेश ७२
अशुद्धा ब्रह्मरुद्राद्या १११
अश्नन्ति पितरस्तस्य १०८
अष्टौ ध्वजाः ६४
अस्तु तत्सर्वं १२८
अस्पृश्यं तु १११
अहङ्कारविमूढ़ात्मा २
अहो रूपमहो १११
अहो सुनिर्म्मला १११
आर्यावर्त्ते सम्प्रदाता १२३

इ

इतरेषाञ्च देवानां ३५

श्लोक पत्रांक

इतरेषां तु देवानां १०८, १११

उ

उतामृतत्वस्येशानो ६५
उपदेवां स्तथा ११४

ऊ

ऊरुः तदस्य यद्वैश्यः ६६

ऋ

ऋणी स्यात्तदधीनश्च २६

ए

एतस्यावरणत्वेन ११०

ओ

ॐ अथ ...... प्रलीयन्ते ७, ६७
ॐ अद्भ्यः सरः ६६
ॐ एतावानस्य ६५
ॐ कर्मफलाप्तः ...... यजन्तद्वै ४३
ॐ कृष्णानन्त १३२
ॐ कृष्णौ वै ...... कृती ६५
ॐ चन्द्रमा मनसो ६६
ॐ चिदानन्द हृषिकेश १७१
ॐ जगन्नाथ महाबाहो १७१
ॐ तं यज्ञं ६६
ॐ तत् सवितुः २०६
ॐ तद्वान् ...... संन्यासः हे हीति८७
ॐ तद्विष्णोः परमं पदं ६५
ॐ तस्मात् यज्ञात् ...... जज्ञिरे ६६
ॐ तस्मात् यज्ञात् .... पृषदाज्यम६५
ॐ तस्मादश्वाऽजायन्त ६६
ॐ त्रिपादूर्ध्वं उदेत् ६५
ॐ त्रैलोक्यमोहनाय १२६

श्लोक	पत्रांक
ॐ दीनबन्धो	१७१
ॐ नाभ्यासीदन्तरीक्षं	६६
ॐ नारायण हरे राम	१७१
ॐ नारायणाय	१७१
ॐ नित्यो नित्यानां	२२१
ॐ पुरुष एवेदम्	६५
ॐ प्रजापतिश्च	६७
ॐ विश्वात्मन्	१७१
ॐ वेदाहमेतं	६६
ॐ ब्राह्मणोऽस्य	६६
ॐ यज्ञेन	६६
ॐ यत् पुरुषं	६ ६
ॐ यत् पुरुषेण	६६
ॐ यो देवेभ्यः	६७
ॐ रुचं ब्राह्म	६७
ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च	६७
ॐ सप्तास्यासन्	६६
ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः	६५
ॐ स्वस्ति ...... दधातु	६६
ॐ हरे कृष्ण	१२६
क	
कदाचिन्नार्चयेत्	१०६
कन्याप्रदस्तु सर्वत्र	१२३
करोतु स्वस्ति मे	६६
कर्त्ता सर्व्वत्र सुतरां	१००
कर्म्मकारस्ताम्बूलिको	८१
कर्म्म चैव तदर्थीयं	७०
कलाः सर्वे	१५
कल्पकोटिसहस्त्राणि	११२
कल्पकोटिसहस्त्राणि पच्यते	१०८
कामसङ्कल्परहितः	३६
काम्यानां कर्म्मणां	८६
कार्ष्णादयश्च कुर्वन्तु	६६
कालिन्दीजलकल्लोल	६६
कृता याप्यनिरुद्धेन	१
कृतेयं पद्धतिः	२
कृष्णः करोतु कल्याणं	६६
कृष्ण ममैव सर्वत्र	६६
ख	
खर्पराङ्गारकेशास्थि	६३
ग	
गङ्गा कलिन्दतनया	११०
गन्ध-गुवाक-पुष्पाणि	१७१
गावो ह जज्ञिरे	६६
गयायां विरजे चैव	६०
गायत्री तुलसी	११०
गोपालोपासकश्चैव	११०
घ	
घटाश्च चित्रिताः	६३
घोरे कलियुगे प्राप्ते	७६
च	
चतुर्हस्तचतुर्मुष्टि	६३
छ	
छन्दांसि जज्ञिरे	६६
ज	
जम्बाम्रवकुलादीनां	६३
त	
तं पीठगं ये	२२१

श्लोक	पत्रांक
ततः कुर्य्यात् प्रयत्नेन	६३
ततो विश्वङ् व्यक्रामत्	६५
ततो भागवतं	११०
तत्तीर्थं भुक्तमन्नञ्च	११२
तत्र छायामण्डप	६४
तत्र प्रपूजयेत्	१०६
तथा त्यक्त्वा हरिं	५४
तथा मुकुन्दानन्तादीन्	१००
तथा सीतारामयोश्च	१२७
तथैव च सदा कार्ष्णि:	६६
तद्ददाति हि	११२
तद्ब्राह्मणैर्न भोक्तव्यं	१०६
तद्भुक्तमन्नं तीर्थञ्च	११२
तन्नो कृते प्रत्यवायी	४५
तमेव विदित्वा	६६
तस्मात्त्वमेव विप्राणां	११२
तस्मादन्यं परित्यज्य	१०६
तस्माद्विष्णोः प्रसादो	१०८
तस्माद्वै ब्राह्मणो	११२
तस्य त्वष्टा	६६
तस्य पादोदकं	१०८
तस्य योनिं	६७
तस्य स्यान्मङ्गलं	१००
तस्यावरणपूजायां	१०६
तापत्रयेणापि हतस्य	५६
ताम्बूलीकृत्तथा शूद्राः	८१
तेऽपि मामेव कौन्तेय	४८
तेन देवा अयजन्त	६६
ते पाषण्डत्वमापन्नाः	१११

श्लोक	पत्रांक
तेषां न भक्षेत्	३६
ते ह नाकं	६६
त्वत्पादसलिलं	१११
त्वद्भुक्तोच्छिष्टशेषं	१११
त्वं शुद्धसत्त्वगुणवान्	१११
त्वं हि नारायणः	११२
त्वमेव सेव्यो	११३
त्वामेव हि सदा	११३
त्यक्त्वामृतं स मूढात्मा	६४
द	
दमयन्तीनलकयोः	१२७
दानं पूर्व्वमुखः	१२३
देवता पितरः	४६
देवतानाञ्च पितॄणाम्	११२
देवतापितृबन्धूनां	२६
देवर्षिभूताप्तनृणां	२६
देवहूतिकर्द्दमयोः	१२७
देवादिदेवं गोविन्दम्	११३
देवादीनाञ्च पूज्योऽहं	२१
देवा यद् यज्ञं	६६
दैवं कर्म्म	३४
ध	
धर्म्मश्च सत्यञ्च	८२
न	
न काम्यं	४१
न तज्जनानां	३६
न दर्भधारणं	४१
न पश्योत्तान्न गायेच्च	३६
न पश्येन्न च	५८

श्लोक	पत्रांक
नवगोपवधूविलासशाली	६६
नवपुष्पोत्सवे मेऽर्घ्यं	१७१
न राजसी	११०
नानापुष्पादिरचित	६४
नानावर्णपताकाश्च	६३
नान्य कश्चित्	१११
नान्यञ्च पूजयेद्देवं	५८
नान्यदेवं निरीक्षेत	११२
नान्य प्रसादं भूञ्जीत	११२
नान्यान् कदाचित्	११०
नान्येषां विद्यते	१११
नान्योच्छिष्टञ्चभूञ्जीत	५८
नारायणकलाः शान्ताः	११४
नारायणः परं ब्रह्म	१०७
निःशेष कर्मकर्त्ता	७६
नित्यं नैमित्तिकं	३४, ८८
नित्ये नैमित्तिके	११३
निवेदितं तव	११२
निर्माल्यं तु द्विजश्रेष्ठा	१०८
निमाल्यं शङ्करादीनां	१०८
नैसर्गिकं शुभं	१११
न्यूनाः स्युर्निष्फलं	४६

प

श्लोक	पत्रांक
पञ्चवर्णकृतैश्चूर्णैः	६४
पञ्चामृतं पञ्चगव्यं	१७१
पतन्ति पितरस्तस्य	११२
पद्धतिं तां	१
पद्भ्यां भूमिर्दिशः	६६
परं स्वस्त्ययनं नृणां	१००

श्लोक	पत्रांक
पलगण्डस्तन्त्रवायो	८१
पशूंस्तांश्चक्रे	६६
पश्यामि नान्यच्छशरणं	५६
पश्चिमाभिमुखीं कन्यां	१२३
पादोऽस्य विश्वा	६५
पापं भवति धर्म्मोऽपि	७६
पितृभूतप्रजेशादीन्	११४
पितृभ्यश्चैव तद्द्यात्	१०८
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द	१००
पूजयध्वं द्विजश्रेष्ठा	१०६
पूजयेत् विधिना कार्ष्णो	११०
पूज्यत्वाद् ब्राह्मणानां	११३
पूज्याः सर्वे तु	४२
पूर्वादिक्रमतश्चाष्टौ	६४
पूर्वो यो देवेभ्यो	६७
प्रणम्य सच्चिदानन्दं	१
प्रत्यहं यस्त्रिकालज्ञः	८६
प्रयाति परमं	८
प्रशस्ते कर्मणि	६७
प्रसादाय वै	१०६
प्राङ्मुखः सर्वदानेषु	१२३
प्राणोपहाराच्च	२०
प्रायश्चित्तञ्च नो यागः	३६

ब

श्लोक	पत्रांक
बोधञ्च सारथिं	८
ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणः	११३
ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो	१०८
ब्रह्मण्यः श्रीपतिः	१०७
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च	१११

श्लोक	पत्रांक
ब्रह्मलोकमवाप्नोति	८६
ब्राह्मणः क्षत्रियो	८०
ब्राह्मणत्वे बभूवुस्ते	११३
ब्राह्मणानां त्वमेवेशो	१११
ब्राह्मणोऽपि मुनिर्ज्ञानी	६२
भ	
भक्तप्रेमवशक्रिया	१३२
भगवद्धर्मरक्षार्थं	१
भट्टश्रीभवदेवेन	२
भवार्णवच्छिन्न कोऽपि	५५
भूवने सर्व्वलोकानां	५५
भूतानि यान्ति	३२
भूमौ कुर्य्यात्	६३
भूसुराणां च	१११
म	
मङ्गलं भगवान्	१००
मङ्गलं हृषिकेशोऽयं	१००
मङ्गलाचरणं चैतत्	६४
मङ्गलायतनं कृष्णः	१००
मत्पूजनेन सर्व्वार्च्चा	२१
मनुं स्वायम्भुवं	११०
मन्दोदरीरावणयोः	१२७
मन्वादिधर्म्मशास्त्रोक्तैः	२
माधवं पुण्डरीकाक्षं	१००
माधवो माधवो वाचि	६६
मामृतेऽन्यांस्तु विबुधान	११४
मुखं किमस्य	६ ६
मुखवाद्यैर्ललुलाखैः	६४
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च	६६
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यः	६१
मुमुक्षवो घोररूपान्	११४
मृद्भिवार्भिः पवित्राभिः	६३
मोहाद् यः पूजयेदन्यं	१०८
मोहाद् यो ब्राह्मणो	११३
मोहेन कुरुते यस्तु	६२
य	
यः कश्चित् पुरुषो	६१
यं ब्रह्म वेदान्तविदो	६४
यज्ञश्च दानञ्च	८३
यज्ञे तपसि दाने च	७०
यत्पूजनेन विबुधाः	१८
यतः सर्व्वाणि	११
यत्र मातृगणाः	११०
यत्र यजन्ति विधिना	१०६
यत्र यत्र सुराः	१०६
यथाऽहल्यागौतमयोः	१२७
यथा तरोर्मूल	२०
यथा धृत्वा शुनः पुच्छं	५४
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते	१७
यदि मोहात् तु	११३
यद्यर्च्चयेदवैष्णवान्	११४
यस्त्वेव ब्राह्मणो	६७
यस्तु विष्णुं परित्यज्य	६५
यस्मात् क्षरं	२२
यस्मिंश्च प्रलयं	११
यस्मिन्नवग्रहा अर्च्याः	१०६
यान्ति देवव्रता	३२
युगे युगे च	११०

श्लोक	पत्रांक
येऽर्च्चयन्ति सुरानन्यान्	१११
येऽप्यन्यदेवता भक्ता	४८
येषामिन्दीवरश्यामो	१००
यो न दद्यात्	१०८
र	
रक्षोयक्षपिशाचानां	१०६
रजस्तमः प्रकृतयः	११४
राधाकान्त दुरन्तसंसृति	१३२
रुक्मिण्याद्यास्तथा	११०
रूपमश्विनोर्व्यात्तं	६७
ल	
ललिताद्याः सहचरीः	११०
लाभस्तेषां जयस्तेषां	१००
व	
वक्ति गृहिद्विजादीनां	१
वराय प्राङ्मुखायेह	१२३
वर्णाश्रमान्त्यजादीनां	२
वसन्तो अस्यासीदाज्यं	६६
वासुदेवं जगन्नाथम्	१००
वासुदेवं परित्यज्य	६४
वासुदेवपरा मर्त्त्यास्ते	७६
विदूरयति विप्रत्वं	६२
विनोपसर्पत्यपरं	५३
विप्राणां वेदविदुषां	१११
विष्वक्सेनं ससनकं	१०६
वश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं	६४
विष्णुः सर्व्वगतो	११३
विष्णुभक्तस्तु कुरुते	३५
विष्णुभक्तिसमायुक्तो	८०

श्लोक	पत्रांक
विष्णुमन्त्रोपदिष्टश्चेत्	२७
विष्णूच्चारणमात्रेण	१००
विष्णोर्निवेदितं	१०८
विष्ण्वर्च्चने तत्र तत्र	१०६
विष्ण्वाख्यं पदं	८
वैष्णवस्य न सङ्कल्पो	३६
वैष्णवान् भज कौन्तेय	११४
वैष्णवानाञ्च कार्य्याणां	११०
वैष्णवो नान्यविबुधान्	३६
श	
शङ्खघण्टादीनां घोषैः	६४
शतरूपास्वयम्भुवयोः	१२७
शुद्धपूतः सदा कार्ष्णः	३६
शुद्धसत्त्वमयो विष्णुः	१०७
शुद्धाभिर्मातृकाभिश्च	६३
श्रीकृष्ण परमानन्दं	१
श्रीकृष्णोपासकस्तु	११०
श्रीगोपीजनवल्लभ	१३२
श्रीद्रौपदीपाण्डवयोः	१२७
श्रीनारायणभट्टेन	२
श्रीविष्णोः पूजयेत्	१०६
श्रीमद्गोपालभट्टोऽयं	१
श्रीमद्गोविन्द भक्तानां	२
श्रीमद्गोविन्दानन्देन	१
श्रीयशोदा देतहूतिः	११०
श्रीलक्ष्मीपीताम्बरयोः	१२७
श्रीसीता द्रौपदी	११०
स	
संस्कृतायामुत्तमायां	६३

श्लोक	पत्रांक
स एव पूज्यो	१०८
स कर्त्ता सर्वधर्माणां	७७
स कर्त्ता सर्वपापानां	७७
सकृदेव हि योऽश्नाति	१०८
सङ्कल्पञ्च तथा दानं	२७
स जातो अत्यरिच्यत	६५
सत्यं कलियुगे विप्र	१००
सद्भावे साधुभावे च	६७
सदान्यदेवताभक्तिः	६२
सदा भगवती	११०
सदाशिवं वैनतेयं	११०
सनन्दनसनत्कुमारौ	१०६
सन्न्यासः कर्म्मणां	८८
स भूमिः विश्वतो	६५
स हेमराशिमुत्सृज्य	६५
सर्व्वकर्म्मफलत्यागं	८६
सर्व्वकर्म्मसु राजेन्द्र	४२
सर्व्वत्र प्राङ्मुखो दाता	१२३
सर्व्वविघ्नानि नश्यन्ति	१००
सर्व्वात्मना यः शरणं	२६
सर्व्वे ग्रहाः	१६
सर्व्वेषां पितृदेवानां	४५
सर्व्वेषां भूसुराणां	१११
सर्व्वेषामेव देवानां	११३
साध्व्यो विचित्रितां	६४
स्वर्गापवर्गदं	१०८
स्मरणादेव कृष्णस्य	१०८
स्मरन्ति साधवः सर्वे	६६

ह

श्लोक	पत्रांक
हरिद्रा कुङ्कुमं	१७१
हरिनामपरा ये च	७३
हरिपूजापरा ये च	७३
हरेरर्घ्यं भवेत्	१७१
हरेराम	१२६
हर्यर्च्चने यजेन्नित्यं	११०

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः

सत्क्रियासार-दीपिका

ग्रन्थतात्पर्य श्लोका

विषयसम्बन्धप्रयोजनात्मकाः

प्रणम्य सच्चिदानन्दं जगतां सेव्यमीश्वरम् ।
श्रीकृष्णं परमानन्दमनन्याभीष्टदायकम् ।।१।।
वक्ति गृहिद्विजादीनामनन्यानां विशेषतः ।
पद्धतिं तां विवाहादेः सत्क्रियासारदीपिकाम् ।।२।।
श्रीमद्गोपालभट्टोऽयं साधूनामाज्ञया भृशम् ।
भगवद्धर्म्मरक्षार्थं भक्तानां वैदिकी तु या ।।३।।
कृता याप्यनिरुद्धेन भीमभट्टेन या कृता ।
श्रीमद्गोविन्दानन्देन कर्म्मिणां पद्धतिः कृता ।।४।।

सम्पूर्ण जगत्‌के परम सेव्य, सच्चिदानन्द विग्रह, ऐकान्तिक (श्रीराधा-गोविन्दजीके) उपासकोंके सर्वाभीष्टप्रदाता, रसिक-भक्तोंके नित्यपरमानन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णको प्रणामकर वैष्णवसन्तोंकी आज्ञासे ऐकान्तिक-गोविन्दोपासक-गृहस्थ ब्राह्मणादि सभी वर्णों तथा अन्यान्य वर्णसंकर आदि भक्तोंके सर्वतोभावेन् **भगवत्-धर्मकी रक्षाके लिए**, भगवत्-धर्मके उत्कर्ष एवं वैशिष्ट्यके प्रति लक्ष्य रखकर मैं **श्रीगोपालभट्ट (प्रस्तुत)** "**सत्क्रियासार-दीपिका**" नामक वैदिकी विवाहादि संस्कारोंकी पद्धतिकी रचना कर रहा हूँ ।।(१-३)।।

श्रीअनिरुद्धभट्ट, श्रीभीमभट्ट और श्रीगोविन्दानन्दभट्टने कर्मियोंके लिए वैदिकी पद्धतियोंकी रचनाएँ की हैं। श्रीनारायणभट्ट महाकर्मियोंके लिए

श्रीनारायणभट्टेन कर्म्मठानान्तु वैदिकी ।
भट्टश्रीभवदेवेन छन्दोगानान्तु या कृता ।।५।।
वर्णाश्रमान्त्यजादीनां वेदैः पौराणिकादिभिः ।
मन्वादिधर्मशास्त्रोक्तैर्वचनैः स प्रमाणकैः ।।६।।
श्रीमद्गोविन्दभक्तानां सेवा-नामापराधतः ।
कृतेयं पद्धतिः किन्तु पितृ-देवार्चनं विना ।।७।।

तत्र सम्बन्धश्लोकार्थः

नन्वपरग्रन्थकारवद् ग्रन्थकर्त्तृत्वेनास्मद्विधस्य स्वनाम निबद्धुमनुचितं, "**अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते**" इति दोषश्रवण-भयात्, तथापि स्वयूथ्यानां साधूनामाज्ञया स्वनाम निबद्धम्,—श्रीमद्गोपालभट्टनामायं कोऽपि जीवः । श्रीमद्गोपाल भट्टत्वेन ज्ञापितं (यदयं) श्रीकृष्णचैतन्यचरणारविन्द-मकरन्दसततपायित्वेन सदैव साधूनिदेशवर्त्तीति।

एवं श्रीभवदेवभट्टने भी सामवेदीय कर्मियोंके लिए पृथक् रूपमें वैदिकी पद्धतिकी रचना की है। उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ भी वैदिकी पद्धति ही है।।(४, ५)।।

वर्णाश्रमधर्मके अन्तर्गत एवं उसके बहिर्भूत अन्त्यजादि वर्णोंमें उत्पन्न श्रीगोविन्दके ऐकान्तिक भक्तोंके लिए वेद, पुराण और मन्वादि धर्म-शास्त्रोंके सप्रमाण वचनोंके द्वारा **सेवापराध और नामापराधसे बचनेके लिए पितृ और देवार्चनका वर्जनकर** यह पद्धति-ग्रन्थ रचित हुआ है ।।(६, ७)।।

"अहंकार विमूढात्मा व्यक्ति 'मैं ही कर्त्ता हूँ'—ऐसा समझता है।" श्रीगीताके इस श्लोकसे सूचित अपराधके भयसे, साधारण ग्रन्थकारकी भाँति इस ग्रन्थके ग्रन्थकारके रूपमें अपना नाम उल्लेख करना अनुचित है। तथापि स्वसम्प्रदायी वैष्णवोंकी आज्ञासे ही अपने नामका उल्लेख

प्रणामश्लोकार्थः

एवंविशिष्टोऽयं श्रीकृष्णं प्रणम्य। श्रीकृष्णशब्दार्थः पुरैव (अन्यत्र) व्याख्यातः। किं विशिष्टं ? सच्चिदानन्दं गुणातीतानिर्व्वचनीयपरममनोहरलावण्यघनं सुखस्वरूपमतएव जगतां सेव्यम् । तत्रायं भावः—जगत्सेव्यत्वेन नित्याणिमादिसकलवैभवसुखपरिपूर्णतया ब्रह्माण्डान्तर्गतानां ब्रह्मादीनां सर्व्वेषां तथा श्रीविराडादिसर्व्वावताराणाञ्च सेवनीयं, यत ईश्वरं जगदीश्वरमित्यर्थः । गुणातीतत्वात् षड्गुणशाली श्रीभगवान् कृष्णः सर्व्वावताराणां मत्स्यादीनामपि सेव्यः । अपरं किं वक्तव्यं— नित्यं परपदधाम्नः वैकुण्ठस्येश्वरस्य श्रीमहाविष्णोरपि सेवनीयः, अन्येषां ब्रह्मादिदेवानां का वार्त्ता। यतः, परमानन्दं परमाणां

किया गया है। यह व्यक्ति श्रीमान् गोपालभट्ट नामक कोई एक जीव है। यह सदासर्वदा श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंकी सुधापान करनेवाला होनेके कारण सदा ही सद्वैष्णवोंकी आज्ञाके अधीन है (यह भाव गोपालभट्ट गोस्वामीके द्वारा सूचित होता है।)

ऐसा यह व्यक्ति श्रीकृष्णको प्रणामकर (कह रहा है)। "श्रीकृष्ण"—शब्दका अर्थ पहले ही बतलाया गया है। श्रीकृष्ण कैसे हैं?—सच्चिदानन्द, गुणातीत, अनिर्वचनीय, परम मनोहर और लावण्यकी मूर्ति हैं; सुखस्वरूप हैं—अतएव सम्पूर्ण जगतके सेव्य हैं—इस विशेषणके द्वारा वे नित्य अणिमादि संपूर्ण वैभव सुखसे परिपूर्ण होनेके कारण ब्रह्माण्डके अन्तर्गत ब्रह्मादि समस्त देवताओं एवं विराट आदि सभी अवतारोंके भी सेव्य हैं। क्योंकि कृष्ण ईश्वर हैं अर्थात् ईश्वरोंके भी ईश्वर सर्वेश्वरेश्वर हैं। षडैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण गुणातीत होनेके कारण समस्त अवतारोंके— मत्स्यादि अवतारोंके भी सेव्य हैं। अधिक क्या?—परमपदधाम वैकुण्ठके अधीश्वर श्रीनारायण एवं कारणोदकशायी महाविष्णुके भी सेवनीय हैं,— ब्रह्मादि दूसरे देवताओंकी तो बात ही क्या ? वे परमानन्द हैं, परम-

जगन्निवासिनां मध्येऽतिशयोत्तमश्लोक-लोककाष्ठानां रसिक-भक्तानां सततसुखानुभवस्वरुप आनन्दो यस्मिन् तं, अतः कारणा-दनन्याभीष्टदायकमनन्यानां श्रीकृष्णैकचित्तानां वाञ्छितकृष्ण-सुखवैभवप्रदं, न त्वन्यवैष्णवानां—का कथाऽपरेषाम् ।।१।।

प्रयोजनश्लोकार्थः

श्रीसत्क्रियासारदीपिकायामनन्यानां केवलं श्रीगोविन्दो-पासकानां गृहिद्विजादीनामित्यनेन **गृहस्थ-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रसंकरान्त्यजादीनां भक्तानां केवल-सद्गुरूपदिष्ट-श्रीभगवन्मन्त्रदीक्षितानां** भृशमत्यर्थं विशेषतश्च (१) यथा स्यात्तथा श्रीभगवद्धर्मरक्षार्थं पद्धतिं वक्ति (२)। अयमर्थः,—नित्य-नैमित्तिक-काम्यकर्म-पितृदेवार्च्चनकर्मभ्योऽतिशयः श्रीभगवद्धर्मः। **(स च) श्रीसद्गुरुश्रीभगवन्नाममन्त्रदीक्षितवन्तं** वर्णाश्रमादिलोकं

समूहके अर्थात् जगत्वासियोंमें ऐकान्तिक रूपमें उत्तमश्लोकधामनिष्ठ रसिकभक्तोंके नित्य-सुखानुभवस्वरूप 'आनन्द' जिसमें सर्वदा विद्यमान रहता है। इसलिए वे अनन्याभीष्टदायक—अनन्य अर्थात् श्रीकृष्णके अनन्यभक्तोंके अभिलषित कृष्ण-सुखवैभवप्रदानकारी हैं । अन्य वैष्णवोंके नहीं । अवैष्णव आदिकी तो बात ही दूर रहे ।।२।।

इस सत्क्रियासार-दीपिका ग्रन्थमें एकमात्र श्रीगोविन्दके अनन्य **[गृही द्विजादि पदके द्वारा केवल श्रीसद्गुरुद्वारा श्रीभगवन्नाम-मन्त्रमें दीक्षित गृहस्थ-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-संकर और अन्त्यजादि भक्तोंको समझना होगा ।]**—भृश अर्थात् सब प्रकारसे भगवत्धर्मकी रक्षाके लिए उनका विशेष या वैशिष्ट्य हेतु यह पद्धति लिख रहे हैं । तात्पर्य यह है

---

(१) विशेषतो विशेषात्, भगवद्धर्मस्यास्य अनेभ्य उत्कर्षाद्धेतोः ।

(२) भगवद्धर्मरक्षार्थं तां पद्धतिं वक्ति या वैदिकी तु वैदिक्येव इत्यन्वयः ।

यथा न त्यजति तन्निमित्तं विशेषत इयं मता । ननु सर्व्वकर्म्मिमतेभ्यः श्रीभगवद्धर्म्मनैष्ठिकमतं श्रेष्ठम् । अतः (१) श्रीभगवद्धर्म्मानुष्ठिता वैदिकी पद्धतिः कर्म्मिपद्धतिभ्योऽतिशयश्रेष्ठतमा ।।२-३।।

विषय—श्लोकार्थः

श्रीभगवद्धर्म्मरक्षा—तत्कथा विशिष्यते । पूर्व्वं ऋक्सामाथर्व्वयजुर्विदां मतानुयायिनी या (वैदिकी) पद्धतिः कर्म्मिणा श्रीमदनिरुद्धभट्टेन कृता; अतःपरं श्रीभीमभट्टेन कर्म्मिणा सदा मत्तवत् कर्म्मैकान्तिना या पद्धतिः कृता; तथा श्रीमद्गोविन्दानन्दभट्टेन या पद्धतिः कृता, कर्म्मिणां सर्व्वकर्म्मनिपुणानां; अतःपरं श्रीनारायणभट्टेन कर्म्मठानामतिशय-वेदज्ञत्वेन महाकर्म्मशालिनां

कि—श्रीभगवद्धर्म—नित्य, नैमित्तिक, काम्यकर्म और पितृदेवार्चन आदि कर्मोंसे सर्वथा विलक्षण है । **श्रीसद्गुरुके द्वारा भगवन्नाम-मन्त्रमें दीक्षित** वर्णाश्रम आदिमें स्थित लोगोंको भगवद्धर्म त्याग न दे, इस उद्देश्यसे यह पद्धति विशेष रूपसे आवश्यक है । सब प्रकारके कर्मियोंके मतोंकी अपेक्षा भगवत् धर्मनिष्ठ वैष्णवोंका मत श्रेष्ठ है । इसलिए भगवत्-धर्ममें अनुष्ठित वैदिकी पद्धति, कर्म पद्धतियोंसे सब प्रकारसे श्रेष्ठ है ।।(२-३)।।

श्रीभगवद्धर्म रक्षाके वैशिष्ट्योंको बतला रहे हैं । पहले कर्मी श्रीमद्अनिरुद्धभट्टने ऋक्-साम-अथर्व तथा यजुर्विदगणोंके मतानुसार वैदिकी पद्धतिकी रचना की है, तत्पश्चात् उन्मत्तप्राय एकान्त कर्मी भीमभट्टने भी एक पद्धति लिखी है । श्रीगोविन्दानन्द भट्टने भी सर्वकर्ममें निपुण व्यक्तियोंके लिए एक पद्धति लिखी है । इसके बाद नारायण भट्टने ऐकान्तिक वैदिक महाकर्मियोंके लिए एक वैदिकी विधान प्रस्तुत किया है । श्रीभवदेवभट्टने सामवेदीय कर्ममें निपुण व्यक्तियोंके लिए पृथक् रूपसे एक

---

(१) यत इति पाठान्तरम् ।

या पद्धतिः कृता; श्रीभवदेवभट्टेन छन्दोगानां सामवेदोक्त-कर्म्मनिपुणानां या पद्धतिः कृता; अतःपरं श्रीद्राविड़ीयैः ऋक्साम-यजुर्वेदविद्भिः पुराणनानाशास्त्रज्ञैर्भट्टवृन्दैर्या या कर्म्मिणां पद्धतिः कृता । यथा वेदैर्वेदोक्तप्रमाणवचनैः, पौराणिकादिभिरित्यनेन पुराणोपपुराण-भागवतागम-यामल-रामायणापरशास्त्रादि-वचनैस्तथा मन्वाद्यष्टादशधर्मशास्त्रोक्तवचनैः सप्रमाणकैस्तथा ताभ्यः पद्धतिभ्यः श्रीभगवद्धर्मरक्षानुरूपैः सारातिसारैः सप्रमाणवचनैर्मया श्रीमद्गोविन्दभक्तानां वर्णाश्रमान्त्यजादीनां,—आदिपदेन कानीन-गोलक-जारजादीनां ग्रहणं, श्रीमद्गोविन्द-भक्तत्वेनानन्यशरणानां ग्रहणं,—सेवा नामापराधतः (१) निवृत्ति-चतुर्थ्यर्थे तसि,—पद्धतिरियं कृता,—किन्तु **पितृ-देवार्च्चनं विना** ।।(४—७)।।

पद्धतिका प्रणयन किया है । उसके पश्चात् ऋक्-साम-यजुर्वेदविद्, पुराण आदि-नानाशास्त्रज्ञ द्रविड़देशीय भट्टवृन्दने कर्मियोंके लिए एक पद्धतिका प्रणयन किया है । जैसे वेदोक्त प्रमाण-वाक्यों, सप्रमाण-पुराण-उपपुराण-भागवत-यामल-आगम-रामायण तथा दूसरे-दूसरे शास्त्रादि-वचन एवं मन्वादि अष्टादश-धर्मशास्त्रोंमें उल्लिखित प्रमाण वचनों द्वारा भगवद्-धर्मकी रक्षाके लिए पद्धतियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, उसी प्रकार वर्तमान सत्क्रियासार-दीपिका नामक पद्धतिमें भी उन पद्धतियोंसे भी अधिक रूपमें भगवद्धर्मकी शिक्षाके अनुरूप सारातिसार उत्कृष्ट सप्रमाण-वचनोंके द्वारा वर्णाश्रमधर्मके अन्तर्गत ब्राह्मणादि सभी वर्णोंके, यहाँ तक कि अन्त्यज-वनवासी-गोलोक-जारजादि वर्णबहिर्भूत श्रीगोविन्दभक्तों अर्थात् अनन्य भगवत्परायण भक्तोंके लिए सेवा-नामापराध आदिके निवारणको

---

(१) सेवा-नामापराधतः सेवा-नामापराधेभ्यः सेवा-नामापराधनिवारणायेत्यर्थः, मशकाय धूम इतिवच्चतुर्थी । निवृत्तिचतुर्थी—तादर्थ्ये चतुर्थीत्यर्थः । सेवा-नामापराध निवारण निमित्त । निमित्तचतुर्थीति पाठान्तरम् ।

पितृदेवार्च्चननिषेधप्रमाणवाक्येषु
प्रथमं श्रीनारायणोपनिषद्वाक्यं

श्रीविष्णुमन्त्रादीक्षितवर्णाश्रमादि-शैव-शाक्त-सौर-गाणपत्यादिव्यतिरेकेणा**नन्यशरणवर्णाश्रम-सङ्करान्त्यजादीनां गृहस्थभक्तानां पितृदेवार्च्चनादिकं क्वापि वेदे लोके धर्म-शास्त्रागमस्मृतिपुराणादौ च नास्ति । एतेषामेतस्मिन् कृते सत्यपि सेवा-नामापराधो जायते ।**

तत्र प्रथममथर्व्ववेद-श्रीनारायणोपनिषद्प्रमाणमाह,—

"ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति प्रजाः सृजेरन् । नारायणाद्ब्रह्मा जायते, नारायणादिन्द्रो जायते, नारायणाद्द्वादशादित्या रूद्राः, सर्व्वा देवताः सर्व्वे ऋषयः सर्व्वाणि भूतानि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते । नारायणे प्रलीयन्ते ।" "अथ नित्यो देव एको नारायणो ब्रह्मा च नारायणः शिवश्च

लक्ष्य रखकर (सेवा-नामापराधको दूर रखकर भगवद्भक्ति साधन करनेके लिए) यह पद्धति लिखी गयी है—**किन्तु पितृ-देवार्चन वर्जनकर** यह पद्धति उल्लिखित हुई है ।।(४-७)।।

विष्णुमन्त्रमें अदीक्षित वर्णाश्रमस्थित शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्यादिके अतिरिक्त एकान्त गोविन्द उपासक वर्णाश्रम संकर और अन्त्यजादि गृहस्थ **भक्तोंके लिए पितृ-देवार्चनादि कर्मोंका अनुष्ठान** वेदशास्त्र, धर्मशास्त्र, आगम, स्मृति, पुराणादिमें तथा लोकव्यवहार अथवा लौकिकशास्त्रोंमें **कहीं भी विहित नहीं है** । प्रत्युत् पितृ-देवार्चन आदि अनुष्ठित होनेपर अनन्य भक्तोंके लिए **सेवा और नामापराध घटित होता है ।**

ऐकान्तिक गोविन्द भक्तोंके लिए पितृ और दूसरे-दूसरे देवताओंका अर्चन निषिद्ध है; इस विषयमें सबसे पहले अथर्ववेदीय नारायण उपनिषद्का प्रमाण प्रस्तुत किया जा रहा है—

"परमपुरुष श्रीनारायणने कामना की—'प्रजाकी सृष्टि करूगा' उसीसे

नारायणः शक्रश्च नारायणो रुद्राश्च नारायणो वसवोऽश्विनौ च नारायणः सर्व्वे ऋषयश्च नारायणः कालश्च नारायणो दिशश्च नारायणोऽधश्च नारायण ऊर्ध्वञ्च नारायणो मूर्त्तोऽमूर्त्तश्च नारायणोऽन्तर्बहिश्च नारायणः । नारायण एवेदं सर्व्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । अथ नित्यो निष्कलो निराख्यातो निर्व्विकल्पो निरञ्जनः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् । य एवं वेद,—

बोधञ्च सारथिं कृत्वा मनःप्रग्रहवान् पुमान् ।
प्रयाति परमं पारं विष्णवाख्यं पदमव्ययम् ।
विष्णवाख्यं पदमव्ययमिति" ।।१।। (क)

प्रजाएँ सृष्ट हुईं । नारायणसे ब्रह्माने जन्मग्रहण किया, नारायणसे इन्द्र उत्पन्न हुए, नारायणसे ही द्वादश आदित्य, रुद्रगण, सभी देवता, सभी ऋषि, सभी प्राणी उत्पन्न हुए और अन्तमें वे सभी नारायणमें ही विलीन हो जाते हैं । अतएव एकमात्र नारायण ही नित्य परमदेवता हैं। इन्द्र, रुद्रगण, वसुगण, अश्विनीकुमारद्वय, सभी ऋषि, सभी दिशाएँ तथा अधः, उर्ध्द, मूर्त्त, अमूर्त्त, अन्तः और बाह्य—सभी नारायण हैं । यह समग्र विश्व जो हुआ है, और जो होगा, वह सब कुछ नारायण हैं । ये नारायण नित्य, निष्कल, निराख्यात (अनिर्वचनीय), निर्विकल्प, निरञ्जन, विशुद्धसत्त्वमय देवता हैं । वे एक एवं अद्वितीय हैं । उनके समान कोई भी दूसरा नहीं

(क) दूसरे ग्रन्थमें यह उपनिषद मंत्र न्यूनाधिक रूपमें देखा जाता है । जैसे कठोपनिषदमें—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।।
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परां बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ।।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ।।१/३/९-११।।

नारायणोपनिषद्वाक्यव्याख्या

ननु सर्व्वमूलभूतत्वेनानन्यतया सृष्टेः पूर्व्वं स्थितिसमये महाप्रलये च सदास्थायितया श्रीमन्नारायणो नित्यः, श्रीब्रह्मादीनां सर्व्वलोकानां सेवनीयो नान्योऽपरः । अत्र प्रमाणत्वेनाथर्व्ववेदे श्रीमदंगिरसा या श्रीनारायणोपनिषत् स्पष्टीकृता तस्या अर्थमाह—ॐ अथ पुरुष इति । इह संसारे, वै निश्चितं भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालत्रये प्रणवश्छन्दसामहमिति वचनात् "ॐ" स्वयमेव नारायणः । अयमर्थः—नरि भवा ये पुत्रपौत्रादि-रूपेण ते नराः, तेषां नराणां मनुष्यमात्राणामयनमाश्रयो यः

हैं। जो ऐसा जानते हैं वे बुद्धिको सारथि एवं मनको लगाम बनाकर 'परम', 'पार', 'अव्यय', 'पद' स्वरूप विष्णुको ही सुनिश्चित रूपमें प्राप्त होते हैं" ।।१।।

सम्पूर्ण विश्वके मूल तथा कारण होनेसे सृष्टिके पूर्व, सृष्टिकी स्थितिकालमें महाप्रलय तथा महाप्रलयकालमें नित्य वर्त्तमान रहनेके कारण नारायण नित्य हैं एवं ब्रह्मादि समस्त लोकोंके सेवनीय हैं । दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है । इस विषयमें श्रीमद्अंगिरा-अथर्ववेदीय नारायणोपनिषद्का वचन प्रमाण है । उसका अर्थ दिया जा रहा है—छन्दोंमें मैं ही 'प्रणव'

पुनस्तत्रैव—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ।।
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ।।२/३/७,८।।

एवं गोपालपूर्वतापिन्यां—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तं पीठगं येऽनुभजन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।
एतद्विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्युक्तास्तं यजन्ति न कामात् ।
तेषामसौ गोपरूपः प्रयत्नात् प्रकाशयेदात्मपदं तदेव ।।

पुरुषः स स्वामितुल्यतया प्रभुः सेव्यः स्तुत्यः पूज्यः स्मरणीय इत्यादि, कोऽप्यपरो नास्ति प्रभुः, स नारायणः पुरुषोऽथ महाप्रलयानन्तरं यदाऽकामयत मनसा सिसृक्षा क्रियते । तत् किं?—प्रजाः सृजेय इति । एवं मनसि कृते सति ततस्तदा तस्मान्नारायणाद्ब्रह्मा जायते भवति, तेन ब्रह्मणा प्रजाः सृजेरन्। प्रजा इति बहुवचनेनैव ब्रह्मणो मानस-देहजाद्याः सर्व्वाः प्रजाः सृष्टा भवन्तीत्यर्थः। एवं नारायणादिन्द्रो जायते सगणस्तथा सपरिवारा द्वादशादित्या जायन्ते, तथा रुद्राः स्वभूतगणसहिता रुद्राणीभिः सममेकादश रुद्रा जायन्ते ।अपरा गणेशादिदेवता-स्त्रयस्त्रिंशत्कोटयो नारायणात् क्रमशो भवन्ति । तथा सर्व्वे ऋषयो देवर्षि-महर्षि-राजर्ष्याद्याः श्रीनारायणात् स्युः । तथा

हूँ—इस वचनके अनुसार इस संसारमें भूत-भविष्य-वर्तमान तीनोंही कालोंमें 'ॐकार' स्वयं ही सुनिश्चित रूपमें नारायण स्वरूप हैं । 'नृ' अर्थात् मूल पुरुषके द्वारा पुत्र-पौत्रादिके रूपमें उत्पन्न 'नर'—उन्हीं नरोंके अर्थात् मनुष्यमात्रके 'अयन' अर्थात् आश्रय जो पुरुष हैं, वे ही सबके स्वामी होनेके कारण प्रभु, सेव्य, स्तुत्य, पूज्य, स्मरणीय इत्यादि हैं । दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है । उन श्रीनारायण—'पुरुष' ने महाप्रलयके अन्तमें इच्छा की कि 'मैं प्रजाकी सृष्टि करुँगा' । ऐसी इच्छा होते ही नारायणसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, नारायणसे उन्हीं ब्रह्माके द्वारा लोकोंकी सृष्टि हुई। साथ ही ब्रह्माकी मानस और दैहिक सब प्रकारकी प्रजाएँ हुईं—बहुवचनान्त 'प्रजाएँ' शब्दके द्वारा ऐसा ही समझना होगा । इस प्रकार नारायणसे गणोंके सहित इन्द्र, सपरिवार द्वादश आदित्य, भूतों और रुद्राणीके सहित एकादश रुद्र उत्पन्न हुए, गणेशादि तैतीस करोड़ देवता भी नारायणसे ही क्रमशः उत्पन्न हुए, उसी प्रकार देवर्षि, महर्षि, राजर्षिवृन्द भी नारायणसे ही समुद्भूत हुए । स्थावर जंगमादि सब प्रकारके प्राणी भी नारायणसे भलीभाँति उत्पन्न हुए । तत्पश्चात् ये सभी नारायणमें ही

स्थावरजङ्गमादीनि भूतानि सर्वाणि श्रीनारायणादेव समुत्-पद्यन्ते सम्यक्प्रकारेणोत्पन्नानि भवन्ति । अतःपरं श्रीनारायणे प्रलीयन्ते । अयं भावः,—सृष्टेरनन्तरं स्थितये तेन परिपालिता भवन्ति; अथानन्तरं श्रीनारायणे प्रलीयन्ते, महाप्रलय एकस्मिन्नेव श्रीनारायणे श्रीब्रह्मादयः सर्व्वजीवमात्रा अक्षयत्वेन प्रकर्षेण लीना भवन्ति पुनरावृत्तेः । अत्र प्रमाणमाह श्रीमहाभारते,—

यतः सर्व्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ।।

आदियुगागमे जगत्सृष्टेः प्रथमम् । यतः श्रीनारायणात् सर्व्वाणि भूतानि ब्रह्माद्यखिलजीवा भवन्ति, यस्मिंश्च नारायणे—चकारात् स्थितिसमये ततः परिपालिताः सन्तस्तिष्ठन्ति, पुनरेव युगक्षये महाप्रलये यस्मिन् श्रीनारायणे प्रलयं यान्ति पुनरावृत्तये प्रविशन्ति ।

नारायणस्य विश्वरूपत्वं

एवंविशिष्ट एको देवः श्रीनारायणः सर्व्वलोके सर्व्वदापूज्यत्वेन

प्रविष्ट हो गये । तात्पर्य यह है कि सृष्टिके पश्चात् स्थितिकालमें नारायणद्वारा पालित होकर महाप्रलयमें एकमात्र नारायणमें ही ब्रह्मादि सभी जीव अक्षय होनेके कारण संसारमें पुनः लौट आने तक प्रकृष्ट रूपमें विलीन रहा करते हैं ।

इस विषयमें श्रीमहाभारतका प्रमाण दिया जा रहा है—'कल्पके प्रारम्भमें सत्ययुगमें निखिल प्राणी जिससे जन्म ग्रहण करते हैं, पुनः कल्पके अन्तमें प्रलयके समय जिनमें विलीन हो जाते हैं, वही नारायण हैं।' पुनः आदियुग अर्थात् सत्ययुगके आनेपर जगत् सृष्टिके पूर्व जिस नारायणसे ब्रह्मादि अखिल प्राणी जन्म ग्रहण करते हैं । 'च'-कारके द्वारा स्थितिकालमें परिपालित होते हैं तथा पुनः पुनरावृत्तिके लिए युगके अन्तमें महाप्रलयके समय ये नारायणमें प्रविष्ट हो जाते हैं ।

विराजमानो, यतो नित्योऽविनाशी महाप्रलयेऽपि सदास्थायीति शेषः । अतो ब्रह्मा च नारायणः । अयमर्थः, श्रीब्रह्मादिसर्व्वाराध्यत्वेन श्रीनारायणात् **श्रीब्रह्मा,—चकारात् गणेशादयस्त्रिंशत्कोटिदेवतागणाः,—अपरमानस-देहजादिपुत्र-पौत्र-प्रपौत्रादिसहितः पृथगीश्वरो न भवति**। एवं सर्वत्रान्वेष्टव्यमिति । शिवश्च नारायणः, शिवो महाप्रलयकर्त्ता, चकारात् स्वकीयगणसहितः । तथा शक्रश्च नारायणः, शक्रो महेन्द्रश्चकारात् सर्व्वपरिवारयुक्तः । तथा रुद्राश्च नारायणः, रुद्रा एकादश रुद्राश्चकारात् स्वभूतगण-रुद्राणीवृन्दसहिताः । वसवोऽश्विनौ च नारायणः, वसवोऽष्टवसवः सगणाः, अश्विनौ च अश्विनीकुमारौ चकारात् सङ्गिसहितौ । तथा सर्व्वे ऋषयश्च नारायणः, सर्व्वर्षित्वेन देवर्षि-महर्षि-राजर्ष्यादयश्चकारात् मुनि-तपस्विवालखिल्यगणाः सिद्ध-साध्य-चारण-गन्धर्व्व-दैत्य-यातुधान-किन्नरादयश्च । तथा कालश्च नारायणः, कालस्वरूप-

---

वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण नित्य, अविनाशी और महाप्रलयमें भी नित्यस्थायी होनेके कारण अखिल विश्वके नित्य पूजनीय रूपमें विराजमान हैं। इसका तात्पर्य यह है कि 'श्रीनारायण' ब्रह्मादि सभीके आराध्य होनेके कारण मानस देहज पुत्र-पौत्र प्रपौत्रादिके साथ [**ब्रह्मा और गणेशादि तैतीस करोड़ देवताओंमें से कोई भी स्वतन्त्र ईश्वर नहीं है**] सभी श्रीनारायणके दास-दासी हैं, ऐसा ही सर्वत्र समझना होगा । अपने परिजनोंके साथ महाप्रलयकर्त्ता महादेव, सम्पूर्ण परिवारके सहित इन्द्र, अपना गण भूत आदि और रुद्राणी सहित एकादश रुद्र, अपने परिकरों सहित अष्ट वसु, अपने साथियों सहित दोनों अश्विनीकुमार, सभी देवर्षि, महर्षि और राजर्षि, मुनि, तपस्वी, वालखिल्य समुदाय, सिद्ध, साध्य, चारणगण, गन्धर्व, दैत्य, राक्षस, किन्नर प्रभृति श्रीमन्नारायणके

पुरुषश्चकारात् चतुर्दशयम–चित्रगुप्तादिसहितः । एवं दिशश्च नारायणः, दिशः—पूर्वाग्नियाम्यनैर्ऋतपश्चिम वायव्योत्तरेशाना अष्टौ दिशश्चकारात् इन्द्रानलयमनैर्ऋत-वरुणवायु-कुबेरेशास्तत्तद्दिक्पालाः सगणाः । अधश्च नारायणः, अधोऽतल-वितल-सुतल-तलातल-महीतल-रसातल-पातालानि सप्त भुवनानि, चकारादतलादिसप्तभुवनवासिलोकाः सगणाः, अपरे तत्र लोकेश्वर-श्रीमदनन्तकूर्म्मादि-भगवन्मूर्त्ति-वरुण-नागपुरुष-नागकन्यादयः । तथोर्द्ध्वञ्च नारायणः, ऊर्द्ध्व—भूर्ल्लोक-भुवर्ल्लोक-महर्ल्लोक-जनलोक-तपोलोक-सत्य-लोकनामानि सप्त भुवनानि, चकारात् सत्यलोकादि सप्तभुवनेश्वराः स्वकीयगणसहिताः श्रीब्रह्मेन्द्रादयः । एवं मूर्त्तामूर्त्तौ च नारायणः, मूर्त्तो—गण्डकीज-शालग्रामा अपरो घटादिस्तथाशैलाद्यष्टप्रतिमास्वरूपदेवता-वृन्दं चकारादुपदेवता-गणसहितम् । अमूर्त्तः-परलोकगत-श्राद्धार्हपितृलौकिकी क्रिया,

---

वैभव होनेके कारण ये सभी नारायण-स्वरूप ही हैं । उसी प्रकार चौदह यम, चित्रगुप्तादि सहित काल पुरुष; पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत, पश्चिम, वायु, उत्तर, ईशान आठों दिशाएँ, सगण-इन्द्रादि दिक्पालगण—नारायण ही हैं (नारायणके वैभव-स्वरूप हैं) । अधः नारायण—अधः अर्थात् तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल सप्त भुवन, अतलादि सप्त भुवनवासी लोकसमूह अपने-अपने गणोंके साथ उसी लोकके अधीश्वर श्रीअनन्तदेव, कूर्मादि-भगवन्ममूर्त्ति, वरुण-नागपुरुष-नागकन्या प्रभृतिको समझना चाहिए। ऊर्ध्द्ध नारायण—ऊर्ध्द्ध अर्थात् भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य—ये सप्त भुवन, स्वगणोंके साथ सप्त लोकोंके अधीश्वर श्रीब्रह्मा, इन्द्र इत्यादिको समझना चाहिए । मूर्त्त एवं अमूर्त्त भी नारायण हैं । मूर्त्तका तात्पर्य गण्डकीजात शालग्राम, कलशादि (कलशमें

चकारात् कव्यवालाद्यर्च्चा, तथा बलि-वैश्वदेवतर्पणादिक्रिया। तथान्तर्बहिश्च नारायणः, अन्तः—ब्रह्माण्डान्तर्गत-सप्तलोक-पातालस्थ-श्रीब्रह्मेन्द्रादिनानादेवतासुरर्षि-मुनितपस्विसिद्ध-चारण-गन्धर्व्वकिन्नराप्सरोगण-दानव-पुण्यजन प्रेतभूत-पिशाचादिगण-नागसर्पोरगस्थावर-जङ्गमजीवभूतमनुष्य-गवादिचतुष्पदपशु-पञ्चनखद्विशफैकशफ-स्वेदज-क्रिमिशल-भादयश्च पृथिवी जलादिसप्तस्वपि लवणादिसप्तसमुद्र-जम्बादिसप्तद्वीपस्थ-नदनदीचरा अपरलोकादयश्चकारात्-लोकालोकपर्व्वत-काञ्चनभूमि-तिमिरभूम्यादयः; बहिः—ब्रह्माण्डाद्बहिरन्धकारसमूह-महत्तत्त्वाहङ्कार-बीज-कारण-रूपाकाश-वायुतेजोवारि-भूम्यादयः, चकाराच्चतुर्विंशतितत्त्व-तत्तत्कारणपञ्चभूतमात्रादयः; एते श्रीनारायण एव ।

सर्व्वमिदं श्रीनारायण इत्यस्यार्थः

श्रीनारायणात् सर्व्वमिदं विश्वं यद्भूतं यदभूत्, चकारात् यद् भवति, यद् भाव्यं यद्भविष्यति । तथानन्तरं किञ्चिन्मात्रमपि भिन्नंतरं वस्तु नास्ति,—अतएव नारायणः, नारायणस्यायं नारायणो ब्रह्मादिः । अथ नित्यः कोटि-कोटिमहाप्रलयेऽपि विराजमानत्वेन;

नारायणकी प्रतिष्ठा होनेपर), शैल आदि अष्ट प्रकार प्रतिमा-स्वरूप देवताओं और उपदेवताओंको समझना चाहिए । अमूर्त्तसे परलोकगत पितरोंके लिए श्राद्धादि क्रियाएँ, कव्यवालादिसे अर्चा, बलि, वैश्वदेवतर्पणादि क्रियाओंको समझना चाहिए । 'अन्तः', 'बहिः'—नारायणसे; 'अन्तः'का तात्पर्य ब्रह्माण्डके अन्तर्गत सप्त भुवनों तथा सप्त पातालमें अवस्थित ब्रह्मा, इन्द्रादि नानादेवता, असुर, ऋषि, मुनि, तपस्वी, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरागण, दानव, पुण्यजन, यक्ष, प्रेत, भूत, पिशाच, नाग, सर्प, ऊरग, स्थावर-जंगम, जीव, मनुष्य, गो आदि चतुष्पद पशु, पञ्चनख, एक खुरवाले, दो खुरवाले, स्वेदज, कृमि, शलभादि, जल और स्थलमें

तथा निष्कलः, अयमर्थः—सर्व्वे इमे श्रीनारायणस्य कलाः, स्वयं तु पूर्णस्वरूपः ।

यथा श्रीभागवते (१/३/२७),—

कलाः सर्व्वे हरेरेव सप्रजापतयः सुरा इत्यादि ।

तथा निराख्यातः सर्व्वत्र विराजमानत्वेऽपि स्वमायया लोकानामप्रकटः । तथा निर्व्विकल्पः किञ्चिन्मात्रमपि विकल्पभावरहितत्वादद्वैतः सर्व्वेश्वरः । अतो निरञ्जनोऽञ्जन-शून्यत्वात् ब्रह्मस्वरूपः । तथा शुद्धः शुद्धसत्त्वस्वरूपः । (१) अतो देव एकः श्रीनारायणः । अत्रायं भावः—**सर्व्वजगन्निवासिनां ब्रह्मेन्द्रादिसकलदेवतासुर मनुष्यादीनां पूजनीयादित्वेनेष्टदेव एकः श्रीनारायण एव, न द्वितीयः कोऽप्यपरोऽस्तीत्यर्थः** ।

लवणादि सभी समुद्र एवं जम्बु प्रभृति सप्त द्वीपोंके नद-नदीवासी, दूसरे लोक समूह, लोकालोक पर्वत, काञ्चन भूमि, तिमिर भूमि प्रभृतिको समझना चाहिए । 'बहिः' का तात्पर्य ब्रह्माण्डके बाहरमें स्थित अन्धकार समूह महत्तत्त्व, अहंकार, बीज, कारणरूप आकाश, वायु, तेज, बारि, भूमि इत्यादि चौबीस तत्त्वों एवं उनके कारण पंचभूत और पंचतन्मात्रा आदिसे है; ये सभी नारायण हैं ।

नारायणसे यह समग्र जगत् हुआ है—का तात्पर्य यह है कि जो जगत् अतीतमें था, जो अभी वर्तमान है तथा जो भविष्यमें सृष्ट होगा—वे समग्र जगत् नारायणसे हुए हैं । अतः नारायणसे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है । इसलिए नारायण अर्थात् ब्रह्मादि सभी नारायणके सेवक हैं (उनकी विभूतियाँ हैं) । इसीलिए वे नारायण-स्वरूप हैं । करोड़ों-करोड़ों महाप्रलयोंमें भी नारायण सर्वदा विराजमान रहनेके कारण वे नित्य एवं सनातन हैं । वे निष्कल हैं अर्थात् दूसरे सभी नारायणकी कलाएँ हैं, नारायण किसीकी कला नहीं हैं । वे स्वयं परिपूर्ण स्वरूप हैं । श्रीमद्भागवत्

(१) पाठान्तरसे सुखः—सर्वदेवासुरमनुष्यादिवत् दुःखी न भवतीति सदैव पूर्णानन्द-मयत्वेन सुखी। अर्श—आदित्वादच्—प्रत्ययेन सुख आनन्दमय इत्यर्थः ।

परम-पार-अव्यय-पदानि विष्णुः

एवमनेन प्रकारेण देवासुरमनुष्यादीनां मध्ये यः कश्चित् दारपुत्रादिकलिलो महागृहस्थोऽपि पुमान् यदि मनःप्रग्रहवान् सन् बोधञ्च सारथिं कृत्वा तं श्रीनारायणं बोद्धुं श्रीसद्गुरुं करोति, पश्चात् साधुसङ्गतः सद्व्यवसायी भवति, तदा स पुमान् श्रीनारायणं तत्तत्त्वादिकञ्च वेद जानाति । पश्चादन्तकाले —विष्ण्वाख्यं परमं पारं अव्ययं पदं प्रयाति । अत्रायमर्थः,— यद्यनन्तस्य पुरुषस्य सायुज्यादिमुक्तिचतुष्टयेच्छा मनसि वर्त्तते तदा तत्तदाचरणं कुर्वन् तत्तन्मुक्तिरूपं पदं प्राप्नोति । तद्विशेषात्— **सायुज्याभिलाषी** यः कश्चिद् योगी स तु योगाभ्यासेन **विष्ण्वाख्य**-मव्ययं प्रयाति,—अविनाशिनि श्रीमन्नारायणे (ज्योतिर्ब्रह्मरूपे) प्रविशति निर्व्वाणहेतुत्वात्; तथा **सारूप्याभिलाषी** यः कश्चिद् योगी पुरूषः स तु तद्योगाभ्यासेन विष्ण्वाख्यां **परमं** प्रयाति,— सर्व्वायवालङ्कारादिभिः श्रीनारायणमनोहरस्वरूपतां प्राप्नोति;

(१-३-२७) में ऐसा कहा गया है—प्रजापतियों सहित देवतागण सभी हरिकी कलाएँ हैं इत्यादि । वे निराख्याता अर्थात् सर्वत्र विराजमान होनेपर भी अपनी मायासे लोगोंके निकट अप्रकट रहते हैं । वे निर्विकल्प हैं,—अर्थात् सर्वथा विकल्प रहित होनेके कारण वे सर्वेश्वर अद्वैत हैं । वे निरंजन हैं अर्थात्—मलशून्य परमब्रह्मस्वरूप हैं, शुद्ध—शुद्धस्वरूप हैं । अतएव नारायण अद्वितीय देवता हैं । भावार्थ यह है कि **सर्व जगन्निवासी ब्रह्मा, इन्द्रादि सभी देवता, असुर, मनुष्य प्रभृतिके पूजनीय होनेके कारण नारायण ही एकमात्र अभीष्ट देव है; द्वितीय कोई ऐसा नहीं है ।**

इस प्रकार देवता, असुर, मनुष्योंके मध्य जो कोई स्त्री, पुत्रादि सम्बन्धक्लिष्ट (स्त्री, पुत्रादिके साथ) गृहस्थ व्यक्ति भी मनको लगाम और बुद्धिको सारथी बनाकर उन सर्वजगत्के स्वामी नारायणको अवगत होनेके लिए **श्रीसद्गुरुका पदाश्रय** करते हैं तत्पश्चात् साधुसंगमें उनके

तथा **सालोक्याभिलाषी** यः कश्चिद् योगी पुमान् स तु तद्योगाभ्यासेन विष्णवाख्यं **पदं** प्रयाति,—श्रीमन्नारायणलोकं श्रीवैकुण्ठाख्यं परं पदं प्राप्नोति, यथा "यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तदेव परमं पदमिति"; **सान्निध्याभिलाषी** यः कश्चिद् योगी जनः स तु तद्योगाभ्यासेन विष्णवाख्यं **पारं** प्रयाति,—श्रीमन्नारायण-सान्निध्यपार्षदतां प्राप्नोति।

अपरं विष्णवाख्यं पदमव्ययमित्यस्यायमर्थः,—

ये केचित् सद्गुरुदीक्षानन्तरं सत्सङ्गश्रीभगवद्धर्म्म-शिक्षातिशयशुद्धान्तःकरण श्रीकृष्णैकतानादिमहामहिमा-नन्यशरणासक्तभावुका इहलोके श्रीभगवच्छ्रवणादिनाना-विधिभक्तिसाधनैर्नैष्कर्म्यभावेन तद्दासानुदासवदाचरणं कुर्व्वन्तः पश्चाद्देहे पञ्चत्वं प्राप्ते सति विष्णवाख्यं पदमव्ययं प्रयान्तीति यत् (तत्) किम्?—इहैवैवंविधाः श्रीकृष्णैकतानादयोऽनन्यभक्ता

अनुगत होकर उपरोक्त प्रकारसे साधन-भजन करते हैं, तब वे श्रीमन्नारायणको तत्त्वतः अवगत होकर सिद्ध होनेपर 'परम', 'पार', 'अव्यय', 'पद' स्वरूप विष्णु या नारायणको प्राप्त होते हैं ।

इसका अर्थ यह है कि—यदि अनन्त पुरुषोंके साथ सायुज्यादि चारों प्रकारकी मुक्तियोंकी अभिलाषा रहे तब वे तदनुरूप साधनकर उन उन मुक्तियोंके पदको प्राप्त होते हैं । इसमें विशेष बात यह है कि जो योगी **'सायुज्य' की अभिलाषा** रखते हैं, वे योगाभ्यासके द्वारा **'अव्यय'**—विष्णुको प्राप्त होते हैं, अर्थात् निर्वाण हेतु अविनाशी नारायणमें प्रविष्ट होते हैं । उसी प्रकार **'सारूप्य' की अभिलाषा** रखनेवाले योगी योगाभ्यासके द्वारा **'परम'**—विष्णुको प्राप्त होते हैं, अर्थात् सर्व अंग और अलंकार आदिके साथ नारायणके मनोहर स्वरूपको प्राप्त होते हैं । **'सालोक्य' की अभिलाषा** रखनेवाले योगी अनुरूप योगाभ्यासके द्वारा **'पद'**—विष्णुको प्राप्त होते हैं अर्थात् वे वैकुण्ठनामक परम 'पद' स्वरूप श्रीनारायणके

जीवद्दशायां श्रवणादिभक्तिनैष्ठिकत्वेन यथोच्छिष्टभोजिनो दासास्तथा तत्तदुपासनाप्रभावतस्तत्तदव्ययमविनाशि पदं श्रीवृन्दावनादि वैष्णवं धाम प्राप्य तत्र तत्र धाम्नि दासवदनिशं श्रीभगवत्सेवां कुर्वन्तीत्यर्थः ।

भगवत्पूजनेन सर्व्वेषां पूजा तुष्टिश्च

अतएव श्रीनारायणे ब्रह्मेन्द्रादित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवता-वृन्दार्च्चनादिकन्तु निरूपितमति निश्चितं, यतोऽभ्यर्च्चिते श्रीनारायणे सति ब्रह्मादयः सर्व्वे देवर्षिभूतादयश्च सर्व्वेऽपि पितृलोकाश्च पूजिता भवन्ति, सर्व्वतोभावेन सन्तुष्टाश्च स्युः।

तत्र प्रथमं प्रमाणम्

तदाह श्रीविष्णुयामलसंहितायां—

यत्पूजनेन विबुधाः पितरोऽर्च्चिताश्च
तुष्टा भवन्ति ऋषिभूतसलोकपालाः ।

धाममें गमन करते हैं । जहाँ गमन करनेसे पुनरावृत्ति नहीं होती, वही उनका **'परमपद'** है। जो योगीपुरुष श्रीभगवान्‌का **सान्निध्य पानेकी अभिलाषा** रखते हैं, वे अनुरूप योगाभ्यासके बलसे **'पार'**—विष्णुको प्राप्त होते हैं अर्थात् नारायणके सान्निध्यमें नारायणके निकट पार्षद-पदको प्राप्त करते हैं।

'विष्वाख्य' अव्ययपद—इस द्वितीय वाक्यका अर्थ है—जो सद्‌गुरुके निकट दीक्षा ग्रहणके पश्चात् साधुसंग और श्रीभगवद्धर्मकी शिक्षाके द्वारा अत्यन्त शुद्धान्तःकरण और कृष्णैकनिष्ठादिके कारण महामहिम, अनन्यशरण, आसक्त, भावुक हैं, वे इस लोकमें श्रीभगवान्‌की लीला कथाओंके श्रवण और कीर्त्तनादि विविध प्रकारके भक्ति-साधनोंके द्वारा नैष्कर्म भावसे भगवान्‌के दासानुदासोंकी भाँति आचरणपूर्वक पंचभौतिक देहको छोड़ देनेके पश्चात् 'अव्ययपद' विष्णुको प्राप्त होते हैं। वह किस प्रकार है ? इसके उत्तरमें बतला रहे हैं—ऐसे कृष्णैकनिष्ठ ऐकान्तिक भक्तजन इस संसारमें जीवित दशामें ही जैसे श्रवण-कीर्त्तनादि भक्तिका साधन करते

सर्व्वे ग्रहास्तरणिसोमकुजादिमुख्या
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।क।।

यस्य श्रीभगवतः पूजनेन विबुधाः पितरश्चेति बहुवचनेनैव सर्व्वाः देवता सर्व्वे पितरोऽर्च्चिता भवन्ति, श्रीमद्गोविन्दपूजनतस्तुष्टाः सन्तुष्टाश्च स्युः। चकारादसुरदानवयक्षराक्षसप्रेतभूतपिशाचोपदेवादयः। एते सर्व्वे ऋषयो भूताः सर्व्वप्राणिनः, सलोकपाला इत्यनेन इन्द्रादिलोकपाला एतेषां गणास्तथा-सूर्य्यचन्द्रमंगलादयो नवग्रहाः स्वगणसहिताः; अपरे ये वैनायक-शकुनि-पूतना-मुखमण्डिका-क्षुरा-रेवती-वृद्धरेवती-वृद्धिकोग्रा-मातृग्रह बालग्रह-वृद्धग्रहादयः सर्व्वे ग्रहाः—केवलमात्रैकश्रीमन्नारायण-

---

हैं, भगवदुच्छिष्ट-भोजी दासके रूपमें अवस्थित रहते हैं, उसी प्रकार वे सभी भगवदुपासनाके प्रभावसे वैसे अव्यय (अविनाशी पद अर्थात् वैकुण्ठ धाम, वृन्दावनादि वैष्णव-धामोंको) प्राप्त होकर वहाँ दास्य, सख्य, वात्सल्य, यहाँ तक कि मधुररसमें भी भगवत्सेवा किया करते हैं।

इसलिए ब्रह्मा, इन्द्र आदि तैंतीस करोड़ देवताओंके अर्चन-पूजन आदिको श्रीनारायणके अर्चन-पूजनके ही अन्तर्गत समझना चाहिए। अर्थात् नारायणकी पूजा होनेसे तैंतीस करोड़ देवताओंकी पूजा हो जाती है। इसीलिए नारायणका अर्चन भलीभाँति होनेपर ब्रह्मादि देवता, देवर्षि, भूतगण एवं पितृ सभी पूजित और सब प्रकारसे संतुष्ट हो जाते हैं। भगवत्पूजासे ही समस्त देव-देवियोंकी पूजा हो जाती है—इस विषयमें चार प्रमाण उल्लिखित किये जा रहें हैं—

विष्णुयामल संहितामें ऐसा कहा गया है—जिनकी पूजा होनेपर देवगण, पितृगण, सभी ऋषिगण, समस्त प्राणी, लोकपालसमूह एवं सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रहगण—सभी पूजित और संतुष्ट हो जाते हैं, उन सर्वादि गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।।क।।

भगवान् श्रीगोविन्ददेवकी पूजा होनेपर विबुधगण, पितृगण और सभी देवता अर्चित और संतुष्ट होते हैं। उक्त श्लोकमें 'च' शब्दके द्वारा

पूजने ससन्तोषपूजिताः स्युस्तं गोविन्दमहं भजामि। कथम्भुतं—आदिपुरुषं यत्परः कोऽपि नास्तीत्यर्थः।

द्वितीयं प्रमाणम्

किञ्च, श्रीभागवते (४/३१/१४)—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथाच सर्व्वार्हणमच्युतेज्या।।ख।।

तरोर्वृक्षस्य मूलनिषेचनेन मूले अतिशयपूर्णजलाभिषेकेन तत्स्कन्धभुजोपशाखास्तस्य वृक्षस्य स्कन्धो बृहच्छाखा तदुद्भवा भुजा महत्तरशाखा, उपशाखा इत्यनेन बृहत्तरशाखाभ्यः क्रमतः किञ्चिन्न्यूनास्ततः किञ्चिन्न्यूनतरास्ततः किञ्चिन्न्यूनतमाः पत्रान्ता उपशाखाः कथ्यन्ते; यथैताः सर्व्वास्तु तृप्यन्ति। प्राणोपहारात् दशप्राणानां प्राणापानोदान-समान-व्यान-नाग-कुर्म्म-कृकर-देवैषत्त धनञ्जयानामुपहारात् भोजनप्रथमत एकद्वि-त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तधा सत्वसम्पूर्णभोजनसन्तोषात् (१) स्वान्तादिसर्व्वेन्द्रियाणां यथा च सन्तृप्तिर्भवति। तथैव—एवशब्द-

---

असुर, दानव, यक्ष, राक्षस, प्रेत, भूत, पिशाचादि उपदेवताओंका भी बोध होता है। सभी ऋषिवृन्द, समस्त प्राणी, इन्द्र इत्यादि लोकपाल और इनके गण, स्वगणोंके सहित सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि नवग्रह, वैनायक, शकुनि, पूतना, मुखमण्डिका, क्षुरा, रेवती, वृद्धरेवती, वृद्धिकोग्रा, मातृग्रह, बालग्रह, वृद्धग्रह आदि अन्य सभी ग्रह केवलमात्र नारायणकी पूजासे ही संतोषपूर्वक पूजित होते हैं। मैं उन्हीं गोविन्ददेवका भजन करता हूँ। गोविन्द कैसे हैं ? वे आदि पुरुष हैं, उनसे श्रेष्ठ और अन्य कोई भी नहीं हैं।

श्रीमद्भागवत् (४/३१/१४) में भी ऐसा कहा गया है—वृक्षकी जड़में पानी सींचनेसे वृक्षके स्कन्ध, शाखाएँ और उपशाखाएँ जिस प्रकारसे

---

(१) सत्त्वं रसः, सत्त्वसम्पूर्णं रसपूर्णम् ।

स्यार्थोऽतिनिश्चयं—अच्युतेज्या अच्युतः क्वापि च्युतो न भवति कोटिकोटिमहाप्रलयेऽपि सदा नित्यस्थायी आदिपुरुषत्वात्—तस्येज्या पूजा सर्व्वार्हणं भवति। अयमर्थः,—तस्मिन्नेकस्मिन् श्रीमदच्युते सम्पूजिते सति देवतापित्रादयः सर्व्वेऽतिशयसन्तुष्टत्व-पूजिताः स्युः—नात्र सन्देहः।

तृतीय प्रमाणम्

किञ्च उत्तरगीतायां (महाभारते भीष्मपर्व्वणि)—

देवादीनाञ्च पूज्योऽहं वर्णादीनां धनञ्जय।
मत्पूजनेन सर्व्वार्च्चा स्यात्ध्रुवं नात्र संशयः।। ग ।।

तृप्त हो जाती हैं, जिस प्रकार भोजन द्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे सभी इन्द्रियाँ पुष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार भगवान् अच्युतकी पूजासे समस्त देवताओंकी पूजा हो जाती है ।। ख ।।

वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे वृक्ष, स्कन्ध, बड़ी-बड़ी शाखाएँ, उपशाखाएँ अर्थात् बृहत्तर शाखासे क्रमशः कुछ-कुछ न्यून, न्यूनतर और न्यूनतम पत्र पर्यन्त शाखाएँ—सभी तृप्त हो जाती हैं; प्राणमें आहार देनेसे—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कुर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय—इन दश प्राणोंमें आहार देनेसे अर्थात् भोजनके प्रथम ग्राससे लेकर—द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ट, सप्तम आदि रसपूर्ण भोजन प्रदान करनेसे, प्राणके संतुष्ट होनेपर मन आदि सभी इन्द्रियाँ जैसे सम्यक् रूपसे संतुष्ट (तृप्त) हो जाती हैं, उसीप्रकार यहाँ 'एव' शब्दका अर्थ अत्यन्त निश्चितरूपसे—अच्युत अर्थात् आदि पुरुष होनेके कारण जो करोड़ों-करोड़ों महाप्रलयोंमें भी नित्य स्थायी (नित्य वर्तमान) रहते हैं और कभी उनकी च्युति नहीं होती, ऐसे आदि पुरुष श्रीकृष्णकी पूजा होने पर सभीकी पूजा हो जाती है।, भावार्थ यह है कि उन एकमात्र अच्युतकी भलीभाँति पूजा होने पर सभी देवता एवं पितृगण निःसन्देह रूपमें अत्यन्त संतोष सहित पूजित हो जाते हैं।

महाभारत भीष्मपर्वकी उत्तरगीतामें भी ऐसा कहा गया है—मैं देवताओं

देवानां त्रयस्त्रिंशत्कोटिनां बहुवचनत्वात्, आदिपदेन ऋषिपितृदैत्यादीनां ग्रहणम्। तथा वर्णादीनाञ्च वर्णानां ब्राह्मण-क्षत्रियविट्शूद्रानामादिपदेनाश्रमाणां ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थ-सन्न्यासीनां, चकारात् संकरान्त्यजादीनां सर्व्वेषामहं पूज्यो नापरः कोऽपि। अतएव हे अर्जुन! ध्रुवमिति निश्चयं मत्पूजनेन मयि पूजिते सति सर्व्वार्च्चा सकलदेवतर्षिपितृवर्णाश्रमादीनां पूजा भवत्यत्र संशयो नास्तीति भावः।

चतुर्थ प्रमाणम्

किञ्च, यथा ऋग्वेदे कृष्णोपनिषदि—

ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः, कृष्ण आदिपुरुषः, कृष्णः पुरुषोत्तमः, कृष्णो हा उ कर्म्मादिमूलं, कृष्णः स ह सर्व्वैकार्य्यैः, कृष्णः काशंकृदादीशमुखप्रभुपूज्यः, कृष्णोऽनादिस्तस्मिन्न-जाण्डान्तर्बाह्ये यन्मंगलं तल्लभते कृतीति।।घ।।

और वर्ण आदिके द्वारा पूजनीय हूँ। मेरी पूजा होने पर निश्चित रूपसे सबकी पूजा हो जाती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।ग।।

'देव' शब्द बहुवचन होनेके कारण तैतीस करोड़ देवता और 'आदि' पदसे ऋषि, पितृ, दैत्यादि; 'वर्ण' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास चारों आश्रम; 'च'—कारके द्वारा वर्ण बहिर्भूत संकर-अन्त्यजादि सभीका मैं पूज्य हूँ, ऐसा और कोई नहीं है। इसलिए हे अर्जुन ! मैं पूजित होने पर देवता, ऋषि, पितृ, वर्णाश्रमादि सभीकी पूजा निश्चित रूपमें हो जाती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

ऋग्वेदके कृष्णोपनिषदमें भी इसी प्रकारसे कहा गया है—'ॐ कृष्ण ही सच्चिदानन्दघन हैं, कृष्ण ही आदिपुरुष, कृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं, कृष्ण ही कर्म आदि की जड है, कृष्ण ही एकमात्र प्रभु हैं, कृष्ण ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर आदि ईश्वरोंके भी प्रभु एवं पूज्य हैं। कृष्ण अनादि हैं,

इह संसारे, वै अतिसत्यं, कृष्णशब्दस्यार्थः पुरैव व्याख्यातः सच्चिदानन्दघनः स हि—शुद्धसत्त्वं (सत्), अद्वयज्ञानं (चित्), अनिर्व्वचनीयसुखरससन्दोहलावण्यादि (आनन्दं) इति सर्व्ववैभवाः, —एतैर्घनो नवीनमेघपुञ्जवत् श्रीमच्छ्यामसुन्दरविग्रहः। यतः श्रीकृष्णोऽनादिर्न विद्यते ब्रह्माण्डान्तर्बाह्ये आदिर्यस्मात् सः। अतएव स श्रीकृष्ण आदिपुरुषो यत्परः सर्व्वाराध्यः कोऽपि पुरुषो नाास्ति। अतः कारणात् स श्रीकृष्णः (एव) पुरुषोत्तमो नान्यः। यथा श्रीपुरुषोत्तमत्वमाह श्रीभगवद्गीतायां (१५/१८)—

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

यस्मात् ब्रह्मेन्द्रादीन्द्रगोपपर्य्यन्तसर्व्वभूतात्मकञ्च कृत्स्नं जगत् क्षरं विनाशि, अहं तदतीतो नित्यत्वात्तद्भिन्नो यतो नित्य-धामस्थायी सदैव। तथा अक्षरादपि अविनाशिनो महाप्रलयेऽपि मदंशकलास्वरूप-श्रीमद्विराडादि-सर्व्वावताराद-

---

ब्रह्माण्डके अन्तर्गत और बाहरमें जितने प्रकारके मंगल हैं, कृष्णकी सेवा करनेवाले कृती व्यक्ति इन समस्त मंगलोंको कृष्णकी सेवा करनेसे प्राप्त हुआ करते हैं।।घ।।

इस संसारमें 'कृष्ण'-शब्दका निश्चित एवं अति सत्य अर्थकी पहले ही व्याख्या की जा चुकी है। सच्चिदानन्दघन कृष्ण 'सत्' अर्थात् शुद्धसत्त्वमय हैं, 'चित्' अर्थात् अद्वयज्ञान तत्त्व हैं, 'आनन्द' अर्थात् अनिर्वचनीय-सुखरस-सन्दोहलावण्यादियुक्त हैं, ये सब वैभव हैं,—इन सबके द्वारा घन अर्थात् मूर्त्तिमान नव मेघ पुञ्जकी भाँति श्रीश्यामसुन्दर विग्रह हैं। इसलिए ये श्रीकृष्ण अनादि हैं, वे ब्रह्माण्डके अन्तर्गत एवं बाहर सर्वत्र हैं । उनका कोई आदि नहीं है । अतः वे आदि पुरुष हैं। उनसे श्रेष्ठ एवं सर्वाराध्य दूसरा कोई भी नहीं है।

श्रीमद्भगवत्गीता (१५/१८) में श्रीकृष्णको पुरुषोत्तम कहा गया

प्युत्तमोऽहं, यतः सर्व्वावतारी विराट्, तस्मादहं श्रेष्ठः;—एतत् प्रकटलीलयोक्तम्। चकारादन्तर्लीलया तु भवद्रथारोहान्मत्तोऽपि (१) मम परमानन्दसन्दोहोऽविरतापरिमित-तौर्य्य-निषेवित-रस-सुखस्वरूपानन्दमन्दिर-सुखधामा। तत्राहं विशुद्धसत्त्वत्वेन श्रीमत्परमानन्दमयः सततं श्रीमदंगविहारी भूत्वानिवसामि। तत्र (अहं) कैश्चित्तत्सुखभजन-निष्ठैर्मद्रसिकभक्तैर्ज्ञेयो न तु सर्व्वैः। अतः कारणात् लोके चतुर्द्दशभुवने वेदे ऋक्सामाथर्व्वयजुःसारे, चकारात् भारतपुराणोपपुराणागम-रामायण-धर्म्मशास्त्र-वेदान्तादिषट्-

है—क्योंकि मै 'क्षर' वस्तुसे अतीत हूँ, अक्षर वस्तुसे भी उत्तम हूँ—इसलिए वेदोंमें और लोक संसारमें सर्वत्र ही मैं पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूँ। ब्रह्मा इन्द्रसे लेकर क्षुद्र इन्द्रगोप कीट तक सर्वभूतात्मक समग्र विश्व क्षर (विनाशशील) है। मैं नित्य होनेके कारण इससे अतीत हूँ तथा सर्वदा नित्य धाममें वर्तमान रहता हूँ। उसीप्रकार 'अक्षर' अर्थात् महाप्रलयमें भी सभी अवतारोंसे श्रेष्ठ हूँ। 'च' कार द्वारा सूचित नित्य, अप्रकट अन्तर्लीलाके अनुसार—तुम्हारे रथपर आरूढ़ मेरे स्वरूपकी अपेक्षा मेरे परम आनन्द-राशि अविराम अशेष-तौर्य-सम्वर्धित रसमय सुख-स्वरूप आनन्द-निकेतन और सुखका आधार स्वरूप हूँ। मैं विशुद्धसत्त्व होनेके कारण परमसौन्दर्यानन्दमय-स्वरूप नित्य विग्रहमें सर्वदा अवस्थित हूँ। नित्य विग्रह-स्वरूपमें मैं सुख-स्वरूपके भजन-निष्ठ किन्हीं-किन्हीं रसिक भक्तोंके द्वारा ही ज्ञेय हूँ। सभी मुझे नहीं जान सकते। इसलिए चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्डमें ऋक्-साम-अथर्व-यजु, महाभारत-पुराण-उपपुराण-आगम-रामायण-धर्मशास्त्र-वेदान्त आदि सर्व सिद्धान्तशास्त्र इत्यादि सबमें ऐसा कहा गया है कि भगवद्भजनको छोड़कर अन्य किसी उपायके द्वारा चौरासी लक्ष्य योनियोंमें भ्रमण रूप संसार-बन्धनसे उद्धार पानेवाला और कोई नहीं है। ऐसा निश्चितकर भजननिष्ठ ऐकान्तिक

(१) भवद्रथारूढ़ादिति पाठान्तरम्।

सिद्धान्तशास्त्रादिसारे चेत्युक्तं याथार्थ्येन। किं तत्?—मामृते चतुरशीतिलक्षयोनिभ्रमणसंसृतिबन्धनादुद्धर्त्ता सेव्यसेवकत्वेन भजनमार्गे कोऽप्यन्यः सेव्यो नास्तीति निश्चित्य मद्भजन-निष्ठोपासकानामानन्यशरणानां(१) प्रोत्साहाय नाम्ना श्रीपुरुषोत्तमः प्रथितः प्रकर्षेण ख्यातोऽस्मि। अत्रायं भावः,—हे अर्जुन! मदनन्य-भक्तस्तु श्रीकृष्ण-गोविन्द-नारायण-वासुदेव-मुकुन्दानन्ताच्युतादि-नामधेयश्रवणमात्रेण बाह्यान्तःपरमानन्दितो भवति। अतएव तत्सेव्य-प्रभुत्वेनाहमेव श्रीपुरुषोत्तमो नान्यः कोऽप्यपर इत्यर्थः।

अतएव श्रीकृष्णः कर्म्मादिमूलं, हा उ इति गानविशेषेण वेदविद्भीर्गीयते। कर्म्माणि,—नित्यनैमित्तिककाम्यानि, कर्मत्रयार्थः पुरैव व्याख्यातः। आदिपदेन गणेशादिनानादेवतोपदेवतादिपूजा, पितृलोकश्राद्धतर्पणादिक्रिया, अपरयागयज्ञदानव्रतहोमतपो-योगादयश्च। एतेषां सर्वकर्मणां मूलं मूलस्वरूपः। यथाविधि श्रीकृष्ण एकस्मिन्नभ्यर्च्चिते सति नित्य-नैमित्तिक काम्य-विबुधादिपूजन-पितृश्राद्धादि-यागयज्ञदानव्रतहोमतपोयोगादि सकलं परिपूर्णं स्यात्, तत्तत्कर्म-फलोदयश्च श्रीकृष्णार्च्चनात्

रूपमें शरण ग्रहण करनेवाले अपने उपासकोंको भलीभाँति उत्साह दान करनेके लिए ही मैं पुरुषोत्तम नामसे विशेषरूपसे प्रसिद्ध हूँ। इसका भावार्थ यह है कि—हे अर्जुन ! मेरे अनन्य भक्त—श्रीकृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव, मुकुन्द, अनन्त, अच्युत आदि नाम श्रवण करने मात्रसे अन्दर और बाहरमें परमानन्दित होते हैं। इसलिए उन सबका सेव्य और प्रभुके रूपमें मैं ही पुरुषोत्तम हूँ, दूसरा और कोई नहीं है।

अतएव श्रीकृष्ण कर्मादिके मूल हैं। 'हा' 'उ' प्रभृति शब्द वेद गानमें गाये जाते हैं। कर्म समूहका तात्पर्य नित्य-नैमित्तिक और काम्य—इन तीनों प्रकारके कर्मोंसे है। कर्मत्रयका तात्पर्य पहले बतलाया जा चुका है।

(१) सद्भजननिष्ठ ......

भवति, नात्र सन्देहः।

कृष्णस्य सर्व्वैकपूज्यत्वं

सर्व्वैकार्य्यः सर्व्वेषां सकलदेवतर्षिपितृमनुष्यदैत्यादीनामेकः (आर्य्यः) स प्रभुः पूजनीयः। अन्येषां का वार्त्ता—स श्रीकृष्णः काशंकृदादीशमुखप्रभुपूज्यः। को ब्रह्मा, अकारो विष्णुः, शंकृत् महादेवो, गुणत्रय-सृष्टिस्थितिप्रलयाधिकारिणामेतेषाम्। आदिपदेन सनक-सनातन-सनन्दन-सनत्कुमार-मरीच्यांगिरः-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु-भृगु-वशिष्ठ-दक्ष-नारद-स्वायम्भुव-मन्वादिनां ब्रह्मपूत्राणां, एतत्पुत्रपौत्रप्रपौत्रवृद्धप्रपौत्राद्युदभवानामखिल प्रजापति-देवतर्षि-मुनि-मनुष्यासुरादि तिर्य्यग्योन्यादिसम्भवानां ब्रह्माण्डान्तर्गतानां स्थावरजंगमादीनां ग्रहणं, तेषामीशो विराट्स्वराडादिर्मुखः आदिर्येषां तेषां-विराडादीनां, श्रीमदनन्त-कारणार्णवशायि-क्षीरोदशायि-गर्भोदशायि-मत्स्य-कूर्म-वराह-नृसिंह-वामन-रामत्रय-बुद्ध-कल्क्यपरविधापरिमितावताराणां, तथा परमपदस्थायिनः श्रीवैकुण्ठनाथस्यापि, तथा गोलोकधाम्न

'आदि'—शब्दसे गणेश आदि नाना देवताओं एवं उपदेवताओंकी पूजा, पितृ लोकोंके प्रति श्राद्ध-तर्पण आदि क्रियाएँ, अन्यान्य योग, यज्ञ, दान, व्रत, होम, तप आदिसे समझना चाहिए। ये सभी कर्मके मूल-स्वरूप हैं। एक कृष्णकी सब प्रकारसे पूजा होनेपर नित्य-नैमित्तिक-काम्य सभी कर्मोंका करना हो जाता है तथा दूसरे-दूसरे देवताओंकी भी पूजा हो जाती है । पितृ श्राद्धादि याग, यज्ञ, दान, व्रत, होम, तप, योग आदि सभी अनुष्ठान भगवत्पूजासे ही पूर्णताको प्राप्त होते हैं, श्रीकृष्णार्चन होनेसे ही वे सभी कर्मफल प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

सर्वैकार्यसे—सभी देवता, ऋषि, पितृ, मनुष्य इत्यादिके एकमात्र आर्य अथवा पूजनीय प्रभु समझना चाहिए। दूसरोंकी तो बात ही क्या?—

ईश्वरस्य प्रभुः श्रीकृष्णः। अतो ब्रह्माण्डान्तर्बाह्यस्थितानां सर्व्वेषां पूज्यः। अतस्तस्मिन् श्रीकृष्ण अभ्यर्च्चनप्रसन्ने सत्यजाण्डान्तर्बाह्ये यन्मंगलं यद्यत् (तत्सर्व्वमित्यर्थः); **अन्यकर्म्माकरणेन प्रत्यवायो न भवति तस्य कृतिनः,**—किन्तु स हि कृती मननशीलोऽनन्यशरणो (१) विवेकी सर्व्वार्थपरिपूर्णं यन्मंगलं सर्व्वकल्याणं तल्लभते।

पितृदेवार्च्चननिषेधे द्वितीयं प्रमाणं

किञ्च स्कान्दे रेवाखण्डे—

संकल्पञ्च तथा दानं पितृ-देवार्च्चनादिकम्।
विष्णुमन्त्रोपदिष्टश्चेन्न कुर्य्यात् कुशधारणम्।।२।।

वे श्रीकृष्ण काशंकृदादीशप्रमुख प्रभुओंके भी पूज्य हैं। 'क'—ब्रह्मा, 'अ'—विष्णु, 'शंकृत'—महादेव त्रिगुणोंके अधिष्ठातृ देवताके रूपमें ये सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयकारी हैं। 'आदि'-शब्दसे सनक-सनातन-सनन्दन-सनत्कुमार-मरीचि-अंगिरा-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु-भृगु-वशिष्ठ-दक्ष-नारद-स्वायम्भुव-मनु आदि ब्रह्माके पुत्रगण, इनके पुत्र-प्रपौत्र-वृद्धप्रपौत्र-तद्वंशीयगण, सभी प्रजापति-देवता-ऋषि-मुनि-मनुष्य-असुर आदिसे उत्पन्न हुए ब्रह्माण्डके अन्तर्गत स्थावर–जंगमादि सबको समझना चाहिए। इनके ईश्वर विराट् मुख अथवा इन सबके आदि, वे ही विराडादि श्रीअनन्त-कारणार्णवशायी-क्षीरोदशायी-गर्भोदशायी-मत्स्य-कूर्म-वराह-नृसिंह-वामन-रामत्रय-बुद्ध-कल्कि और दूसरे-दूसरे असंख्य अवतारोंके, उसीप्रकार परमपदस्थायी वैकुण्ठनाथके, तद्रूप भगवत्-स्वरूप गोलोक धामके भी ये प्रभु—श्रीकृष्ण हैं। इसलिए ब्रह्माण्डके अन्दर और बाहर स्थित सभीके पूज्य हैं। अतः अनुकूल अर्चनके द्वारा श्रीकृष्णके प्रसन्न होने पर ब्रह्माण्डके अन्तर्गत और उसके बाहर जो कुछ भी मंगल है—[**अन्य सभी कर्मोंके न करनेसे भी केवल कृष्णकी सेवा करनेवालेको पाप या अमंगल होनेकी सम्भावना नहीं है ।**] उन सारे सर्वाभीष्ट परिपूर्ण कल्याणोंको

---

(१) मननलीलः।

चेद् यदि विष्णुमन्त्रोपदिष्टो लोकमात्रस्तदा पितृदेवार्च्चनादिकं न कुर्य्यात्। पितृपदेन सकलपितृमातृलोकस्य ग्रहणं, तस्यार्च्चनमित्येनेन श्राद्धतर्पणादिकृत्यं, देवार्च्चनमित्येनेन गणेशादिसर्व्वदेवानां पूजनं, आदिपदेन नित्यनैमित्तिककाम्याद्यपरं **नामापराधजनकं समस्तं कर्म्म**; तथा संकल्पं—तत्तत्-कर्म्मफलोद्देशकारकमनोऽनुसन्धारणं; तथा दानं—फलाकाङ्-क्षत्वेन वाक्यरचनया यद्दानं; तथा कुशधारणं,—चकारादपराणि **श्रीभगवद्धर्म्मनिषिद्धानि** यानि यानि कर्म्माणि तान्यपि न कुर्य्यादित्यन्वयः।

अत्र पूर्व्वपक्षः

ननु मन्वादिधर्म्मशास्त्रोक्तवचनप्रमाणतया वर्णादिमनुष्य-मात्रस्य ऋणानि षट् तदधीनत्वञ्च भवति। यथा विष्णुः,—

अनन्य शरणागत मननशील विवेकी कृती जन सहज ही प्राप्त किया करते हैं।

(पितृ-देवार्चन निषेधके लिए द्वितीय प्रमाण)—स्कन्द पुराण रेवाखण्डमें ऐसा कहा गया है—**'कोई भी मनुष्य विष्णु मन्त्रमें दीक्षित होने पर संकल्प, दान, पितृ-देवार्चन आदिका अनुष्ठान न करेंगे, कुश भी धारण नहीं करेंगे'**।।२।।

कोई भी मनुष्य विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित होने पर पितृ-देवार्चन अर्थात् पितृ एवं अन्यान्य देवताओंका अर्चन इत्यादि न करेंगे। यहाँ 'पितृ'—शब्दसे सभी पितृ-मातृ लोकोंको ग्रहण करना चाहिए, उनका अर्चन अर्थात् श्राद्ध-तर्पण आदि अनुष्ठानोंका भी निषेध समझना चाहिए। 'देवार्चन'—पदसे गणेश इत्यादि सभी देवताओंकी पूजा समझनी चाहिए। 'आदि'-शब्दसे नित्य-नैमित्तिक-काम्य आदि **नामापराधजनक दूसरे-दूसरे सभी कार्योंको ग्रहण करना चाहिए**। 'संकल्प'का तात्पर्य विविध कर्मफलोंके उद्देश्यसे मनको स्थिर करनेसे है। 'दान'का तात्पर्य फलकी आकांक्षा

देवतापितृबन्धूनामृषिभूतनृणान्तथा।
ऋणी स्यात्तदधीनश्च वर्णादिर्जन्ममात्रतः।।

उत्तरपक्षे मुकुन्दसेवया सर्व्वानृण्यं

तत्तु श्रीभगवन्नाममन्त्रोपदिष्टानन्यशरणगृहस्थादि-नरमात्रस्य न स्यादित्याह श्रीभागवते (११/५/४१)—

देवर्षिभुताप्तनृणां पितृणां नायं किङ्करो न ऋणी च राजन्।
सर्व्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम्।।

यः कश्चिद् वर्णाश्रमादिस्थो मानुषमात्रः, सर्व्वात्मना (इत्यस्य) अयमर्थः, **श्रीसद्गुरु-पञ्चसंस्कारपूर्व्वक श्रीभगवन्नाम-मन्त्रोपदिष्टानन्यशरणत्व** श्रीभगवद्धर्म्मशिक्षादृढ़तरनिष्ठा-विवेकत्वसदाभजनप्रतापनिर्भयते (१) वेदस्मृतिपुराणाद्युक्त-संसारिक-नित्यनैमित्तिककामाद्यपर सर्व्वकर्म्मसु तत्तत्सर्व्वकर्म्म कर्त्तृत्वं

रखकर मन्त्र आदिके माध्यमसे दान करनेसे है। 'कुश धारण' और 'च' कारके द्वारा भगवद्धर्ममें निषिद्ध कर्मोंको समझना चाहिए। ऐकान्तिक भक्तोंके लिए इन सबका करना निषिद्ध है। अतः उन्हें इन सब कार्योंको करना नहीं चाहिए।

(यहाँ पर यह आपत्ति हो सकती है कि)—मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें कहे गये प्रमाणके अनुसार चारों वर्णादिके सभी मनुष्योंके ऊपर कुछ-कुछ ऋण रहते हैं, उन ऋणोंको चुकानेका उनपर निश्चित दायित्व भी है। जैसे विष्णु-संहितामें कहा गया है,—'वर्णादिके अन्तर्गत सभी मनुष्य जन्ममात्रसे ही देवता-पितृ-बन्धु-ऋषि-प्राणी और मनुष्य समाजके ऋणी और अधीन होते हैं।'

(आपत्ति खण्डन)—किन्तु **श्रीभगवान्‌के नाम-मन्त्रमें दीक्षित अनन्य शरणागत गृहस्थ आदि मनुष्यमात्रके लिए पूर्वोक्त निषिद्ध नहीं है।** श्रीमद्भागवत (११/५/४१) में ऐसा कहा गया है—हे राजन्! जो अन्यान्य

---

(१) निर्भयता (?), निर्भयत्वात्, निर्भरतः ।

विहाय, यत अकर्त्ता—अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते इति न्यायात्, केवलं श्रीभगवान् मुकुन्द एव पूज्यतया श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यः सेव्यो वन्दनीय इत्यादि, एतद्व्यतिरेकेण तु सर्व्वं कर्म्मं व्यर्थं नश्वरत्वादिति शुद्धान्तःकरणत्वमिति विचारेण (१) कर्त्तं सेवानामापराधजनकं नित्यादि समस्तं कर्म्म, परिहाय सर्व्वतोभावेन त्यक्त्वा, अस्मिन् ब्रह्माण्डान्तर्बाह्ये श्रीमुकुन्दं विना कोऽपि शरण्यो नास्ति ब्रह्मेन्द्रादीनां सर्व्वलोकानामतः शरण्यं शरणयोग्यं, श्रीमद्गुरुदीक्षासमयतः स्वयं विक्रीतभृत्यत्व आत्मसात्कृन्महिमं (२) कैवल्यैकं श्रीमन्मुकुन्दं,—मुकुन्दशब्दस्यार्थः पुरा व्याख्यातो यथावसरं,—शरणं गतो भवबन्धनान्मुक्तो भवन् भृत्यवत् सेवां कर्त्तुं तद्दासत्वेनोपस्थितः, स देवर्षिभूताप्तनृणां—

कर्मोंको परित्याग कर सब प्रकारसे श्रीमुकुन्दके चरणोंमें अनन्यरूपसे शरणागत होते हैं, वे देवता, ऋषि, भूत, आप्त, मनुष्य और पितृगणोंके निकट ऋणी नहीं होते या उनके किंकर नहीं होते हैं।

वर्णाश्रम आदिमें अवस्थित कोई भी मनुष्य सर्वतोभावेन अर्थात् **सद्गुरुके निकट पंचसंस्कार द्वारा भगवन्नाम-मन्त्रमें दीक्षा प्राप्त कर अनन्य शरणागतिके द्वारा** भगवद्धर्म शिक्षाके फलसे दृढ़तर निष्ठाविवेक तथा नित्य साधन-भजनके प्रभावसे निर्भय होकर श्रुति-स्मृति-पुराण आदिमें उपदिष्ट सांसारिक नित्य-नैमित्तिक-काम्य प्रभृति सभी कर्मोंमें कर्तृत्वको त्यागकर भगवान्का भजन किया करते हैं; क्योंकि "अहंकार विमूढ़ व्यक्ति तो अपनेको कर्त्ता मानता है," किन्तु शरणागत ऐकान्तिक भक्त अकर्त्ता मानता है।

प्राणीमात्रके पूज्य होनेके कारण भगवान् मुकुन्द ही श्रवण-कीर्त्तन-सेवा-वन्दनादि सबके एकमात्र विषय हैं। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकारके कर्म नश्वर होने तथा भगवत्प्रीतिको लक्ष्य नहीं करनेके कारण व्यर्थ हैं

(१) शुद्धान्तःकरणमिति विचारेण (?), शुद्धान्तःकरणमतिविचारेण।
(२) विक्रीतभृत्यत्वात्मसात्कृन्महिमं (?)

देवत्वेन ब्रह्मेन्द्रादित्रयस्त्रिंशत्कोटिनां, ऋषित्वेन देवर्षिमहर्षि-राजर्ष्यादीनां, भूतत्वेन स्थावर जंगमादीनां जीवानामाप्तत्वेन दारकन्यापुत्रपौत्रादिसहोदरसगोत्रादीनां, नृणामित्यनेन मनुष्य-मात्राणां, पितृणामित्यनेन सकलपितृलोकानां, चकारादुप-देवतादीनां, न ऋणी नाधमर्णो, न किङ्करो न सेवक इत्यति-निश्चयतः।

ऋणिकिङ्करशब्दतात्पर्य्यम्

हे राजन् परीक्षित् ! ऋणिकिङ्करयोर्निर्गलितार्थः कथ्यते तत् श्रृणु,—देवतानां तर्पणपूजादिके कृते सति लोकस्तेषां किङ्करो भवति, एवं सर्व्वत्र; तथा ऋषीणां तर्पणपूजने, तथा भूतानां सर्व्वजीवमात्राणां अन्नजलादिभिः सन्तर्पणमाप्तानां स्वकीयजनानां दारपुत्रकन्यादीनां परिपोषणपूर्व्वकपुत्रकन्या-

---

ऐसा समझना ही अन्तःकरणकी शुद्धि है। इस विचारसे सेवा-नामा-पराधजनक नित्य-नैमित्तिक आदि सभी कर्मोंका परित्यागकर श्रीमुकुन्दकी सेवा करनी चाहिए। इस ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर कहीं भी श्रीमुकुन्दके सिवाय ब्रह्मा-इन्द्र प्रभृति देवता कोई भी जीवोंके लिए शरण्य नहीं है, अतएव मुकुन्द ही शरण देनेके योग्य हैं। सद्गुरुसे दीक्षा ग्रहण करनेके समयसे आरम्भकर दीक्षित व्यक्तियोंको विक्रीत भृत्यके रूपमें स्वयं आत्मसात् करनेवाले, परम महिमामय कैवल्यके भी एकमात्र विषय, मुकुन्दकी शरणागतिके द्वारा भवबन्धनसे मुक्त होकर भगवान्के सेवक रूपमें सेवा करनेके लिए वे (शरणागत-भक्त) उपस्थित हैं; वे ब्रह्मा इत्यादि तैंतीस करोड़ देवताओंके, देवर्षि-महर्षि-राजर्षियोंके, स्थावर-जंगम आदि भूतोंके, स्त्री-कन्या-पुत्र-प्रपौत्रादि-सहोदर-सगोत्रादियोंके, मनुष्यमात्रके, समस्त पितृपुरुषोंके एवं उपदेवताओंके सुनिश्चितरूपमें ऋणी या किंकर नहीं होते।

हे राजन् ! **ऋणी-किंकर शब्दका तात्पर्य** बतला रहा हूँ, श्रवण कीजिये। लोकदेवतादिके लिए तर्पण पूजा करनेसे उन-उन देवताओंके

जातकर्म्मादिसर्व्वसंस्कारादिकं कर्म्म, नृणां मनुष्यमात्राणामतिथ्यभ्यागतस्वरूपेण यथाविधि सेवनं, तथा पितॄणां जीवतः पितुः सेवादिपूर्व्वकं पश्चात् तत्पञ्चत्वे सति श्राद्धतर्पणादिकम्; सकलैतत् कर्म्मण्यकृते ऋणी, कृते तु किङ्कर इत्यर्थः।

नन्वनन्यशरणाचरणं केवलश्रीभगवत्पूजादिकं विना कर्म्मलोलुपकर्म्मठानां पितृ-देवार्च्चनादिभिरवश्यमेव पश्चात् पञ्चत्वे सति तत्तद्देवता-पितृलोकादिगमनं ततः पुनरावर्त्तनं नश्वरत्वात्। अत्र श्रीभगवद्वचनेनैव प्रमाणयति, यथा श्रीभगवद्गीतायां (९/२५)—

अन्यार्च्चनस्यनश्वरफलकत्वं

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।

ब्रह्मेन्द्रादिसर्व्वदेवेषु व्रतं पूजाजपयज्ञहोमतर्पणादिनैकान्तभावो येषां ते पश्चादन्तकाले देवान् तत्तद्देवलोकान् यान्ति, पुनरावर्त्तनं प्राप्नुवन्ति (च) । एवं विशिष्टानां मम सेवाबहिर्म्मुखानां

किंकर होते हैं। उसी प्रकारसे सबके प्रति समझना चाहिए। ऋषियोंके तर्पण, उनकी पूजा, अन्न और जल आदिके द्वारा जीवमात्रको संतुष्ट करना, स्त्री-पुत्र-कन्या आदि अपने परिवारको पोषणपूर्वक, पुत्र-कन्या इत्यादिके जातकर्म आदि संस्कार कार्य अतिथि-अभ्यागत रूपमें उपस्थित जीवमात्रकी यथाविधि सेवा, पिताके जीवितावस्थामें सेवादि विधान और उनकी मृत्युके पश्चात् श्राद्ध-तर्पण आदि करना, ये सभी कर्म अनुष्ठित नहीं होने पर ऋणी होना पड़ता है और अनुष्ठित होनेसे किंकर होता है।

किन्तु श्रीमुकुन्दके अनन्यशरणागत भक्तोंके लिए आचरणीय केवल भगवत्सेवाके अतिरिक्त पितृदेवार्चनके द्वारा कर्मलोलुप कर्मियोंकी मृत्युके बाद स्वर्ग आदि लोकगमन एवं नश्वरत्व हेतु वहाँसे पुनरावर्तन होता रहता है। श्रीभगवान्के श्रीवचनोंके द्वारा प्रमाणित होता है—जैसे गीतामें

महाप्रलयकालपर्य्यन्तम्। तत्तद्देवतोपासकानामपि (तान्) विहाय अपरोपदेवतादिसेवनापरानेकशतशतनिन्द्यकर्म्मकर्त्तृत्वेन मन्मायामोहितधियां तेषां चतुरशीतिलक्षयोनिभ्रमणमवश्यमेव भवति, नात्र सन्देहः। तथा महागुरौ पितरि जीवति सति भक्त्या तत्सेवनादिकं विना, तस्मिन् यथाकाले यथातथा पञ्चत्वमापन्ने सति तन्मृताहं प्राप्य वर्णाश्रमादिषु सर्व्वजीवेषु भूरिभोजनाचरणव्यतिरेकेण,—यदि तु मद्भक्तास्तदा ब्राह्मणादि-जीवमात्रेषु विशेषतो वैष्णवेषु च सहजेनान्नजलादिनिवेदनं विना, **तेभ्यः पितृभ्यः श्रीमन्महाप्रसादचरणोदकादिनिवेदनवाक्यं विना** च—मद्बहिर्म्मुखभावतस्तर्पणश्राद्धादिक्रियापरत्वेन वाक्यरचना-संघातव्रतं येषां तर्पणश्राद्धादिवाक्यरचनासंघात-क्रियापराणां कर्म्मिणां ते तथा पितृलोकान् यान्ति तत्कर्म्मवशात्। तथा भूतेषु भूतप्रेतपिशाच-विनायक-मातृगण-डाकिनी-योगिनीगण क्षेत्रपालादिगण-कवन्धपगण-भैरवगणाद्युपदेवतावृन्देषु नानामुर्त्तिविविधप्रकारेषु इज्या पूजा येषां ते भूतेज्या भूतानि

(६/२५) भगवान् श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि—देवव्रतगण देवलोकको, पितृव्रतगण पितृलोकको, भूत आदि पूजक भूतलोकको प्राप्त होते हैं; किन्तु मेरे सेवकगण मुझेही प्राप्त होते हैं। पूजा-जप-यज्ञ-होम तर्पण आदिके द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंमें एकान्तभाववाले देवव्रतगण मृत्युके पश्चात् उन्हीं देवताओंके धाममें गमन करते हैं और वहाँसे पुनः लौट आते हैं। मेरी सेवासे विमुख ऐसे-ऐसे विविध देव-उपासक व्यक्तियोंकी बुद्धि मेरी मायाके द्वारा मोहित हो जाती है। वे मायामोहित बुद्धिवाले उपासक उन-उन उपास्योंको परित्यागकर दूसरे-दूसरे देवताओंकी सेवा और सैंकड़ों प्रकारके निन्दनीय कर्मोंके कर्त्ता बनकर महाप्रलयकाल पर्यन्त चौरासी लक्ष योनियोंमें निश्चितरूपमें भ्रमण किया करते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। **हमारे भक्तजन** अपने परमपूज्य (वैष्णव)

भूतादिनां यानि यानि स्थानानि तानि यान्ति । तथाऽनन्य-शरणत्वेन केवलमेकं मां यष्टुं शीलं येषां ते मद्याजिनो मद्दासभक्ताः, ते तु मां नित्यमव्ययं निजधामविराजमानं परमानन्द-सन्दोहार्णवघनश्यामसुन्दरस्वरूपविग्रहं यान्ति। अयमर्थः,—यतोऽनन्यशरणानां सेव्योऽहं न तु दैवमिश्राणां, अतएव मन्निजसेवकत्वेन मद्धामोपेत्य यथैवेह मद्याजिनस्तथा मन्निज-धाम्नि ते मद्दासा मम तत्तत्सेवां कुर्व्वन्तीत्यर्थः—नात्र सन्देहः।

पितृदेवार्च्चननिषेधे तृतीयं प्रमाणम्

तथा वशिष्ठसंहितायां—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं दानं सङ्कल्पमेव च।
दैवं कर्म्म तथा पैत्रं न कुर्य्याद्वैष्णवो गृही।।३।।

दैवं देवपूजादिकं कृत्यं, पैत्रं पितृश्राद्धतर्पणादिकृत्यम्;

पिताकी जीवित काल तक भक्तिपूर्वक सेवा आदि करते हैं पिताकी मृत्यु होने पर ब्राह्मण आदि जीवमात्रको विशेषतः वैष्णवोंको सहज लभ्य अन्न-जल आदिसे एवं **उन पिताको श्रीमहाप्रसाद और श्रीभगवत्-चरणामृत प्रदान किया करते हैं**। दूसरे लोग पिताके जीवितकालमें भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते हैं तथा यथाकालमें उनकी मृत्यु होने पर पिताके श्राद्ध-संस्कारके समय वर्णाश्रमी सभी जीवोंको सुन्दर-सुन्दर भोजन कराते हैं। इतना ही नहीं वे भगवत्सेवाके विमुख होनेके कारण श्राद्ध-तर्पण आदि वाक्यरचनासंघातक्रिया-परायण कर्मी होते हैं। वे पितृव्रतके कारण वैसे कर्मोंके फलसे पितृलोकमें गमन करते हैं । भूतोंकी पूजा करनेवाले अर्थात् नानाप्रकारकी मूर्तिविशिष्ट भूत-प्रेत-पिशाच-विनायक-मातृगण-डाकिनी-योगिनी-क्षेत्रपाल-कबन्ध-भैरव आदि उपदेवताओंकी पूजापरायण व्यक्ति भूत आदि विविध स्थानोंको प्राप्त होते हैं। अनन्य शरणागत होकर केवलमात्र मेरी ही पूजा करनेवाले—'मद्याजी' मेरे दास या भक्त हैं। ये लोग मेरी अनन्यभक्तिके कारण स्वधाममें विराजमान परमानन्दराशि-वारिधि-स्वरूप घनश्यामसुन्दर नित्य अव्यय सच्चिदानन्द-

ब्रह्मचार्य्यादिनां करणाकरणयोः को विचारः?—किन्तु गृही गृहस्थोऽपि **वैष्णवः सद्गुरुकेवलविष्णुनाममन्त्रोपदिष्टः** अनन्यशरणत्वेन केवलश्रीविष्णुपूजादिकं विना नित्यादिकं किञ्चित् कर्म्म न करिष्यतीत्यन्वयः।

पितृदेवार्च्चननिषेधे चतुर्थं प्रमाणम्

तथा रुद्रयामले च,—

इतरेषाञ्च देवानां मनसा यदि पूजनम्।
विष्णुभक्तस्तु कुरुते ह्यपराधात् पतत्यधः।।४।।

इतरेषां श्रीविष्णोर्देवाधिदेवात् भिन्नतरगणेशादीनां, मनसा—आवाहनविसर्ज्जनादिभिस्तत्तद्देवतामूर्त्त्यादिपूजा दूरे तिष्ठतु, केवलं मानसेन देवतापूजनं, चकारात् तथा नित्यनैमित्तिककाम्यापरपितृ-

---

विग्रह मेरे निकट ही गमन करते हैं। इसका अर्थ यह है—क्योंकि मैं अनन्यशरणागतोंका सेव्य हूँ, दैवमिश्रगणका मैं सेव्य नहीं हूँ। अतएव वे मेरे सेवक होनेके कारण इस जगतमें मेरे श्रीवृन्दावन धाम आदिका आश्रय ग्रहणकर मेरी सेवा करते हैं; अन्तमें मेरे स्वधाममें गमनपूर्वक वहाँ भी विविध प्रकारसे मेरी सेवा किया करते हैं—इसमें सन्देह नहीं है।

(पितृदेवार्चन निषेधके सम्बन्धमें तृतीय प्रमाण)—वशिष्ठ संहितामें ऐसा उल्लेख है—गृहस्थ वैष्णवोंको नित्य, नैमित्तिक, काम्य, दान, संकल्प, दैव और पैत्र कर्म नहीं करना चाहिए। यहाँ देवका अर्थ देवपूजा इत्यादि कृतियोंसे समझना चाहिए । फिर ब्रह्मचारी आदिके लिए उनका करना और न करना, इसमें विचार ही क्या है? अर्थात् ये अवश्य ही नहीं करेंगे। **सद्गुरुके निकट केवल विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित ग्रहस्थ वैष्णव भी** अनन्यशरणागत होनेके कारण केवल विष्णु पूजा ही करेंगे। इसके अतिरिक्त नित्य आदि कोई कर्म नहीं करेंगे।

(पितृदेवार्चन निषेधके सम्बन्धमें चतुर्थ प्रमाण)—उसी प्रकार रुद्रयामलमें भी कहा गया है कि—विष्णुभक्त यदि मनसे भी देवताओंकी पूजा करते हैं तो उस अपराधके कारण वे पतित हो जाते हैं। अतः यहाँ

श्राद्धतर्पणादिकं कर्म्म च। अन्येषां का कथा—श्रीविष्णुभक्तस्तु मोहात् भ्रम-प्रमादाद्वा यदि कुरुते तदा **सेवा-नामापराधतो**ऽधः-पतति। किं तत् ?—तत्तत्कर्म्मरज्जुभिवर्द्धस्य पुनःपुनर्जन्ममरणतः कदाप्यूर्ध्वगमनं कदाप्यधोगमनम् स एवंविधो भवति।

पितृदेवार्च्चननिषेधे पञ्चमं प्रमाणम्

पाद्मे,—

वैष्णवस्य न सङ्कल्पो नो दानं न च कामना।
प्रायश्चित्तञ्च नो यागः सद्भूदेवादिपूजनम्।।
शुद्धपूतः सदा कार्ष्णः कुशधारणवर्ज्जितः।
कामसङ्कल्परहितश्चान्तर्बाह्यहरिर्यतः।।
वैष्णवो नान्यविबुधानर्च्चयेत्तांश्च नो नमेत्।
न पश्येत्तान्न गायेच्च न निन्देन्न स्मरेत्तथा।।
तेषां न भक्षेदुच्छिष्टमनन्यो नैष्ठिको मुनिः।
न तज्जनानां देवर्षे सङ्गं कुर्य्यात् प्रयत्नतः।।५।।

दूसरे देवताओंको समझना चाहिए। मनके द्वारा भी अर्थात् आवाहन-विसर्जन आदिपूर्वक देवताओंकी मूर्ति इत्यादिकी पूजा तो दूर रहे-केवल **मनसे भी अन्य देवताओंकी पूजा ऐकान्तिक वैष्णवोंके लिए उचित नहीं है**। च—कारके द्वारा—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, अन्यान्य पितृ-तर्पण इत्यादिको समझना चाहिए। यदि विष्णुभक्त मोह, भ्रम या प्रमादवशतः इन अनुष्ठानोंको करता है तो वह **सेवा और नामापराधके द्वारा अधःपतित हो जाता है**। वह कैसे ?—वह व्यक्ति उन्हीं कर्म रज्जुओंके द्वारा बँधा हुआ होनेके कारण कभी ऊर्ध्वगमन और कभी अधोगमन करता है। उपरोक्त कर्म करनेवाले ऐसी दशाको प्राप्त होते हैं।

(पितृ-देवार्च्चन निषेधके सम्बन्धमें पंचम प्रमाण)—पद्मपुराणमें उल्लेख है कि—'वैष्णवोंके लिए संकल्प, दान, कामना, प्रायश्चित्त और यागका विधान नहीं है। किन्तु उनके लिए वैष्णव-ब्राह्मणादिकी सेवा अवश्य ही

वैष्णवानां स्मार्त्तकल्पितप्रायश्चित्तनिषेधः

अनन्यशरणत्वेन श्रीविष्णुरेव सेव्यो यस्य तस्य तु सङ्कल्पो नास्ति, दानं नास्ति, कामना विविधमानसेप्सितक्रिया नास्ति। चकारात् नित्यनैमित्तिककाम्यदेवतापूजा-पितृ-श्राद्धतर्पणादिहोम व्रतयज्ञादीनि विविधकर्म्माणि न सन्ति। यागो नास्ति। सङ्कल्पदानयागशब्दस्यार्थः पूर्व्वं कल्पितः। दैववशान्महापातक-पातकातिपातकोपपातकानुपातकादि कर्म्मप्रत्यवाय-परिहारार्थं यत् प्रायश्चित्तं तदपि वैष्णवस्य नास्ति।

सात्वतप्रायश्चित्तविधानम्

किन्तु चकारादेव तत् प्राप्यते। किं तत् ?—केवलं श्रीगुरु-गोविन्दतस्तदभावे तत्पत्न्यास्तदभावे तत्पुत्रात्, तदभावे सतीर्थ-गुरुभ्रातुस्तदभावे सजातीयानन्यशरणसाधुतः पुनः—पञ्चसंस्कार-पूर्व्वकं श्रीभगवन्नाममन्त्रग्रहणं, पुनः—संस्कारातिशयशुद्धस्य तस्य श्रीविष्णुपूजनं, तन्नामादिश्रवण-कीर्त्तन-स्मरण-वन्दनादिपूर्वकं

कर्त्तव्य है। कृष्णसेवक सर्वदा शुद्ध, पवित्र कुशधारण रहित और संकल्प रहित होते हैं; क्योंकि उनके भीतर बाहर सर्वत्र ही श्रीहरि विराजमानरहते हैं। वैष्णवजन दूसरे-दूसरे देवताओंकी पूजा नहीं करेंगे । उनको प्रणाम और दर्शन भी नहीं करेंगे तथा प्रशंसा, निन्दा, स्मरण और उनका उच्छिष्ट भोजन भी नहीं करेंगे। 'हे देवर्षे ! अनन्य निष्ठावान्, मुनि, वैष्णवजन अन्यान्य देवताओंके सेवकोंका संग यत्नपूर्वक परित्याग करेंगे'।।५।।

(वैष्णवोंके लिए स्मार्त्त विधानके अनुसार प्रायश्चित्त करना निषिद्ध है)—अनन्यशरणागत होनेके कारण विष्णु ही उनके एकमात्र सेव्य हैं। ऐसे वैष्णवोंके लिए संकल्प, दान, कामना अर्थात् सांसारिक किसी प्रकारकी अभिलषित क्रियाओंको नहीं करना चाहिए। च—कारके द्वारा नित्य-नैमित्तिक-काम्य-देवताओंकी पूजा-पितृश्राद्ध-तर्पण आदि उनके लिए होम-व्रत-यज्ञ आदि अन्यान्य कर्म करणीय नहीं हैं। उनके लिए यागकी

महोत्सवादिकं करणीयम्—(१) तथा सद्भूदेवादिपूजनं सतामनन्यकार्ष्णादीनां भूदेवानां श्रीहरिनाममन्त्र-गायत्रीमन्त्र-पूतानां पूजनं स्नान-भोजन-पान-ताम्बूल-स्रक्-चन्दन-वस्त्रादि-भिर्यथाविधिसेवनम्। आदिपदेन यथापरिमितं यथाशक्ति मनुष्यादिसर्व्वजीवसन्तर्पणमन्नजलादिभिरित्यर्थः। एवमनेन

व्यवस्था नहीं है। संयोगवशतः संघटित महापातक, पातक, अतिपातक, उपपातक, अनुपातक आदि कर्मोंके प्रत्यवाय (त्रुटियों) को दूर करनेके लिए स्मार्त्त विधानमें कहे गये प्रायश्चित्त आदिकी व्यवस्था भी वैष्णवोंके लिए नहीं है। किन्तु च—कारके द्वारा **अन्यविधि प्रायश्चित्तकी** प्राप्ति सूचित होती है। वह यह है कि—श्रीगुरुगोविन्द, उनके अभावमें उनकी पत्नी, उनके अभावमें उनका पुत्र, उनके अभावमें सतीर्थ गुरुभ्राता, उनके अभावमें स्वजातीयाशय अनन्यशरणागत वैष्णव साधुओंसे पुनः पंचसंस्कार ग्रहणपूर्वक श्रीभगवन्नाम-मन्त्र ग्रहण, पुनः संस्कारसे अत्यन्त शुद्ध होकर विष्णुकी पूजा एवं भगवन्नामके श्रवण कीर्त्तन-स्मरण-वन्दनादिपूर्वक महोत्सव इत्यादि कर्त्तव्य है।

नारदपंचरात्रकी भरद्वाज संहितामें **सात्वत-प्रायश्चित्तकी व्यवस्था** इस प्रकार दी गयी है—एकमात्र भगवत् शरणागति ही प्रायश्चित्त है अथवा श्रीभगवान् वासुदेवको स्मरणपूर्वक कर्मात्मक (भगवत्सम्बन्धी) प्रायश्चित्त कर्त्तव्य है। विष्णुभक्तोंकें दर्शन, स्पर्शन, सेवन, स्मरण, महाप्रसाद, चरणोदक, हरिकथा, पदरज, पदजल और भगवत् कीर्त्तनादिके द्वारा विशुद्ध होना चाहिए। इनसे अवैष्णव दर्शन, स्पर्शन आदिसे उत्पन्न अपवित्रताकी परिशुद्धि भी विशेषरूपसे हो जाती है। श्रीहरिके नित्य

---

(१) नारदपञ्चरात्रे भरद्वाजसंहितायां सात्वतप्रायश्चित्तव्यवस्था एवं वर्त्तते,—प्रायश्चित्तं तु परमं प्रपत्तिस्तस्य केवलम्। कुर्य्यात् कर्म्मात्मकं वापि वासुदेवमनुस्मरन्; विशुद्ध्येद्विष्णुभक्तस्य दृष्ट्या स्पर्शेन सेवया। स्मरणेनान्नपानाद्यैर्गिरा पादरजोऽम्बुभिः॥ विष्णोर्निवेदितान्नाद्यैस्तथा तत्कीर्त्तना-दिभिः। अभागवतदृष्ट्यादेः शुद्धिरेषा विशेषतः॥ कृता यज्ञाः समस्ताश्च दानानि च तपांसि च। प्रायश्चित्तमशेषेण नित्यमर्च्चयता हरिम्॥—(३/२२-२५)॥

प्रकारेण वैष्णवः सदा शुद्धः सदा पूतः, यतोऽन्तर्बाह्यहरिरनन्याश्रयत्वात्। अतः कामसङ्कल्परहितः कुशधारणवर्ज्जित।

अनन्यशरणताविवेकः

काष्र्णोऽपि एवम्भूतोऽनन्यः श्रीकृष्णं विना यस्यान्यो नास्ति सेव्यत्वेन, तथा नैष्ठिकः श्रीभगवद्धर्म्मनिष्ठानिपुणः, तथा मुनिर्मननशीलः कर्त्तव्यविवेकी, एवं विशिष्टः काष्र्णो वैष्णवश्चान्यविबुधान्

अर्चन करनेवाले व्यक्ति यज्ञ, दान, तपस्या और प्रायश्चित्त अशेषरूपमें कर लिया करते हैं। अर्थात् जो लोग श्रीहरिका नित्य-अर्चन करते हैं उनके अपने आप ही यज्ञ, दान, तपस्या, प्रायश्चित्त हो जाते हैं। भगवत् सम्बन्धी सभी क्रियाएँ भागवतोंकी वृत्ति ही है। इनका पुनरानुष्ठान करना ही उनके लिए प्रायश्चित्त है। भगवान्‌के श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण करनेसे समर्पणसे पूर्व और पश्चात्‌के सारे पाप ध्वस्त हो जाया करते हैं। इसलिए भगवान्‌के श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण ही सब प्रकारके अपराधोंके लिए परम प्रायश्चित्त-स्वरूप है।

दूसरी तरफ, श्रीमद्‌भागवत (६/१/१६) में ऐसा कहा गया है—हे परीक्षित ! नारायणसे विमुख रहनेवाले व्यक्ति प्रायश्चित्तादि अनुष्ठान करने पर भी पवित्र नहीं होते। जैसे मद्यभाण्ड जलसे बार-बार धोये जानेपर भी पवित्र नहीं होता है।

सद्‌ब्राह्मणोंकी पूजा—'सत्' से अनन्यरूपमें कृष्णके शरणागत कार्ष्णको समझना चाहिए। ऐसे अनन्य शरणागत कृष्णभक्त श्रीहरिनाम मन्त्र एवं गायत्री आदिसे पवित्र हुए ब्राह्मणोंकी (वैष्णव-ब्राह्मणोंकी) पूजा करेंगे अर्थात् स्नान-भोजन-पान-ताम्बूल-माला-चन्दन-वस्त्र आदिके द्वारा यथाविधि सेवा करेंगे। 'आदि' पदसे शास्त्रके अनुसार यथा परिमाणमें

वृत्तिर्भागवतानां हि सर्व्वा भगवतः क्रियाः। प्रायश्चित्तिरियं तस्याः सैव यत् क्रियते पुनः।।—(परिः २/५६)।। पूर्व्वेषामुत्तरेषाञ्च न्यासो नाशाय पाप्मनाम्। सर्व्वेषामपराधाणामयं हि क्षमापणं परम्।।—(परिः ३/७३)।।

पक्षान्तरे श्रीभागवते (६/१/१६)—प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्। न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवाम्भसा।।

गणेशादिनानादेवान् नार्च्चयेत् (तेषां) पूजां न कुर्य्यात्, तान् देवान् नो नमेत् (तेभ्यो) नमस्कारादिकं न कुर्य्यात्; तान् देवान्न पश्येत् तत्तद्घटादिमूर्त्तिदर्शनं न कुर्य्यात्; तान्न गायेत् तत्तद्देवतागीतं न कुर्य्यात्; तथा तान्न स्मरेत् तत्तद्देवानां स्मरणमात्रमपि न कुर्य्यात्; कदापि तान्न निन्देत् तत्तत्सर्व्वदेवानां निन्दां न कुर्य्यात्। देवतस्तिष्ठन्तु—ब्रह्माण्डान्तर्गतानां स्थावरजङ्गमादीनां केषाञ्चित (अपि) सर्व्वदैव निन्दावाक्यं कार्ष्णादीनामनुचितम्। तथा तेषां देवानामुच्छिष्टं नैवेद्यादिकं न भक्षेत्। तज्जनानां तत्तद्देवोपासकानां देवर्षे हे नारद ! प्रयत्नतोऽतिशयत्वेन सङ्गं न कुर्य्यात्। एवंविध श्रीभगवद्धर्म्म-निष्ठावृत्तित्वेनानन्यशरणो भवति।

अन्न-जल आदिके द्वारा मनुष्य आदि सभी प्राणियोंका संतोष विधान करना सूचित होता है। इसी प्रकार वैष्णव सर्वदा शुद्ध एवं पवित्र, अनन्य शरण होनेके कारण भीतर और बाहर सब प्रकारसे भगवन्मय होते हैं। अतएव कामसंकल्प रहित और कुश धारणसे वर्जित होते हैं, अर्थात् उनके लिए कुश धारणकी व्यवस्था नहीं है ।

(अनन्य शरणका विचार)—कृष्णभक्त इस प्रकार अनन्य अर्थात् जिनका कृष्णके अतिरिक्त सेव्यके रूपमें दूसरा कोई नहीं है; नैष्ठिक अर्थात् भगवद्धर्म-निष्ठामें निपुण; मुनि अर्थात् मननशील कर्त्तव्य आदिके सम्बन्धमें विवेकवान् परम बुद्धिमान् हैं। इस प्रकार लक्षणयुक्त कृष्णसेवक या विष्णुसेवक दूसरे-दूसरे देवताओंकी (गणेशादि नाना देवताओंकी) पूजा नहीं करेंगे, उनको नमस्कार भी नहीं करेंगे तथा घट आदि मूर्त्तियों-का दर्शन न करेंगे। उनसे सम्बन्धित गायन भी न करेंगे, उनका स्मरण भी नहीं करेंगे। कदापि उनकी निन्दा नहीं करेंगे। देवताओंकी तो बात अलग रहे, स्थावर-जंगम आदि किसी भी जीवकी निन्दा करना भक्तोंके लिए वर्जित है। ऐसा करना वैष्णवोंके लिए सर्वथा अनुचित है। वे दूसरे-दूसरे देवताओंका उच्छिष्ट प्रसादादि भी ग्रहण नहीं करेंगे। हे देवर्षि !

पितृदेवार्च्चननिषेधे षष्ठं प्रमाणम्

किञ्च बृहद्विष्णुपुराणे,—

न दर्भधारणं कुर्य्यान्न च सङ्कल्पमाचरेत्।
न काम्यं सात्वतो मार्गं शम्भुदेवादिपूजनम्।।६।।

सात्वतः सत्वावलम्बी केवलश्रीविष्णूपासकः। काम्यमित्यनेन चकारात् (च) नित्यनैमित्तिकदैवपैत्रादिकं कर्म्म नाचरेत् न कुर्य्यात्। सर्व्वमपरं स्पष्टम्। (१)

ननु यद्यपि नित्यनैमित्तिककाम्यादिदेवतापितृकर्म्मिणां सर्व्वे विबुधाः पितरश्च पृथक् पृथक् पूज्याः कर्म्मवशात्, तत्र सन्देहः,— किं तत् ? गणेशादित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवानां प्रत्येकं सर्व्वेषामर्च्चनञ्चेत् क्रियते तदा विबुधार्च्चनं भवति ? एवं तथा स्वपितृमात्रादितः सृष्टिकर्त्तुर्ब्रह्मणः सकाशाज्जातवीजीभूत-पितृपितामहप्रपितामहपुरुषादितत्तन्मृतपुरुषपर्य्यन्तं श्राद्धं यदि क्रियते तदा

उन देवताओंके उपासकोंका संग भी यत्नपूर्वक त्याग करेंगे, अर्थात् अधिक रूपमें न करेंगे। जीव इस प्रकार भगवद्धर्म निष्ठामय वृत्ति विशेषसे युक्त होने पर **'अनन्य शरण'** कहलाते हैं।

(पितृदेवार्चन-निषेधके सम्बन्धमें छठवाँ प्रमाण)—वृहद्विष्णुपुराणमें ऐसा उल्लिखित है—सात्त्वत व्यक्ति कुश धारण न करेंगे। संकल्पका आचरण, काम्यमार्गका अनुसरण और शम्भुदेवादि देवताओंका पूजन न करेंगे।।६।। सात्त्वत-सत्त्वावलम्बी केवल विष्णुके उपासक होते हैं। 'क़ाम्य' और 'च' इन दोनों पदोंसे नित्य-नैमित्तिक-देव-पितृकर्म आदि न करेंगे और सभी बातें स्पष्ट हैं।

यद्यपि नित्य-नैमित्तिक-काम्य आदि कर्म, देव-पितृकर्म अनुष्ठानकारीके कर्माधीनता हेतु सभी देवता और पितृगण पृथक्-पृथक् पूज्य हैं, इसमें

---

(१) तथा श्रीभागवते (१/२/२५,२७)—भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम्। सत्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह।। रजस्तमः प्रकृतयः

पित्राद्यर्च्चनं भवति? न त्वन्यथा दोषो जायते?

न्यूनत्वे कर्म्मिणां सर्व्ववैफल्यं तत्र प्रमाणचतुष्टयं

तत्र श्रीबृहद्विष्णुपुराणे—

पूज्याः सर्व्वे तु लोकानां विबुधाः पितरश्च वै।
सर्व्वकर्म्मसु राजेन्द्र सर्व्वं चेत् व्यर्थमन्यथा।।१।।

लोकानां वेदाद्युदितसदसत्कर्म्माविचारातिशय देव-पितृ-पितामहादिवर्त्माचरतां संसारिणां, वै निश्चितं, सर्व्वकर्म्मसु नित्य-नैमित्तिककाम्यापरदैवपैत्रमाङ्गल्यादिषु, सर्व्वे गणेशादि-त्रयस्त्रिंशत्कोटिविबुधास्तथा सर्व्वे पितरः स्वमातृपित्रादितः

सन्देह नहीं है। फिर भी गणेश आदि तैतीस कोटि देवताओंमेंसे प्रत्येकका अर्चन करनेपर क्या देव पूजा होती है ? उसी प्रकार अपने माता-पितासे आरम्भकर सृष्टिकर्त्तासे उत्पन्न बीजस्थानीय पिता, पितामह, प्रपितामह आदि सभी मृत पूर्वपुरुषोंका श्राद्ध करनेसे क्या सभी पितृगणोंका अर्चन हो जाता है ? अन्यथा ऐसा नहीं करनेपर क्या दोष होता है ?

इस विषयमें चार प्रमाण हैं। श्रीवृहद्विष्णु पुराणमें ऐसा उल्लेख है— हे राजेन्द्र ! सभी कर्मोंमें सभी देवता और पितृगण सभीके पूज्य हैं। यदि इसके विपरीत होता है, तो सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।।१।। लोकोंके अर्थात् वेद आदिमें कहे गये सत्-असत् कर्मके अविचार हेतु पितृगणों, देवताओं और पितामह आदि पूर्वपुरुषोंके मार्गका अनुसरण करनेवाले

समशीला भजन्ति वै। पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्य्यप्रजेप्सवः।।

इसलिए सात्त्विक प्रकृति मुनियोंने विशुद्ध सत्त्वमूर्त्ति अप्राकृत वैकुण्ठाधीश्वर विष्णुका भजन किया है। इस संसारमें उन लोगोंका अनुसरण करनेवाले लोग परम कल्याण लाभ करनेमें समर्थ होते हैं।।२५।।

राजसिक और तामसिक प्रकृतिवाले लोग अपने अपने उपास्य देवता, पितृ, भूत आदि सहित समस्त भाव विशिष्ट होनेके कारण लक्ष्मी-धन-पुत्रादिकी कामनाके कारण पितृ, भूत, प्रजेशादि देवताओंकी उपसना किया करते हैं ।।२७।।

सृष्टिकर्त्तुः ब्रह्मणः सकाशात् जातबीजीभूतपुरुषादि-तत्तन्मर्य्यादापर्य्यन्ताः, चकारात् सगोत्रसकलकुटुम्बलोकाः। सर्व्वे ते सर्व्वतोभावेन विधिवदवश्यमेव पूज्या भवन्ति, हे राजेन्द्र ! हे युधिष्ठिर ! अन्यथा एतद्व्यतिरेकेण सर्व्वेषां देवता-पितृ-सगोत्र सकलकुटुम्बलोकानां मध्ये केचिदर्च्चिताः केचिदनर्च्चिताः सन्ति चेत्, तत्तत् सर्व्वं कर्म्म व्यर्थं भवतीति निर्गलितार्थः।

तथा च श्रुतिः,—

ॐ कर्म्मफलाप्तः कर्म्मी यजेत् हव्यकव्यमयैः कामवान् सर्व्वांश्च देवान् पितृनतिथींश्च, पूर्णं विफलं नो यजन्तद्वै इति।।२।।

इहलोके वै अतिनिश्चयं यः कोऽपि कामवान् सदा कामाभिलाषी कामी लोकः, तत्रापि कर्म्मी कर्म्मनैष्ठिको, हव्यकव्यमयैः सर्व्वदेवता-पितृलोकार्हद्रव्यनिवहैः सर्व्वान् देवान् तथा अतिथीन् पूर्व्वमनागतान्, चकारात् सगोत्रादिकुटुम्बलोकान्;

संसारी लोगोंको समझना चाहिए। 'वै' शब्दका अर्थ निश्चितरूपमें समस्त कर्मोंमें अर्थात् नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मोंमें दूसरे-दूसरे देवता एवं पितृ मांगल्यादि कर्मोंमें गणेश आदि तैतीस करोड़ देवता, अपने माता पितासे आरम्भकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तथा ब्रह्मासे लेकर उनसे उत्पन्न बीज स्थानीय पूर्वपुरुषोंकी सीमापर्यन्त पितृ-पुरुष सभीको समझना चाहिए। 'च'—कारके द्वारा सगोत्र कुटुम्बके सभी लोगोंको समझना चाहिए। ये सभी सर्वतोभावेन यथाविधि अवश्य ही पूज्य हैं। हे राजेन्द्र ! हे युधिष्ठिर ! इसके विपरीत होनपर सभी देवता पितृगण, सगोत्र सभी कुटुम्बके लोगोंमेंसे यदि कोई अपूजित होते हैं, तो उन सभी विधियोंके कर्म व्यर्थ हो जाते हैं—यही उक्त श्लोकका विशेष तात्पर्य है।

इस प्रकार श्रुतिमें—'कर्मफल अभिलाषी कर्मीलोग हव्य-कव्यद्रव्यादिके द्वारा सभी देवता, पितृ-पुरुष, अतिथियोंका यजन करेंगे। ऐसा होने पर कर्मोंका फल प्राप्त होगा। पूर्ण रूपमें भजन नहीं होने पर वह कर्म

अपर-चकारादभ्यागतादिसर्व्वजीवमात्रान्, कर्म्मीत्यनेन नित्य-नैमित्तिककाम्यदैवपैत्रमाङ्गल्यादिषु सर्व्वकर्म्मसु। यदि यजेत्,—यज्धातोरनेकार्थत्वात् देवानां पूजादिकं, पितृणां श्राद्ध तर्पणादिकं, अतिथीनां यथाविधिमिलनपूर्व्वकमन्नजलादिभिर्गुरुवत् यथाविधि यथाशक्ति सेवनं, एवं सर्व्वसगोत्रादिकुटुम्बलोकानां तथाऽभ्यागतादि-सर्व्वजीवमात्राणां यथाविधिमिलनपूर्व्वकं यथाशक्तिव्यवहारकुशलसेवनं, तथान्नजलादिभिः सर्व्वजीवसन्तर्पणं—यदि कुर्य्यात्, तदा कर्मफलाप्तः (अर्थात्) अवश्यमेव कृतकर्म्मणां स कर्म्मी फलं प्राप्नोति। अन्यथा चेत्, पूर्णं नो यजन् विफलम्। अयमर्थः,—यदि केषाञ्चिद्देवानामर्च्चनं कृतं केषाञ्चिन्न कृतं, एवं पितृलोकानां केषाञ्चित् श्राद्धतर्पणादिकं कृतं केषाञ्चिन्न

निश्चय ही विफल है।।२।। इस संसारमें निश्चय ही कोई भी सकाम कर्ममें निष्ठा-सम्पन्न व्यक्ति हव्य-कव्यमय अर्थात् सभी देवताओं और पितृ-पुरुषोंकी सेवाके योग्य द्रव्यराशिके द्वारा, सभी देवता और अतिथि, 'च'—कारसे सगोत्र कुटुम्ब आदिके लोग, द्वितीय 'च'—कारसे सब प्रकारके अतिथियों आदि जीवमात्रका कर्म मार्गसे नित्य-नैमित्तिक काम्य-देव-पैत्र-मंगल आदि सभी कर्मोंका यदि यजन करते हैं—यज् धातुके अनेक अर्थ होनेके कारण यजन शब्द-देवगणोंकी पूजा, पितृलोगोंका श्राद्ध तर्पण आदि यथायोग्यरूपमें सम्भाषणपूर्वक सभी सगोत्रादि कुटुम्बके लोगों एवं अभ्यागत आदि समस्त जीवमात्रकी यथाशक्ति व्यवहार कुशलके रूपमें सेवा एवं अन्न जलादिके द्वारा समस्त जीवोंको सन्तुष्ट करता है, तभी समस्त कर्मोंका फल प्राप्त होता है। यदि ऐसा नहीं करता है तो पूर्णरूपमें यजन नहीं होता, वह विफल हो जाता है अर्थात् यदि देवताओंमेंसे किसीका अर्चन हुआ और किसीका नहीं हुआ, पितृलोकमें किसीके प्रति श्राद्ध-तर्पणादि किया गया और किसीका नहीं किया गया, अतिथि सगोत्रादि कुटुम्बके लोगोंमेंसे और आनेवाले अतिथि इत्यादि जीवमात्रमेंसे किसीका

कृतं, तथाऽतिथिसगोत्रादिकुटुम्बलोकाभ्यागतादि-सर्व्वजीवमात्राणां मध्ये केषाञ्चिदन्नजलादिभिर्यथाविधि यथाशक्ति व्यवहार-सन्तर्पणपूर्व्वकं सेवनं कृतं केषाञ्चित् न कृतं, तदा (अपूर्णत्वात्) तत् कृतं कर्म सर्व्वं विफलं भवतीत्यर्थः।

किञ्च देवीपुराणे—

सर्व्वेषां पितृदेवानां माङ्गल्यादिषु कर्म्मसु।
तन्नो कृते प्रत्यवायी पूजनं कर्म्मठो नरः।।३।।

माङ्गल्यादिष्वत्यत्रादिपदेन नित्यनैमित्तिककाम्यदैवपैत्रादि-सकलकर्म्मसु, (कर्म्मठः) कर्म्मतत्परतयातिनिपुणो नरो वर्णादि-मनुष्यमात्रः सर्व्वेषां देवानां पितॄणां पूजनं—देवानामर्च्चनादिकं पितॄणां श्राद्धतर्पणादिकं—कुर्य्यात्। तत् नो कृते; अयं भावः,—(तत् तस्मिन्) तेषां गणेशादित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवानां सर्व्वेषां पूजने नो कृते सति, तथा सकलपितृलोकानां स्वपितृमात्रादि-

---

यथाविधि यथाशक्ति व्यवहार आदिके द्वारा सन्तुष्टि की गयी अथवा उनकी सेवा की गयी और किसीका वैसा नहीं किया गया, तो ऐसा होनेसे अपूर्णता हेतु वे समस्त कृतकर्म विफल हो जाते हैं।

देवीपुराणमें भी ऐसा उल्लेख है—कर्म निपुण व्यक्ति मांगल्यादि कर्मोंसे समस्त देवता और पितृगणोंकी पूजा करेगे। ऐसा नहीं करनेसे दोषका भागी होता है।।३।। 'मांगल्यादि' शब्दके भीतर आदि पदसे नित्य-नैमित्तिक-काम्य-दैव-पैत्रादि सब कर्मोंमें कर्मतत्परता हेतु निपुण वर्णादि मनुष्यमात्र सब देवताओंका अर्चन और सभी पितृपुरुषोंका श्राद्ध तर्पण आदि करेंगे। ऐसा नहीं करनेसे अर्थात् उन कर्मोंमें गणेश आदि तैतीस करोड़ देवताओंकी पूजा नहीं होने पर तथा माता-पितासे आरम्भकर विश्वस्रष्टासे उत्पन्न बीजभूत मृत-पूर्वपुरुषोंका श्राद्ध-तर्पण आदि अनुष्ठित नहीं होने पर, वह व्यक्ति पापका भागी होता है, अर्थात् इन सब कार्योंके अकरणके दोषमें लिप्त होता है।

विश्वसृक्सकाशजातवीजीभूतपुरुषाणां पञ्चत्वगतानां श्राद्ध-तर्पणादिके न कृते सति च प्रत्यवायी—(स्यात्), तत्तत्कर्मा-करणत्वदोषादिकं प्राप्नोति।

तथा च रुद्रयामले—

देवताः पितरः सर्व्वे शिवे पूज्याः प्रयत्नतः।
न्यूनाः स्युर्निष्फलं केचित् गृहिभिर्यदि कर्म्मसु।।४।।

हे शिवे ! कल्याणदायिनि दुर्गे ! कर्म्मसु—बहुवचनान्तत्वेन नित्यनैमित्तिककाम्यदैवपैत्रमाङ्गल्यादिषु सर्व्वकर्म्मसु, गृहिभि-वर्णादिभिर्गृहस्थमात्रैः प्रयत्नतः प्रकृष्टयत्नेन सर्व्वे देवास्तथा सर्व्वे पितरः पूज्याः स्युर्भवेयुः। यद्येतेषु कर्म्मसु (दैवपैत्रेषु) केचिन्न्यूनाः (स्युः), अयमर्थः—गणेशादित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवानां मध्ये यदि केचित् पूजिताः केचन न पूजितास्तथा सकल-पितृलोकानां मध्ये केषाञ्चित् श्राद्धतर्पणादिक्रिया कृता केषाञ्चिन्न कृता तद्गृहिभिरिति, तदा कर्म्मकर्त्तृनां गृहस्थानां तेषां कृतं, तत्तत् सर्व्वं कर्म्म निष्फलं भवतीत्यन्वयः। अपरं ग्रन्थबाहुल्यान्न लिखितम्।

रुद्रयामलमें भी ऐसा कहा गया है—हे शिवे ! गृहीजन सब प्रकारके कर्मोंसे सभी देवता और पितृपुरुषोंकी यत्नपूर्वक पूजा करेंगे। यदि किसीकी न्यूनता होती है, तो वह कर्म निश्चय ही निष्फल हो जाता है।।४।। हे कल्याणदायिनी दुर्गे ! 'कर्म' शब्दमें बहुवचन होनेके कारण नित्य-नैमित्तिक-काम्य-दैव-पित्र-मांगल्यादि कर्मोंको समझना चाहिए। 'गृही' से वर्णाश्रमस्थित गृहस्थोंको सभी देवताओं और पितृपुरुषोंकी अत्यन्त यत्नके साथ पूजा करनी चाहिए, वे पूज्य हैं। यदि उन कर्मोंसे कोई न्यून रहते हैं अर्थात् उन गृहस्थोंके द्वारा तैतीस करोड़ देवताओंमेंसे कोई पूजित कोई अपूजित रहते हैं एवं पितृ-पुरुषोंमेंसे किसीके प्रति श्राद्ध-तर्पण अनुष्ठित होते हैं और किसीके प्रति अनुष्ठित नहीं होते हैं, तो ऐसे

कर्म्मिनामसम्पूर्णक्रियाकरणे प्रत्यवायो भक्तानान्तु तत्तत्कर्म्मकरणे सेवानामापराधः

ननु श्रीहरिनाममन्त्रादीक्षितवर्णादिगृहस्थानां नित्यादि-सर्व्वकर्म्मसु पुराणवेदोपपुराणागमाद्युक्तप्रमाणवचनैर्गणेशादित्रय-स्त्रिंशत्कोटिदेवतार्च्चने सम्पूर्णमकृते सति, तथा स्वपितृमात्रादि-ब्रह्मसकाशजातबीजीभूतपुरुषान्तानां सम्पूर्णं श्राद्धतर्पणादावकृते सति तत्तत् सर्व्वं कर्म्मं व्यर्थं, प्रत्यवायजनक-निष्फलतादि-दोषश्रवणञ्च। तथा श्रीसद्गुरु-श्रीभगवन्नाममन्त्रोपदिष्टवर्णादि-सर्व्वलोकानां नित्यनैमित्तिककाम्यदेवतार्च्चनादि-पितृश्राद्ध-तर्पणादिसर्व्वकर्म्मकरणे (१) सेवा-नामापराध-दोषश्रवणम्।

कर्मी गृहस्थोंके द्वारा किये गये समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं।

ग्रन्थ विस्तारके भयसे बहुतसे प्रमाणों और उनकी व्याख्याका उल्लेख नहीं किया गया।

(कर्मियोंके क्रियाओंमें अपूर्णता रहनेसे प्रत्यवाय (पाप) होता है और उन्हीं कर्मोंके अनुष्ठानसे भक्तोंके लिए सेवापराध और नामापराध होते हैं।)—जैसे श्रीहरिनाम-मन्त्रमें अदीक्षित वर्णोंके गृहस्थ व्यक्तियों आदिके लिए नित्य-नैमित्तिक-काम्य आदि सभी कर्मोंमें गणेश आदि तैतीस करोड़ देवताओंका सम्पूर्णरूपसे अर्चन-पूजन अनुष्ठित नहीं होने पर तथा उसी प्रकार माता-पितासे आरम्भकर ऊपरमें ब्रह्मासे उत्पन्न बीजपुरुष पर्यन्त पितृगणोंमेंसे प्रत्येकके लिए श्राद्ध-तर्पण आदि क्रियाएँ सम्पूर्ण रूपमें सम्पादित नहीं होने पर वेद-पुराण-उपपुराण-आगममें कहे गये प्रमाणोंके अनुसार ये सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं और व्यर्थताके साथ ही उनमें पाप आदि दोष भी लगनेकी बात सुनी जाती है। किन्तु दूसरी तरफ सद्गुरुसे श्रीभगवन्नाम-मन्त्रमें दीक्षित चतुर्वर्णादिके सभी लोगोंके लिए नित्य-नैमित्तिक-काम्य और देवताओंके अर्चन आदि अर्थात् पितृश्राद्ध-तर्पण आदि कर्मोंके

---

(१) सर्वकर्मणि कृते सतीति वा पाठः।

अतः कारणात् वर्णाश्रमसङ्करान्त्यजादीनां तथा श्रीकार्ष्ण-वैष्णवादीनाञ्च श्रीभगवान् हरिरेव पूज्यः सर्व्वेश्वरत्वान्नान्य इति निश्चयः। तथापि केचित् वर्णादयो लोकाः सर्व्वं विष्णुमयं विष्ण्वेकतानं केवलश्रीविष्ण्वेकाराध्यं न बुद्ध्वा—विष्णुमयं सर्व्वं जगत्, सर्व्वजगदेव विष्णुरिति मत्वा सर्व्वदेवतादीनामर्च्चनादौ कृते सति श्रीविष्णुपूजनादिकं भवति (इति मन्यन्ते)। (यत्) इदं मतं नो विधिः, केवलनिषेधमात्रं नश्वरत्वात् (तत्) श्रीभगवद्वचनेनात्र प्रमाणयंति।

देवतान्तरयजनस्य अविधित्वे तुच्छत्वे च प्रमाणपञ्चकम्

भगवद्वाक्यतात्पर्य्यं—अन्यदेवयजनमविधिपूर्व्वकं भगवद्भजनमेव

श्रीभगवद्गीतायां (९/२३)—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्व्वकम्।।१।। +

अनुष्ठान किये जाने पर **सेवापराध और नामापराध होनेकी** बात सुनी जाती है। अतः **वर्णाश्रमबर्हिभूत संकर-अन्त्यज आदिमें अवस्थित मनुष्यमात्रके लिए उसी प्रकार कार्ष्ण-वैष्णवादि सभीके लिए सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि ही पूज्य हैं, दूसरा और कोई पूज्य नहीं है; यही चरम सिद्धान्त है।** तथापि वर्णादिमें अवस्थित कोई-कोई ऐसा समझते हैं कि 'समग्र जगत् विष्णुमय है, अतएव समस्त जगत् ही विष्णु हैं। इसी विचारसे सभी देवताओंका अर्चन करनेसे विष्णुकी ही पूजा होती है। किन्तु नश्वरता हेतु अन्यान्य समग्र जगत् नश्वर होनेके कारण यह मत

+ अत्र श्रीमद्भट्टगोस्वामीचरणकृतव्याख्यानुसारतस्त्रिविधः श्लोकान्वयो यथा,—

(१) येऽपि भक्ताः (मद्भक्ता इत्यर्थः) (मय्येव) श्रद्धयान्विताः (किन्तु) अन्यदेवता यजन्ते, हे कौन्तेय ! तेऽप्यविधिपूर्व्वकं (अविधिरत्र कदाचित् देवतान्तरपूजानिषेधहेलनमात्रं, नत्वन्यथा सविघ्नं) मामेव यजन्ति (न तु देवतान्तरं, मय्यनन्यशरणत्वात्)। इत्येकः।।

ये अपि निश्चितं, भक्ता मद्‌भक्तजनाः, श्रद्धयान्विता अतिशयश्रद्धायुक्ताः श्रीसद्‌गुरूपदेशसमयात् पञ्चत्वेन भौतिकदेहपातपर्य्यन्तं, अविधिपूर्वकं कदापि निषेधमात्ररहितत्वेन (किन्त्वन्यथा) सविघ्नं यथा न भवति तथा, एवम्भूताः सन्तः

विधि संगत नहीं है'। बल्कि ऐसा करना या समझना निषिद्ध है, श्रीभगवद्वचनोंके द्वारा यहाँ प्रमाणित किया जा रहा है।

(दूसरे-दूसरे देवताओंकी पूजा अविधिपूर्वक एवं तुच्छ है—इस विषयमें पाँच प्रमाण दिये जा रहे हैं।)—श्रीमद्‌भगवद्गीता (६/२३) में 'जो भक्त श्रद्धायुक्त होकर अन्यान्य देवताओंका यजन करते हैं, हे कौन्तेय ! वे लोग मेरा ही यजन करते है; किन्तु वह यजन अविधिपूर्वक है'।।१।। भक्त अर्थात् हमारे भक्तजन यदि श्रद्धान्वित अर्थात् सद्गुरुसे उपदेश ग्रहणके समयसे आरम्भकर पाञ्चभौतिक देहपतन तक वे अतिशय श्रद्धायुक्त होते हैं; ऐसा समझना चाहिए। अविधिपूर्वक अर्थात् निषेधमात्र रहित अथच विघ्न न पड़े, इस भावसे अतिनिश्चल होकर अनन्य शरणता हेतु मेरा ही भजन करते हैं, अन्य देवताओंका नहीं। 'एवं' शब्दसे यही अर्थ

---

(२) हे कौन्तेय ! येऽप्यन्यदेवताभक्ताः (मदभक्ताः) तेऽपि (तास्वेव देवतासु) श्रद्धयान्विता अविधिपूर्वकं (अविधिरत्र तासु स्वतन्त्रदेवतापरिज्ञानं) (ताः) यजन्ते। (तेन यजनेन) यजन्ति मामेवेति काकुः (मामेव यजन्ति किम् ? नहि मामित्यर्थः)। इत्यपरः।।

(३) हे कौन्तेय ! येऽप्यन्यदेवताः (किन्तु पश्चान्मयि) श्रद्धयान्विताः सन्तो मामेव यजन्ते, अविधिपूर्वकमिति काकुः (अविधिपूर्वकं किम् ? नहीत्यर्थः) तेऽपि भक्ताः सन्तो (मां) यजन्ति। इति तृतीयः।।

श्रीभट्ट गोस्वामीचरणकृत व्याख्यानुसार तीन श्लोकके द्वारा त्रिविध प्रकारकी अविधियाँ—(१) विष्णु भक्तोंके लिए अन्य देवताओंकी पूजा निषिद्ध है। यदि विष्णु भक्त उक्त विशेष निषेधका पालन नहीं करता और देवताओंकी पूजा करता है; किन्तु मुझमें (कृष्णके प्रति) श्रद्धायुक्त रहता हुआ ऐसा करता तो उस पूजामें दोष तो प्रवेश करता है, तथापि वह विष्णु–सेवासे एकान्त रूपमें विच्युत नहीं होता; फिर भी शुद्ध वैष्णवोंके लिए यह अविधि है; इसलिए इसका सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

तेऽप्यतिनिश्चलतयानन्यशरणत्वेन मामेव भजन्ते, न तु देवतान्तरम्। अयमर्थ एवकाराज्ज्ञातः। अतः सेव्यसेवकत्वेन केवलमद्भजनेनैव तेषां पुनरावर्त्तनं नास्ति।

सूचित होता है। अतएव सेव्य-सेवक सम्बन्धसे एकमात्र मेरे भजन द्वारा ही उनका पुनरागमन नहीं होता। इसके अतिरिक्त दूसरे देवोपासक मुझसे विमुख होकर यदि श्रद्धान्वित अर्थात् कामनावशतः शीघ्रफल प्राप्तिकी आशासे अत्यन्त दृढ़चित्त होकर केवल दूसरे-दूसरे देवताओंका भजन करते हैं, मेरा भजन नहीं करते, क्यों ? क्योंकि वे दूसरे-दूसरे देवताओंका यजन आदि अनुष्ठान जैसे अविधिपूर्वक होता है, उसी रूपमें करते हैं तो उनका वह यजन अविधिपूर्वक है। इसका तात्पर्य यह है कि हे अर्जुन ! मेरी लीलाकथाओंके श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, यजन आदिके अनुष्ठान

---

(२) विष्णु भक्ति रहित अन्य देवता उपासक विष्णुको छोड़कर दूसरे देवताओंको स्वतन्त्ररूपमें ईश्वर मानकर उनकी पूजा करते हैं—विष्णुभजन नहीं करते, यह गुरुतर अविधि नामापराध है। इस प्रकार अविधिके द्वारा किसी प्रकारसे विष्णु-सेवा नहीं होती। इसलिए यह अत्यन्त निन्दनीय और सब प्रकारसे परित्यज्य है।

(३) विष्णुका भी भजन करते हैं और अन्यान्य देवताओंका भी पूजन करते हैं; तुल्यबुद्धिसे अथवा दूसरे स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए ऐसी सेवा करते हैं—यह भी अविधि और नामापराध है, इसलिए यह भी परित्यज्य है।

तात्पर्य—गीतामें कहे गये 'अहं हि सर्व यज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च' (६/२४) एवं [श्रीमद्भागवत—'सर्वार्हणमच्युतेज्या' (४-३१-१४) इन श्लोकोंमें कहे गये तत्त्वज्ञानका अभाव होने पर श्रीभगवान्‌की सेवामें तथा दूसरे देवताओंकी पूजामें लोगोंकी जो स्वतन्त्र-देवताकी बुद्धि अथवा प्रयोजनका बोध होता है—वही अविधि है। उक्त त्रिविध अविधियाँ इसी मूल अविधिके प्रकाशान्तर है। कृष्ण ही एकमात्र सर्वयज्ञेश्वर और सर्वमय प्रभु हैं। उनकी सेवासे ही दूसरोंका अर्चन और तुष्टि हो जाती है। इन श्रीकृष्णके अधीन या अंग रूपमें दूसरे देवता अर्चनीय है, इस विचारसे कृष्णका और दूसरे देवताओंका यजन ही एकमात्र विधि है। इसके अनुसार दूसरे-दूसरे देवताओंकी पूजा होने पर भी विधिपूर्वक भगवत् भजनकी तथा विधिपूर्वक अन्य देवताओंकी

अतःपरं एतद्भिन्ना येऽपि (अन्यदेवताभक्ता अतो मम) अभक्ता मद्बहिर्म्मुखास्तेऽपि श्रद्धयान्विताः कामनया क्षिप्रं फलप्राप्त्यातिदृढ़ाः सन्तोऽन्यदेवताः केवलं यजन्ति, न मामेव। कथं ?—यतोऽन्यदेवतायजनादिकं तेषामविधिपूर्व्वकं (अविधिरत्र तासु स्वतन्त्रदेवताज्ञानं) यथा भवति तथा क्रियते। अत्रायं भावः,—हे कौन्तेय ! अर्ज्जुन ! मच्छ्रवण-कीर्त्तन-स्मरण-यजनादिकः सर्व्वोऽयं विधिः, सत्यत्वेन संसारबन्धनमोचनत्वात्। एतद्-भिन्नोऽन्यः सर्व्वदेवतायजन-यागयज्ञादिको निषेधो, मद्भजनं विना नश्वरत्वेन पुनः पुनरावर्त्तनत्वात्, अतएव मद्भजनादिकं सर्व्वतः श्रेष्ठम्। एतद्व्यतिरेकेण मर्त्त्यादीनामन्येषां का वार्त्ता—पुराऽमृतपानेनामरब्रह्मेन्द्रादीनां केषाञ्चित् संसृतिबन्धनतो मुक्तिरूपाऽन्या निष्कृतिर्नास्तीत्यर्थः।

यद्वा, येऽप्यन्यदेवता ब्रह्मेन्द्रादयो अन्या देवता येषां ते

नित्य होनेके कारण संसार बन्धन-मोचनका कारण होते हैं। इसलिए वे सभी विधि हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे देवताओंका यजन, याग, यज्ञ इत्यादि सब कुछ नश्वर और पुनः-पुनः आवागमनके हेतु हैं। अतएव मेरा भजन ही सर्वश्रेष्ठ है। इन सब कारणोंसे भगवद्धर्म अनुष्ठानके अतिरिक्त अमृतपानसे अमर होनेवाले ब्रह्मा, इन्द्र आदि किसी भी देवताके यजन द्वारा संसार बन्धनसे मुक्त होनेका और कोई भी दूसरा उपाय नहीं है, मरणशील व्यक्तियोंकी तो बात ही क्या है ?

दूसरी व्याख्या—जो लोग अन्य देवताओंके परायण हैं अर्थात्

पूजाका आदर्श श्रीमद्भागवत कथित (५/७ म अध्याय) में महाभागवत राजा भरतके चरित्रमें देखा जाता है। भरत महाराज नानाविध यज्ञोंके द्वारा यज्ञेश्वर वासुदेवका ही यजन किया करते थे। वे श्रीवासुदेवको एकमात्र कर्त्ता समझकर यज्ञोंका फल श्रीवासुदेवको ही समर्पण करते थे, एवं यज्ञके भागी इन्द्र इत्यादि दूसरे देवताओंको परदेवता श्रीवासुदेवके ही अंगके रूपमे देखते थे। दूसरे देवताओंके यजनका यथार्थ उद्देश्य यही है।

जन्मतो मद्‌बहिर्म्मुखाः शैव-शाक्त-सौर-गाणपत्याद्याः, पश्चाद् गुरूपदेशतः साधुसङ्गतश्चाविरतं श्रद्धयान्विताः अतिशय-श्रद्धावन्तः सन्तः, हे कौन्तेय ! हे पार्थ ! यदाऽनन्याश्रयत्वेन मामेव यजन्ते नान्यान्, तदा तेऽपि निश्चयमेव भक्ता मद्‌भक्ता भवन्ति मद्‌भजनप्रतापात्। किन्तु (न) यद्यविधिपूर्व्वकमर्थार्थाय यजन्ति। किं तत् ?—**मां भजन्ते, अन्या देवता अपि पूजयन्ति, तदा अविधिर्भवति। अतः सर्व्वदा निर्व्विघ्नत्वेन मां विना-ऽन्यस्य यजनादिकं किञ्चित्—सहजेन यथाकाले तिष्ठतु—निद्रावस्थायामपि यदि न कुर्व्वन्ति तदा शुद्धसत्त्वत्वेन मद्‌भक्ता भवन्तीति निर्गलितार्थः।**

देवतान्तरार्च्चनस्य तुच्छत्वं

ननु भगवदाराधनं विनान्यत् सर्व्वं नश्वरं तुच्छत्वेन हेयम्। अत्र देवानां स्तुतिवचनेनाह श्रीभागवते (६/९/२२)—

ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंका भजन करते हैं और आजन्म मेरे विमुख शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि जो अन्य देवोपासक हैं, यदि वे साधुसंग और सद्गुरुके उपदेशसे मेरे प्रति अनन्य श्रद्धान्वित होकर जब अनन्यरूपमें मेरे प्रति शरणागत होकर मेरा भजन करते हैं और दूसरोंका नहीं, तब वे मेरे भजनके प्रभावसे निश्चित ही मेरे भक्त होते हैं। किन्तु यदि अविधिपूर्वक नहीं अर्थात् स्वार्थसिद्धिके लिए नहीं, मेरी प्रीतिके लिए ही मेरा भजन करते हैं तब वे मेरे अनन्य भक्त हैं। वह किस प्रकार ? मेरा भी भजन करते हैं तथा दूसरे देवताओंका भी भजन करते हैं यह अविधि है। अतएव समय-समय पर सहज भावसे पूजाकी तो बात दूर रहे, **मेरा भजन ही सर्वथा निरापद है—ऐसा विचारकर अन्यान्य देवताओंका यजन आदि किञ्चित्मात्र स्वप्नमें भी यदि नहीं करते, तब वे शुद्धसत्त्वमय होकर भक्त होते हैं**—यही विशदार्थ है।

'भगवत् आराधनाको छोड़कर सब कुछ नश्वर और तुच्छ होनेके

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम्।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्त्ति सिन्धुम्।।२।।

तं गोविन्दम् विना यो वर्णादिलोकोऽपरं बहिरङ्गादि–देवतान्तरं उपसर्पत्युपासनं करोति भजते (इत्यर्थः) स एव बालिशो महाज्ञतमः। किं भूतं—स्वेनैव लाभेन स्वकीयाणिमाद्यष्टगुणवैभवपूर्णतमत्वेन समं सह परिपूर्णकामं परिपूर्णोऽभिलाषः कामो यत्र तम्। यतः श्रीभगवति हरावस्मिन् अनन्यशरणो भक्तो जनः सर्व्वानभिलाषितकामानवाप्नोति। अतःपरं क्वापि कोऽपि सर्व्वतोभावेन पूर्णकामो नास्तीत्यर्थः। अतएवाविस्मितं नित्यत्वेन किञ्चिदपि विस्मयो नास्त्यत्र श्रीमद्गोविन्दे। अतः प्रशान्तं स्वकीयभक्तानां वाच्छनीयरूपम्। श्रीभगवन्तमेव श्रीगोविन्दं विहाय यः कोऽपि वर्णादिः

कारण अत्यन्त हेय है। श्रीमद्भागवत (६/६/२२) में देवताओं द्वारा कृत स्तुतिमें ऐसा कहा गया है कि जो व्यक्ति सुनिश्चितरूपमें परिपूर्णकाम एवं प्रशान्त श्रीगोविन्दको छोड़कर दूसरोंकी उपासना करते हैं, वे मूर्ख निश्चय ही कुत्तेकी पूँछ पकड़कर अथाह (अनन्त) महासागरको पार करनेकी इच्छा करते हैं'।।२।। वर्ण एवं आश्रममें अवस्थित जो लोग वैसे श्रीगोविन्दको छोड़कर अन्य बहिरंग आदि देवताओंकी उपासना करते हैं वे महामूर्ख हैं । वे गोविन्द कैसे हैं ? अपने लाभके सहित अर्थात् अपनी अणिमादि अष्टगुण वैभवोंसे परिपूर्णकाम हैं; अनन्य शरणागत भक्त भगवान् श्रीहरिकी आराधनाके द्वारा सब प्रकारकी अभिलषित कामनाओंको प्राप्त करते हैं। क्योंकि श्रीगोविन्दके अतिरिक्त कोई भी पूर्णकाम नहीं है। अतएव अविस्मित—नित्यत्व हेतु श्रीगोविन्दमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है। अतएव वे प्रशान्त हैं अर्थात् अपने भक्तोंके वांछनीय रूप—विशिष्ट हैं। मायाके द्वारा मोहित किसी भी वर्णका व्यक्ति श्रीभगवान् गोविन्दको परित्यागपूर्वक दूसरे-दूसरे देवताओंकी उपासना करनेपर वह

श्रीभगवन्मायामोहितधीः सन् देवतान्तरं भजते तस्य बालिशत्वं दर्शयति,—यथा अतिशयमज्ञजनः श्वलाङ्गुलेन कुक्कुरस्य पुच्छेन अर्थात् कुक्कुरस्य पुच्छं विधृत्य सिन्धुं समुद्रमतितितर्त्ति अतिशयेन तर्त्तुमिच्छति, तथा श्रीभगवद्बहिर्मुखो वर्णाश्रम-सङ्करान्त्यजादिर्नरोऽतितुच्छकामनया (अन्यदेवताः) सेवते, किन्तु कर्त्रायत्तत्वात् फलमपि न प्राप्नोति, पुनः पुनर्जन्ममरणत्वेन संसृतिबन्धनतो (तस्य) निष्कृतिश्च नास्तीत्यर्थः।

पाद्मे—

यथा धृत्वा शुनः पुच्छं तर्त्तुमिच्छेत् सरित्पतिम्।
तथा त्यक्त्वा हरिं सेव्यमन्योपासनया भवम्।।३।।

अन्येषां बहिरङ्गतटस्थादीनामुपासनया देवानामर्च्चनादि-सेवया भवं संसारं तर्त्तुमिच्छतीत्यर्थः। सर्वमपरं स्पष्टम्। तस्मात् श्रीहरिव्यतिरेकेन संसारेऽस्मिन् भजनीयः कोऽपि नास्त्यपरः।

'महामूर्ख' बतलाया गया है। जैसे कोई महामूर्ख कुत्तेकी पूँछ पकड़कर अपार समुद्रको पार करनेकी अभिलाषा करता है तो वह कुत्तेके साथ ही समुद्रमें डूब जाता है, उसी प्रकार वर्ण, आश्रम, संकर और अन्त्यज आदिमें स्थित भगवत्बहिर्मुख व्यक्ति भी अत्यन्त तुच्छ कामनाओंके वशीभूत होकर अन्य देवताओंकी उपासना करनेपर उन अनुष्ठानोंका फल मूलभोक्ता भगवान् श्रीहरिके अधीन रहनेके कारण उन-उन फलोंको भी प्राप्त नहीं कर पाता और पुनः पुनः जन्म-मरण संसार चक्रमें भ्रमण करता रहता है।

पद्मपुराणमें भी ऐसा कहा गया है—मूर्ख लोग जैसे कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्रको उत्तीर्ण होनेकी इच्छा करते हैं, उसी प्रकारसे परम सेव्य श्रीहरिका परित्यागकर दूसरे देवताओंकी उपासनाके बलपर जो संसार-समुद्रको उत्तीर्ण होनेकी इच्छा रखते हैं, वे डूब जाते हैं अर्थात् त्रितापयुक्त आवागमनके चक्रमें सदाके लिए फँस जाते हैं। 'अन्य

तत्र श्रीनारदं प्रति सदाशिववचनेनाह, यथा—

भुवने सर्वलोकानां नाराध्यो वै हरिं विना।
भवार्णवच्छिन्नकोऽपि सर्वकामदकामदः ।।४।।

भुवने चतुर्द्दशभुवने सर्वलोकानां ब्रह्मादीनामाराध्यो हरिव्यतिरेकेन कोऽपि क्वापि न वर्त्तत इति निश्चयः। किन्तु यद्यपि वेदस्मृतिपुराणागमादीनां मतेन बहिरङ्गतटस्थादीनां देवतानां पूजादिकं करोति कोऽपि वर्णादिलोकः सकल-फलकामनया, तत्रापि सर्वकामदकामदः सर्वान् कामान् ददाति कोऽपि देवस्तस्य कामदोऽभीष्टप्रदोऽपि श्रीहरिः। अतएव तेषु बहिरङ्गतटस्थादिषु देवेषु कोऽपि भवार्णवस्य संसारसमुद्रस्य छिद् संसृतिबन्धनत्वेन पुनः पुनरावर्त्तनस्य छेत्ता न भवतीत्यर्थः। अतएव घोरसंसारमहाभयनिवारणकर्त्ता श्रीभगवन्तं विना कोऽपि नान्य इति निश्चयः।

देवताओं' यहा 'अन्य' शब्दका तात्पर्य बहिरंग या तटस्थ आदि उपासनाओं अर्थात् अन्यान्य देवताओंका पूजन, उनकी सेवा आदिके द्वारा संसार उत्तीर्ण होनेकी इच्छा रखनेसे है। दूसरी बातें सभी स्पष्ट हैं। अतएव **श्रीहरिके अतिरिक्त इस संसारमें और कोई भी भजनीय नहीं है।**

इस विषयमें श्रीनारद गोस्वामीके प्रति सदाशिवके वचनरूपी प्रमाणमें कहा जा रहा है—'इस संसारमें सभी लोकोंके श्रीहरि ही परमाराध्य हैं; उनके अतिरिक्त कोई दूसरा आराध्य नहीं हैं—यह निश्चित बात है। भगवान् श्रीहरिके अतिरिक्त और कोई भी कामदाताओंके भी कामदाता तथा संसारबन्धनको दूर करनेवाला नहीं है'।।४।। ब्रह्माण्डमें अर्थात् १४ भुवनोंमें समस्त लोकोंके (ब्रह्मादिके) आराध्य श्रीहरिके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है—यह निश्चित है। किन्तु यदि किसी वर्ण और आश्रमका कोई व्यक्ति सब प्रकारकी कामनाओंसे वशीभूत होकर वेद, पुराण, आगम आदिके मतानुसार बहिरंग या तटस्थ देवताओंकी पूजा करता है; यहाँ भी

कृष्णस्य शरण्यैकत्वं

अतः श्रीभगवन्तं प्रत्युद्धववाक्येनाह श्रीभागवते (११/१६/६),—

तापत्रयेणापि (१) हतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षाद्।।५।।

हे ईश प्रभो ! अस्मिन् घोर अनिवारणमहाभयङ्करे भवाध्वनि संसारपथे तापत्रयेण आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकमयेन, अपि निश्चितं, सन्तप्यमानस्य गर्भयातनादिमहाकष्टभोगत्वापरिमितक्लेशदह्यमानस्य, अतो हतस्य हन्धातोर्गत्यर्थत्वात् पुनः पुनर्जन्ममरणत्वागणितगतागतस्य, लोकमात्रस्याशरणस्य तवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रात् चरणयुगलातपत्रं विनाऽन्यच्छरणमहं न

सर्वकामदाता उन देवताओंके भी मूल अभीष्टदाता श्रीहरि ही हैं, इसलिए बहिरंग और तटस्थ आदि देवगणोंमें कोई भी संसार-बन्धनरूप पुनः-पुनः आवागमनको दूर करनेवाले नहीं हैं। अतः भगवान् श्रीहरिको छोड़कर अन्य कोई भी इस घोर संसारके महाभयको दूर करनेवाले नहीं हैं—यह सुनिश्चित है।

(एकमात्र श्रीकृष्ण ही सबके शरण्य हैं)—इसलिए श्रीमद्भागवत (११/१६/६) में श्रीभगवान्‌के प्रति उद्धवके ऐसे वचन हैं—हे भगवन् ! घोर संसारके पथमें त्रितापके द्वारा तप्त और गतागति-विशिष्ट जनोंके लिए अमृतकी वर्षा करनेवाले आपके श्रीचरणयुगलरूपी छत्रके अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं देख पा रहा हूँ।।५।। हे ईश्वर ! इस घोर अर्थात् अनिवार्य हेतु महाभयंकर संसार-पथमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापत्रयके द्वारा; 'अपि' अर्थात् निश्चित 'संतप्यमान्' अर्थात् गर्भ-यातना इत्यादि भीषण कष्टभोगरूप अपरिमित क्लेशोंसे दग्धीभूत होता हुआ, अतएव पुनः-पुनः जन्ममरणहेतु अगणित गतागति-विशिष्ट

---

(१) तापत्रयेणाभिहतस्येति पाठान्तरम्।

पश्यामि। अयं भावार्थः—लोके आतपत्रं छत्रं तस्मात् यथा महारौद्रसन्तापजलवृष्ट्यादिषु पथिकादिकस्य रक्षा भवति, तथा संसृतिरज्जुबन्धनबद्धस्य लोकमात्रस्य त्वच्चरणयुगलात् भवबन्धोद्धारकभूताच्छत्रात्, अतएवामृताभिवर्षात्,—अमृतं सायुज्यादिमुक्तिचतुष्टयं तथा भवबन्धनमोक्षस्वरूप-श्रीभगवत्पदारविन्दसेवा तत्तद्धामप्राप्तिश्च,—एतस्य अभि सर्वतोभावेन वर्षं अविरतानन्दसन्दोहप्रवाहवृष्टिर्यस्मात् तत् तस्मात्। एतेन श्रीभगवच्चरणयुगलात् कोटिकोटिमुक्ति-वृन्दमगणितवृष्टिधारावद्भवतीति भावः। तस्मादेतस्यां जगत्यां देवतासुरमनुष्यादिलोकमात्रस्यानन्यशरणत्वेन श्रीमद्भगवतस्तव चरणयुगलभजनव्यतिरेकेन भवबन्धनमोचनरूपनिष्कृतिर्न लभ्यत इत्यर्थः। यतस्त्वच्चरणसेवी लोको जीवने पञ्चत्वे वा सति सर्व्वदैव सुखीसंसारबन्धनरहित्वात्।

निराश्रय लोकमात्रके लिए आपके श्रीचरणयुगलरूप छत्रके अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय मैं देख नहीं पाता। भावार्थ यह है कि—संसारमें छत्रके द्वारा जिस प्रकार अत्यन्त रौद्र, ताप, जलवृष्टि इत्यादिसे पथिककी रक्षा होती है, उसी प्रकार संसार–रज्जुमें बद्ध त्रितापग्रस्त लोगोंके लिए भवबन्धनको दूर करनेवाले आपके श्रीचरणयुगलरूप छत्रके द्वारा ही लोगोंकी रक्षा हो सकती है। 'अमृताभिवर्षी'—अर्थात् सायुज्यादि चार प्रकारकी मुक्ति एवं भवबन्धनसे छुटकारारूप मुक्ति, भगवत्पदारविन्दकी सेवा एवं तदीय धाम प्राप्ति—इस प्रकार अमृतकी सर्वतोभावेन वर्षा द्वारा अर्थात् निरन्तर आनन्दसमूहकी धारा–वृष्टि जहाँसे होती रहती है, ऐसे छत्र–स्वरूप आपके श्रीचरणयुगल हैं। कोटि–कोटि मुक्तिराशि अगणित वृष्टिधाराकी भाँति श्रीहरिके श्रीचरणोंसे निरन्तर प्रवाहित होती रहती है—उक्त वचनोंसे यह सूचित होता है। अतएव हे भगवन्! इस जगतमें देवता, असुर, मनुष्य इत्यादि जीवमात्रके लिए एकमात्र आपके

अनन्यशरणताविवेकः •

देवतादिपूजादिव्यतिरेकेन वर्णादिकस्यानन्यशरणत्वं दर्शयति, यथा श्रीसनत्कुमारसंहितायां—

अनन्यशरणो नित्यं तथैवानन्यसाधनः।
अनन्यसाधनार्थश्च स्यादनन्यप्रयोजनः॥
नान्यञ्च पूञ्जयेद्देवं न नमेत स्मरेन्नच।
न पश्येन्न च गायेच्च न च निन्देत् कदाचन॥
नान्योच्छिष्टञ्च भूञ्जीत नान्यशेषञ्च धारयेत्।
अवैष्णवानां सम्भाषावन्दनादि विवर्ज्जयेत्॥

श्रीसद्गुरुभगवन्नाममन्त्रदीक्षितो वर्णादिरनन्यशरणो-नित्यमतिनिश्चयमेव स्याद् भवेदित्यर्थः,—श्रीमद्गोविन्दं विना न विद्यते ब्रह्माण्डान्तर्बाह्ये अन्यः कोऽपि शरणं सेव्यत्वेनेष्टं यस्य सोऽयम्। एवं सर्वत्र (स्यादित्यस्यान्वयः)। यथाऽनन्य-

---

श्रीचरणयुगलोंके भजनके अतिरिक्त भवबन्धनसे मुक्तिके लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। क्योंकि आपके श्रीचरणकमलोंकी सेवा करनेवाले मनुष्य जीवन या मरण सभी स्थितियोंमें संसार बन्धनसे मुक्त रहनेके कारण सर्वदा सुखी हैं।

अन्य देवताओंके अर्चन आदिके वर्जनके द्वारा वर्णाश्रमियोंकी श्रीहरिके प्रति **अनन्यशरणता** भी प्रदर्शित होती है। जैसे सनत्कुमार संहितामें— वर्णाश्रमियोंको 'सदासर्वदा अनन्यशरण, अनन्यसाधन, अनन्यसाधनार्थ और अनन्य-प्रयोजन होना चाहिए। कभी भी दूसरे देवताओंकी पूजा, उनको प्रणाम, स्मरण, दर्शन, स्तुति, निन्दा, उनका उच्छिष्ट भोजन, अवशेष निर्माल्य धारण आदि नहीं करना चाहिए और अवैष्णव लोगोंके साथ सम्भाषण-वन्दनादिका भी त्याग करना चाहिए।

• ३६ पृष्ठपर देखें

शरणस्तथैवावश्यमनन्यसाधनः—न विद्यते श्रीभगवद्धर्मनिष्ठा-वृत्तित्वेनाविरतश्रीगोविन्दपादसेवनपूजनवन्दनसख्यात्मनिवेदनेन तन्नामश्रवणकीर्त्तनस्मरणमननादिकं विनाऽन्यानि नित्यनैमित्तिक-काम्यदैवपैत्रमाङ्गल्यादिकर्म्माणि साधनानि यस्य स तादृशः स्यात्, श्रीभगवद्भजनधर्म्मनैष्ठिकत्वेन नैष्कर्म्म्यवत्त्वात्। अतएवानन्यसाधनार्थश्च (स्यात्), अनन्यसाधनानां महामहिम-भागवतोत्तमानां सम्प्रदायिनामेव,—न तु श्रीसद्गुरुदीक्षारहितदृष्ट-श्रुतछद्मवेशिनां,—सेवाया इत्यर्थः, अर्थो धनादि यस्यास्तीति शेषः अर्थात् **सोऽनन्यशरणसेवीति ज्ञेयम्**। अस्य व्याख्या,—अनन्यशणकृष्णैकतानादिव्यतिरेकेण अन्यशैवशाक्तसौर-गाणपत्यादि**श्रीगोविन्दबहिर्म्मुखानां** केवलातिथ्यभ्यागत-जीवमात्रवृन्दानामन्नजलादिद्रव्यं सहजदेयं विना **सेव्यसेवकवत् सेवा न कार्य्या—श्रीनामापराधभयादिति**। तथाऽनन्यप्रयोजनः स्यादभवेत्,—न विद्यते वर्णाश्रमादियुक्तविषयिवत् श्रीभगवत्-

---

व्याख्या—**श्रीसद्गुरुके निकट श्रीभगवन्नाम-मन्त्रमें दीक्षित वर्णाश्रमी व्यक्ति** निश्चितरूपमें **अनन्यशरण** होंगे—अर्थात् ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर श्रीगोविन्दके अतिरिक्त उनका कोई दूसरा शरण्य या सेव्य नहीं होना चाहिए। 'स्यात्'—पदका सर्वत्र इसी प्रकारसे अन्वय होगा। जैसे अनन्यशरण होना आवश्यक है, उसी प्रकार अनन्य-साधन भी होना चाहिए। श्रीभगवद्धर्ममें निष्ठामयी वृत्तिके कारण नित्य-निरन्तर एकमात्र श्रीगोविन्दके ही पादसेवन, पूजन, वन्दन, सख्य, आत्मनिवेदन आदिके द्वारा श्रीगोविन्दके ही नाम, रूप, गुण, लीलाका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण और मनन आदि करना चाहिए। उन्हें अन्य नित्य-नैमित्तिक-काम्य, दैव, पैत्र, मांगल्यादि कर्मोंका साधन नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्तियोंके साधनको अनन्य-साधन कहते हैं। क्योंकि भक्तिधर्ममें निष्ठावान व्यक्ति नैष्कर्म्यवान् होते हैं। अतः उन्हें अनन्य साधनार्थ भी होना चाहिए

चरणयुगलसेवादिव्यतिरेकेणान्यत् किञ्चित् प्रयोजनं यस्य स श्रीहरिदासत्वात्।

एवंभूतोऽनन्यशरणः कार्ष्णादिरन्यदेवं न पूजयेत्। चकारात् नित्यनैमित्तिककाम्यपितृश्राद्धतर्पणादिकमपि न कुर्य्यात्। कदाचनेत्यस्य सर्व्वत्रान्वयः। तथान्यदेवं न नमेत् न नमस्कुर्य्यात्। अन्यदेवं न स्मरेत् तत्तन्नामधेयेन स्मरणमपि न कुर्य्यात्। चकारात् प्रदक्षिणं च न कुर्य्यात्। न पश्येत् विबुधानां घटादिमूर्त्तीनां दर्शनं न कुर्य्यात्, चकारात् तत्तद्देवतामूर्तिस्पर्शनमपि न कुर्य्यात्। तथा न गायेत् तत्तद्देवतानां गानं न कुर्य्यात्, चकारात् तत्तद्देवतानां कथोपकथनञ्च न कुर्य्यात्। तथा न च निन्देत् तत्तद्देवतानां निन्दां चकारात् तत्तद्वन्दनमपि न कुर्य्यात्। अन्योच्छिष्टञ्च न भूञ्जीत—अन्यदेवतानां निर्म्माल्यं चकारात् तन्निर्म्माल्यपूष्पजला-

---

अर्थात् अनन्य-साधन महामहिम सम्प्रदायी उत्तम भागवतोंकी सेवाके लिए ही (किन्तु सद्गुरुके निकट दीक्षा-रहित अथच अनुकरणकारी कपट भक्तोंके लिए नहीं) जिनका धन आदि है वैसा **अनन्यशरणसेवी** होना चाहिए। इसकी व्याख्या इस प्रकार है कि—अनन्यशरण कृष्णैकतान् व्यतीत दूसरे शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि भगवद्‌बहिर्मुख अतिथि-अभ्यागत आदि जीवोंको अनायास रूपमें देय अन्न-जल आदि द्रव्य दानके अतिरिक्त **सेव्य-सेवकभावसे प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करना कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेसे नामापराध होनेकी सम्भावना होती है।** उसी प्रकार अनन्य प्रयोजन होना चाहिए। हरिदास होनेके कारण श्रीभगवान्‌के चरणयुगलकी सेवाके अतिरिक्त वर्णाश्रमादियुक्त विषयीकी भाँति जिनका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है—ऐसा होना चाहिए।

इस प्रकार अनन्यशरण कृष्णभक्त अन्य देवताओंकी पूजा नित्य, नैमित्तिक, काम्य, पितृश्राद्ध, तर्पणादि कर्म भी नहीं करेंगे। 'कदाच' इस

दीनां ग्रहणभोजनादीनि न कुर्य्यात्। तथान्यशेषं च न धारयेत्, अन्यदेवतानिर्म्माल्यपुष्पमाल्यवस्त्रगन्धचन्दनादिधारणं न कुर्य्यात्। चकारात् श्रीकार्ष्णादीनां प्रसादपुष्पमाल्यचन्दनादि-व्यतिरेकेणापरशैवशाक्तसौरगाणपत्यादीनां वर्णादीनां श्रीभगवद्-बहिर्म्मुखानां दत्तापादीनां वा तेषां प्रसादीयपुष्पमाल्यगन्ध-चन्दनवस्त्रादीनां धारणं न कुर्य्यात्। पूर्व्वावस्थायां शैवशाक्तसौरगाणपत्यादि बहिर्म्मुखव्यवहारव्यवसायत्वेन यान्युपार्ज्जितानि द्रव्यानि, पश्चात्, श्रीसद्गुरुश्रीगोविन्द-नाममन्त्रदीक्षितो भवन् पूनर्ज्जन्मसंस्कारशुद्धाशयत्वेन तेषां श्रीगोविन्दकार्ष्णादिसेवानिमित्तं विना गार्हस्थ्य-संग्रहीतत्वेन धारणं नो कुर्य्यादित्यर्थः, तद्द्रव्यं श्रीकृष्णकार्ष्णादिसम्बन्धे अपरत्वात् (अर्पितत्वात्)। तथा चावैष्णवानां श्रीभगवद्बहिर्म्मुखानां वर्णाश्रमादिशैवशाक्तसौरगाणपत्यादीनां सम्भाषा सन्तोषा-

---

पदका सर्वत्र ही अन्वय है, ऐसा समझना चाहिए। उसी प्रकार अन्य देवताओंको नमस्कार भी नहीं करना चाहिए । अन्य देवताओंका नाम ग्रहणपूर्वक स्मरण भी नहीं करेंगे। अन्य देवता आदिकी घटमूर्त्तिका दर्शन और स्पर्शन भी न करेंगे। 'च' कारके द्वारा अन्य देवताओंकी प्रदक्षिणा भी न करेंगे । अन्य देवता सम्बन्धित गीत एवं कथोपकथन भी नहीं करेंगे। अन्य देवताओंकी निन्दा तथा वन्दना भी नहीं करना चाहिए। दूसरे देवताओंका उच्छिष्ट भोजन भी नहीं करना चाहिए। अन्य देवताओंका निर्माल्य—निवेदित पुष्प-जल आदि ग्रहण और भक्षण भी नहीं करना चाहिए। इस प्रकार दूसरे देवताओंका उच्छिष्ट तथा अवशेष अर्थात् अन्य देवताओंका निर्माल्य, पुष्पमाल्य, गन्ध, वस्त्र इत्यादि भी धारण नहीं करना चाहिए। 'च' कारके द्वारा श्रीकार्ष्णजनोंका प्रसाद, पुष्प, माल्य, चन्दन आदिके अतिरिक्त भगवद्विमुख दूसरे शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि वर्णाश्रमी लोगोंके द्वारा प्रदत्त जल आदि या प्रसादी-पुष्प, माला, गन्ध,

भाष्यत्वेन सम्मेलनं तेषां वन्दनं नमस्कारं स्तुतिञ्च,—आदिपदेन तत्स्पर्श सहोपवेशनभोजनादिकं, भोजन-पानार्थं तदन्नजलादिकञ्च सर्वमेतद्विवर्ज्जयेत्, अतिविशेषयत्नतः परित्यजेदित्यन्वयः।

अन्यदेवार्च्चने अवैष्णवानामप्यपराधः

नन्वनन्यशरण-कार्ष्णवैष्णवादीनामित्युपलक्षणं, **श्रीविष्णु-नाममन्त्राऽदीक्षित-ब्राह्मणानामप्यन्यदेवार्च्चने महान् दोषः**। तथाह श्रीनारदपुराणे, यथा—

ब्राह्मणोऽपि मुनिर्ज्ञानी देवमन्यं न पूजयेत्।
मोहेन कुरुते यस्तु सद्यश्चाण्डालतां व्रजेत्।।
सदान्यदेवताभक्तिर्ब्राह्मणानां गरीयसी।
विदूरयति विप्रत्वं चाण्डालत्वं प्रयच्छति।।

चन्दन, वस्त्र इत्यादि भी धारण नहीं करना चाहिए। अथवा पूर्वोक्त शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य प्रभृति बहिर्मुख लोगोंकी भाँति प्रचेष्टासे उपार्जित द्रव्योंका उपयोग भी नहीं करना चाहिए अर्थात् सद्गुरुके निकट श्रीगोविन्दके नाम-मन्त्रमें दीक्षित होकर पुनर्जन्म और संस्कारके द्वारा चित्तशुद्ध होने पर श्रीकृष्ण और कार्ष्ण आदिकी सेवाके उद्देश्यके अतिरिक्त गृहस्थ धर्मावलम्बी भक्तोंको उनका उपयोग नहीं करना चाहिए; क्योंकि वे द्रव्य-समूह कृष्ण और कृष्ण-भक्तोंके सम्बन्धी नहीं होनेसे 'अन्य' हैं। उसी प्रकार अवैष्णव (भगवद्विमुख) वर्णाश्रमी शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदिके साथ सम्भाषण अर्थात् कर्त्तव्यके लिए उनको आदरपूर्वक बुलाकर सम्मेलन, वन्दन, नमस्कार, स्तुति आदि भी नहीं करनी चाहिए। 'आदि' पदसे उनका स्पर्श, उनके साथमें उठना-बैठना, भोजन-पानके लिए अन्न-जल आदि—सभी विषयोंका सम्पूर्णरूपमें त्याग करना चाहिए।

(दूसरे-दूसरे देवताओंका अर्चन करने पर अवैष्णवोंके लिए भी अपराध होता है।)—यहाँ 'अनन्य-शरण कार्ष्ण' 'वैष्णव' आदि पद—उपलक्षणमात्र हैं। **श्रीविष्णुनाम-मन्त्रमें अदीक्षित ब्राह्मण आदि वर्णाश्रमीको**

ब्राह्मणो गायत्रीज्ञः,—ब्रह्म गायत्री श्रीमन्नारदोपदिष्टा— महाभागो तत्त्वज्ञत्वेन, अपि निश्चितं, श्रीविष्णुज्ञाता भवति। तस्माद्धि वैष्णवो विष्णुः कलेर्मध्ये विशेषत इति प्रमाणश्रवणेन श्रीविष्णुवैष्णवयोरभिन्नत्वात्—**ब्राह्मण एव आदिवैष्णवः**। तत्रापि मुनिः मननशीलः सदसद्विवेकवान्, ज्ञानी आहारभयमैथुन-निद्राद्यसज्ज्ञानव्यतिरेकेण सद्विशिष्टज्ञानः एवं विशिष्टो ब्राह्मणोऽन्यं देवं देवतामात्रं न पूजयेत्। स च यदि मोहेन कर्मवशभ्रष्टज्ञानेन कुरुते तदा पुनश्चाण्डालतां व्रजेत्। अयमर्थः,—पञ्चत्वे सति तस्य पुनरावर्त्तनं यद्भवेत तत् किं वक्तव्यं—**इदानीं साक्षाद्ब्राह्मणाचारभ्रष्टत्वात् चाण्डालवद्भवति**। अतः कारणादन्यदेवताभक्तिः केवलश्रीपरमभागवतगायत्र्युपासना-

---

भी अन्यान्य देवताओंका अर्चन करना महापराध है। इस विषयमें नारदपुराणमें उल्लेख है—मुनि और ज्ञानी ब्राह्मण अन्य देवताओंकी पूजा नहीं करेंगे। जो मोहवशतः ऐसा करते हैं, वे तत्क्षणात् चाण्डालत्वको प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंके प्रति भक्ति रहनेसे ब्राह्मणोंका विप्रत्व नष्ट हो जाता है तथा उनका चाण्डालत्व उपस्थित होता है।

ब्राह्मण अर्थात् गायत्रीज्ञ; यहाँ 'ब्रह्म' का तात्पर्य गायत्रीसे है, जो नारद ऋषिके द्वारा उपदिष्ट है। महाभाग्यवान् ब्राह्मण तत्त्वज्ञ होनेके कारण निश्चित रूपमें ही विष्णुतत्त्वका ज्ञाता होता है। अतः विष्णु-तत्त्वज्ञ होनेके कारण विशेषतः कलिकालमें वैष्णव 'विष्णु' ही हैं। इस प्रमाणके अनुसार विष्णु वैष्णवोंका अभेद दृष्टिगोचर होनेके कारण **ब्राह्मण ही आदि वैष्णव हैं**। इसपर भी 'मुनि' अर्थात् मननशील सत् असत् विचार-परायण एवं 'ज्ञानी' अर्थात् आहार, भय, मैथुन, निद्रादि असत्-ज्ञान-रहित, विशिष्ट सज्ज्ञानी (वास्तविक ज्ञानी) हैं। इस प्रकार वैशिष्ट्ययुक्त ब्राह्मण अन्य देवतामात्रकी पूजा नहीं करेंगे। वे यदि मोहवशतः अर्थात् कर्मवश भ्रष्टज्ञान हेतु ऐसा करते हैं, तो पुनः चाण्डालत्वको प्राप्त होते हैं।

व्यतिरेकेण अन्यदेवतासेवा तद्वृत्तिर्वा ब्राह्मणानां गरीयसी गरिष्ठा अभिनन्दिता (अपि) एषां विप्रत्वं ब्रह्मत्वं विदूरयति विनाशयति, चाण्डालत्वं प्रयच्छति प्रकर्षेण ददातीत्यर्थः।

ननु ब्राह्मणस्येत्युपलक्षणं,—**वर्णाश्रमादीनां सर्व्वेषां विष्णुं विहायान्यदेवतार्च्चने महान् दोषः**। तत्राह स्कान्दे ब्रह्मनारदसंवादे, यथा—

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते।
त्यक्त्वामृतं स मूढ़ात्मा भुङ्क्ते हालाहलं विषम्।।

यः कश्चिन्मनुष्यमात्रो वर्णाश्रमादिर्वासुदेवमित्यनेन श्रीजगदीश्वरत्वेन परम्पदाख्यधामस्थायिनं विहायान्यदेवं देवतामात्रमुपासत (इत्यार्षमुपास्त इत्यर्थः) सेवनीयत्वेनोपासनां कुरुते सोऽमृतं त्यक्त्वा हालाहलं कालकुटं विषं भुङ्क्ते। यतो मूढ़ात्मा अतिशयाज्ञतमत्वेनाव्यसितचित्तः। अयं भावः—

इसका तात्पर्य यह है कि मृत्युके पश्चात् उनका जो पुनरागमन होता है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। **वर्तमान अवस्थामें भी ब्राह्मणोचित आचारसे भ्रष्ट हो जानेके कारण साक्षात् चाण्डालके सदृश हो जाते हैं**। इसलिए अन्य देवताओंके प्रति भक्ति अर्थात् परमभगवती गायत्री उपासनाके अतिरिक्त अन्य दूसरे-दूसरे देवताओंकी सेवा और वैसी वृत्ति गरीयसी अर्थात् अत्यन्त प्रशंसनीय होने पर भी वह ब्राह्मणोंके ब्राह्मणत्वको विदूरित करती है तथा सर्वतोभावेन चाण्डालत्व प्रदान किया करती है।

यह कथन ब्राह्मणके सम्बन्धमें उपलक्षणमात्र है, अर्थात् ब्राह्मण कहनेसे वर्णाश्रमी सभीके लिए विष्णुकी सेवाके अतिरिक्त अन्य देवताओंका अर्चन करनेसे महापराध होता है। इस विषयमें स्कन्दपुराणके ब्रह्म-नारद संवादमें ऐसा कहा गया है,—जो लोग श्रीवासुदेवको छोड़कर दूसरे-दूसरे देवताओंकी उपासना करते हैं, वे मूढ़ात्मा अमृत त्यागकर हलाहल विषका पान करते हैं। कोई भी वर्णाश्रमी व्यक्ति परमधाममें

श्रीवासुदेवबहिर्म्मुखत्वेन यो मूढ़ात्मा सोऽमृतं संसृतिबन्धन-विनाशकारकत्वेन मोक्षस्वरूपं श्रीमद्वासुदेवभजनं त्यक्त्वा हालाहलमवश्यातिनिश्चयविनाशित्वेन विषतुल्यं महाघोरतमं संसारबद्धता-चतुरशीतिलक्षयोनिभ्रमण-विविधयातना-कर्म्मभोगं करोति,—'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभमि'त्यादि-वचनप्रमाणात् ।

तथा श्रीमहाभारते हरिवंशे, यथा—

यस्तु विष्णुं परित्यज्य मोहादन्यमुपासते ।
स हेमराशिमुत्सृज्य पांशुराशिं जिघृक्षति ।।

मोहात् श्रीविष्णुमायाभ्रान्तत्वात्, यस्तु इत्यनेन यः कोऽपि नरमात्रः, विष्णुं सर्वव्यापिनं श्रीजगदीश्वरं, परित्यज्य अनन्यशरणाचरणेष्टसेव्यत्वेन त्यक्त्वा, अन्यं देवोपदेवादिकं उपासत (उपास्ते) इष्टत्वेनाथवा काम्यकर्मादिफलदातृत्वेन सेवते,

---

श्रीजगदीश्वर-स्वरूपमें विराजमान श्रीवासुदेवको परित्याग करने पर हलाहल विषका भक्षण करता है। उसका कारण यह है कि वह मूढ़ात्मा अर्थात् अतिशय मूर्ख व्यक्ति अस्थिर चित्तवाला है। भावार्थ—यह है कि श्रीवासुदेवसे विमुख होनेके कारण जो अतिशय मूढ़ है। अमृत अर्थात् संसारबन्धनको दूरकर अपनी सेवामृत-रूप मोक्षको देनेवाले श्रीवासुदेवका भजन जो परित्याग करता है, वह सुनिश्चित रूपमें विनाशकारी कालकूट विषके समान महाघोरतम संसार-बन्धन रूप चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमण करता हुआ विविध यातनाओंका भोग करता है। अपने द्वारा कृत शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना होता है—इत्यादि शास्त्र-वचन यहाँ पर प्रमाण हैं।

श्रीमहाभारतके हरिवंशमें भी ऐसा कहा गया है—'जो व्यक्ति मोहवशतः विष्णुको परित्यागकर अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे स्वर्ण-राशिका परित्यागकर धूलिराशिको ग्रहण करनेकी इच्छा रखते हैं'।

स हेमराशिं-कनकसमूहमुत्सृज्य पांशुराशिं धूलीनां प्राचुर्यं जिघृक्षति ग्रहीतुमिच्छति। यद्वा यस्त्विति—अनेकजन्म गोविन्दभजनप्रतापात् य इह मनुष्यजन्म पुनः प्राप्य श्रीसद्-गुरूपदिष्ट श्रीभगवन्नाममन्त्रोऽनन्यो भवन् अन्यविविधविबुधवृन्दं परित्यज्य कायवाङ्मनोभिर्दूरीकृत्य **केवलैकं** श्रीमद्विष्णुमुपासते स्वामिव्रतत्वेन भजते पांशुराशिं अपरिमितधूलिवत् (१) विविधयोनिभ्रमणगतागति—जन्ममरणसंसारबन्धनपद्धति-मुत्सृज्य सर्वतोभावेनत्यक्त्वा हेमराशिं कनकनिधिप्राप्तिवत् **श्रीगोविन्दनिजदासपदवीं** जिघृक्षति प्राप्नोति—धातुनाम-नेकार्थत्वादिति प्रामाण्यात् (२)। **अतएव** श्रीगोविन्दैकतान-भक्तानां सदसद्विचारकत्वेन सर्व्वकर्म्मसु श्रीभगवद्धर्म्मोक्त-सद्ग्रहणमपरसकलपरित्यागः।

मोहवशतः अर्थात् विष्णुमायासे भ्रान्त होनेके कारण कोई **भी मनुष्य** सर्वव्यापी जगदीश्वर श्रीविष्णुको परित्यागकर अर्थात् अनन्य शरणागत जनोंके आचरणके अनुयायी इष्ट—सेव्य-रूपमें ग्रहण नहीं कर अपनी सांसारिक कामना-वासनाओंके फलदाता रूपमें अन्य देवता और उपदेवताओंकी पूजा करनेपर, वह कनक-राशिको परित्यागकर धूलि-राशि ग्रहण करनेकी इच्छा रखता है, अथवा दूसरी व्याख्या—अनेक जन्मोंके गोविन्द-भजनके प्रभावसे जो व्यक्ति संसारमें पुनः मनुष्यजन्म लाभकर सद्गुरुके निकट श्रीहरिनाम-मन्त्र ग्रहणपूर्वक अनन्य-शरण होकर

---

(१) धूलिनामपरिमितवत्

(२) तथा श्रीभागवते (११/५/२-३)—

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्।।
य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानादभ्रष्टाः पतन्त्यधः।।

सच्छब्दविवेकः

एतस्मिन् प्रस्तावे श्रीभगवान् अर्जुनं प्रति सत्**शब्दस्यार्थं** श्लोकद्वयेनाह, यथा श्रीमद्भगवत्गीतायां (१७/२६,२७)—

सद्भावे साधुभावे च **सदि**त्येतत् प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा **सच्छब्द**: पार्थ युज्यते।।

(क) **सद्भावे** सता सत्त्वगुणेन भावो जन्म यस्य स तस्मिन्

अन्यान्य देवताओंको तन, मन और वचन सब प्रकारसे परित्यागकर पतिनिष्ठ रूपमें एकमात्र विष्णुकी उपासना करते हैं, वे विविध-योनि आवागमन—जन्ममरण, संसार बन्धन-प्रवाहको अपरिमित धूलि-राशिकी भाँति सब प्रकारसे त्यागकर सुवर्ण-निधि प्राप्तिकी भाँति श्रीगोविन्दके दासकी पदवीको प्राप्त करते हैं। एक धातुके अनेक अर्थ होते हैं—इस वचनके प्रमाणसे 'जिघृक्षति'—पदका अर्थ 'प्राप्ति' लगाया गया है।

[श्रीमद्भागवत (४/५/२-३) में ऐसा कहा गया है कि विराट् पुरुषके मुख, बाहु, उरु और पदसे सत्त्वादि गुण और ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमोंके साथ यथाक्रमसे ब्राह्मण आदि चारोंवर्ण उत्पन्न हुए हैं, इनमेंसे जो साक्षात् अपने पिता ईश्वरका भजन नहीं करते, परन्तु उनकी अवज्ञा किया करते हैं, वे अपने-अपने स्थानोंसे भ्रष्ट होकर अधः पतित हो जाते हैं]।

इसलिए एकनिष्ठ गोविन्द-भक्तोंके लिए सत्-असद् विचारमें परायण होनेके कारण उन्हें श्रीभगवद्धर्ममें उपदिष्ट **'सत्' को ग्रहण** करना चाहिए।

(सत् शब्दका विचार)—इस प्रसंगमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको दो

नारदपञ्चरात्रे (२/७/३७)—

चतुर्णामपि वर्णानां गुरुकृष्णार्च्चनं परम्।

श्रीचैतन्यचरितामृते—

चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वकर्म करितेओ से रौरवे पड़ि' मजे।।

श्रीगोविन्दभक्तविबुधे गायत्रीपूतभूसुरे च; तथा सता शुद्धसत्त्वेन भावः आविर्भावः स्वरूपप्रभवो यस्य यस्माद्वा स तस्मिन् श्रीमद्**विराड्युपनारायणे च द्विविधावतारे**; एवं सरसत्वेन सति भावः—परंपदाख्यं वैकुण्ठधाम सत्, तस्मिन् सतत-स्थायित्वेनाविर्भावो यस्य स तस्मिन् **श्रीमन्नारायणाख्यवासुदेवे**; अपरञ्च सता अतिविशुद्धसत्त्वत्वेन भावः स्वाणिमादिविविध-सुखविभव-नामगुणकर्म्मलीलादि-स्वेच्छामय प्राकट्यं यस्य स तस्मिन् **श्रीमत्कृष्णे** तद्धाम्नि श्रीमद्वृन्दावने च; तथा सतां कार्ष्णादीनां—पित्रुपात्तभौतिकदेहजन्म शौक्रं पूर्वार्ज्जित-संस्कारतः—अस्मादन्यो भावः श्रीभगवन्नाममन्त्रोपदेश-तत्तद्धर्म्मशास्त्रादिशिक्षादितोऽत्यन्ताश्चर्यं पुनर्जन्म यस्मात् स तस्मिन् **श्रीगुरो**। तथा (ख) **साधुभावे** च साधूनां श्रीमत्—

श्लोकोंमें (गीता १७/२६-२७) 'सत्' शब्दका उपदेश करते हैं। हे पार्थ! सद्भावमें और साधुभावमें 'सत्'-इस शब्दका प्रयोग होता है। उसी प्रकार प्रशस्त कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग हुआ करता है।

(क) **सद्भावमें 'सत्' शब्दका प्रयोग**—सत् अर्थात् सत्त्व गुणके द्वारा भाव या जन्म है जिनका, वे श्रीगोविन्द-भक्त देवता एवं गायत्री द्वारा पवित्र ब्राह्मणमें तथा सत् या विशुद्ध भाव अर्थात् आविर्भाव अर्थात् विशुद्ध रूपमें जिनका स्वरूप प्रकाशित है, **उन श्रीविराट् और द्विविध नारायणके अवतारोंमें**। इस प्रकार सरसत्व हेतु सत्में भाव है जिसका, वह परमपदाख्य वैकुण्ठधाम ही सत् है, उस वैकुण्ठधाम रूप सत्में नित्य विराजमान रूप आविर्भाव है जिनका, **उन श्रीनारायण नाम धारण करनेवाले श्रीवासुदेवमें** 'सत्' शब्दका प्रयोग संगत होता है। और भी सत् अर्थात् अति विशुद्ध-सत्त्वमयताके कारण भाव अर्थात् अपनी अणिमादि विविध सुख-वैभव, नाम, गुण, कर्म लीला आदिके सहित स्वेच्छामय प्राकट्य है जिनका, **उन श्रीकृष्ण और तदीय धाम वृन्दावनमें**;

कृष्णैकतानादीनामनन्यभक्तानां भावः परमोत्कृष्टः—स्वभावोऽतिशयमनोनैर्म्मल्यं यस्मात् स तस्मिन् **श्रीभगवन्नाममन्त्रगुण कर्मलीलादौ**, तथा **श्रीभगवद्धर्मोक्त**श्रुतिस्मृतिपुराणोपपुराणागम-सिद्धान्तपञ्चरात्र **शास्त्रादौ च** तथा **साधूसङ्गादौ च**, तथा श्रवणादिसकल **भक्तिविषये तदङ्गे च**। सदित्येतत्, रजस्तमोगुणव्यतिरेकेण केवलशुद्धसत्त्व-परसत्त्व-विशुद्धोसत्त्वतो नित्यत्वात सत्यत्वाच्च देवब्राह्मणादिष्वेतेषु श्रीभगवदाश्रयपरेषु वस्तुष्वपि प्रकर्षेण युज्यते वर्त्तते—तेषु तात्पर्यात्। तथा (ग)

और भी सत् या कार्ष्ण आदिके पूर्वार्जित संस्कारके वश माता-पिताके निकट प्राप्त भौतिक देह लाभरूप शौक्र जन्मसे भिन्न भाव अर्थात् भगवन्नाममन्त्र उपदेश तथा उन धर्मशास्त्र आदि शिक्षाके प्रभावसे अत्यन्त आश्चर्यजनक पुनर्जन्म जिससे होता है, **उन श्रीगुरुदेवमें** भी सत् शब्दका प्रयोग होता है।

(ख) **साधुभावमें 'सत् शब्दका प्रयोग**—साधुजनोंके अर्थात् कृष्णैकनिष्ठ अनन्य भक्तजनोंके भाव अर्थात् परमोत्कृष्ट स्वभाव—मनकी अतिशय निर्मलता जिनसे होती है, वे **श्रीभगवन्नाम-मन्त्र, गुण, कर्म, लीला आदि** उसीप्रकार श्रीभगवद्धर्मोक्त श्रुति, स्मृति, पुराणोपपुराण, आगम, सिद्धान्त, पञ्चरात्र **शास्त्र आदि, साधुसंग आदि** श्रवण आदि समस्त भक्ति-विषय और भक्ति अंगोंमें, रजस्तमोगुण-रहित केवल शुद्ध-सत्त्व, परमसत्त्व, विशुद्ध-सत्त्वमय वस्तुके नित्यत्व एवं सत्यत्त्वके हेतु उपयुक्त सभी विषयोंमें श्रीभगवत्पदाश्रय करनेवाले देवता-ब्राह्मण आदि एवं वस्तुओंमें 'सत्'—यह पद प्रकृष्ट रूपसे प्रयुक्त होता है, क्योंकि इन सभी विषयोंमें भी सत् शब्दका तात्पर्य होता है।

उसी प्रकारसे—(ग) प्रशस्तकर्मोंमें अर्थात् श्रीगोविन्द-विमुख-कर्तृ-विरहित, परम मंगलातिमंगलरूप **सात्त्विक कार्योंमें**, शास्त्रोंमें लिखे गये विधानोंके अनुरूप सभी **भगवत्सेवा आदि कार्योंमें**, श्रीगुरु, वैष्णव, कार्ष्ण, ब्राह्मण आदिकी विधिमत सर्वविध सेवाओंमें, श्रीगोविन्दके यात्रा, महोत्सव,

प्रशस्ते कर्म्मणि श्रीगोविन्दबहिर्मुख-कर्त्तृव्यतिरेकेण परम-मङ्गलातिमङ्ले **सात्त्विक-कर्म्मणि**, यथाविधानोक्तयावत्-श्रीभगवत्सकलसेवादौ, तथा श्रीगुरुवैष्णवकार्ष्णब्राह्मणादीनां विधिवत् **सर्व्वसेवने**, तथा श्रीमद्गोविन्दस्य सकल **यात्रामहोत्सव-नामकीर्त्तनसंकीर्त्तनादौ च**। हे पार्थ! अर्जुन! एतेषु अपर **श्रीभगवत्कृष्णकार्ष्णादि-सकलकर्म्मसु सच्छब्दः** युज्यते सङ्गत इत्यर्थः।

किञ्च (१७/२७)—

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधियते॥

यज्ञे (घ) **श्रीविष्णुयज्ञे** ब्राह्ममुहूर्त्ते मङ्गलवन्दनादि-शयन-पुष्पाञ्जलिकृत्यपर्यन्ते श्रवणादिभक्तिपूर्व्वके श्रीभगवत्-सकलसेवनकर्म्मणि; तथा (ङ) **तपसि** नित्यनैमित्तिककाम्या-

---

नामकीर्त्तन, संकीर्त्तन आदि सभी विषयोंमें एवं भगवान् श्रीकृष्ण और कार्ष्णोंके लिए सब प्रकारके कार्योंमें, हे पार्थ ! सत् शब्दका प्रयोग है। और भी "**यज्ञ, तप और दानमें स्थिति** अर्थात् अविचलित रूपमें स्थिति भी सत् शब्दके द्वारा अभिहित होती है। तत्सम्बन्धीय सभी कर्म 'सत्' शब्दके द्वारा अभिहित होते हैं" (गीता-१७/२७)

यज्ञके अर्थमें (घ) **श्रीविष्णु-यज्ञ**—श्रवण आदि भक्तिपूर्वक ब्रह्ममुहूर्तमें मंगल-वन्दनादिसे रात्रिकालमें शयन पुष्पाञ्जलि तक भगवान्‌के सभी सेवाकार्य श्रीविष्णु यज्ञके अन्तर्गत हैं। (ङ) **तपः** अर्थात् नित्य, नैमित्तिक,काम्य आदि कर्मोंका परित्यागकर केवल भगवद्-भजन निष्ठाके अनन्य सेवामय सदाचारोंके अनुष्ठान कार्य। (च) **दान अर्थमें**—भक्ति श्रद्धामें तन, मन और वचनसे यथाशक्ति महाभागवत कार्ष्णके सब प्रकारसे सेवा-कार्य, 'च'-कारके द्वारा—ब्राह्मण आदि सभी जीवोंके प्रति अनुकम्पावशतः अन्न-जलादिके द्वारा यथाशक्ति संतोष विधायक जीव सन्तर्पण कार्य, अथवा

दित्यागेन केवल श्रीभगवद्भजननिष्ठानन्याचाराचरणकर्म्मणि; (च) **दाने** च भक्तिश्रद्धया कायवाङ्मनोभिर्यथाशक्ति श्रीमन्महाभागवतकार्ष्णादिसकलसेवाकर्म्मणि; चकारात् ब्राह्मणादिसर्व्वजीवानुकम्पया यथाशक्त्यन्नजलादिभिः सन्तोषकारकत्वेन जीवसन्तर्पणकर्म्मणि। अथवा यज्ञो विष्णुस्तस्मिन् सेव्यसेवकत्वेन यथाविध्युक्ततदनन्यभजनकर्म्मणि। एतदाश्रया स्थितिश्च (१) तत्तदाचरणकर्त्तृत्वेन निष्ठावस्थितिः—एतदवश्यमेवकर्त्तव्यं नान्यदिति। स्यादिति शब्द एषु यज्ञादिषु तत्स्थितौ चोच्यते कथ्यते, नत्वपरयागयज्ञादिसर्व्वकर्म्मसु, यतस्तत्तद्यागादिकं सकलं कर्म्मासत्। तथा (छ) **तदर्थीयमेव**—तत्तत्यज्ञतपोदानादिनिर्वाहार्थं कायक्लेशोऽङ्गीकृतः, कृषीवलाद्यवेतन भिक्षासेवादिभिः तदर्थं द्रव्योपार्जनादिकं कूपवापीखाततड़ागदीर्घिकारामपुष्पोद्यान-

---

अर्थमें सेवक-सेव्य भावसे शास्त्रोक्त विधानानुसार श्रीविष्णुके भजनका कार्य। इन सबके आश्रयमें स्थिति अर्थात् ऐसा करना अवश्य ही कर्त्तव्य है; अन्य कुछ भी करना कर्त्तव्य नहीं है, इस विचारसे भगवद्भावमें आचरणकारीके रूपमें निष्ठापूर्वक स्थिति ही यज्ञमें स्थिति कहलाती है। 'सत्'—शब्द पूर्वोक्त यज्ञादि तथा उनमें स्थितिके लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु भगवद्भाव-रहित दूसरे याग-यज्ञादि सभी कर्म असत् हैं; इसलिए यहाँ इन सब अनुष्ठानोंके लिए सत् शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है।

उसी प्रकार (छ) **तदर्थीय** अर्थात् उन यज्ञ, तप, दान आदि निर्वाहके लिए अवलम्बित काय-क्लेश, कृषक आदिसे अवैतनिक भिक्षा—सेवा आदिके द्वारा भगवान्‌की सेवाके उद्देश्यसे द्रव्य संग्रह आदि, उसी उद्देश्यसे कूप, तालाब, सरोवर, दीर्घिका, आराम, बाग-बगीचा, पुष्पोद्यान आदि विविध प्रकारके वृक्षोंका आरोपण, मन्दिर आदि कार्य तदर्थीय कर्म हैं।

---

(१) एषु स्थितिराश्रय इत्यर्थः ।

विविधवृक्ष-रोपण-मन्दिरादिकञ्च यत्तदर्थं तत् तदर्थीयंकर्म्म च सकलं विद्वद्भिः सदित्येव निश्चितमभिधीयते सर्वतोभावेन कथ्यते इति नात्र सन्देहः।

अतएव श्रीभगवन्नाममन्त्रोपदिष्टोऽनन्यकार्ष्णादिगृहस्थः सद्भावगृहीतत्वेन सर्व्वकर्म्मसु श्रीभगवत्पूजामात्रं कुर्य्यात्, न देवतापित्रन्तरादीन्। यतः श्रीमद्गोविन्दे पूजिते सति सर्व्वे देवाः पितरश्च पूजिता भवन्ति।

गोविन्दपूजया सर्व्वपूजनं

तत्राह श्रीस्कन्दपुराणे—

अर्च्चिते देवदेवेश अब्जशङ्खगदाधरे।
अर्च्चिताः पितरोदेवा यतः सर्वमयो हरिः।।

देवानां त्रयस्त्रिंशत्कोटिनां अमरावतीश्वरस्तदधिकारी

इन सबके लिए पण्डितजन 'सत्' शब्दका प्रयोग करते हैं। यह सब प्रकारसे निश्चित रूपमें सत्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अतएव भगवान्‌के नाम-मन्त्रमें दीक्षित अनन्य कृष्णभक्त गृहस्थ पूर्वोक्त सद्भावमें गृहीत अर्थात् शुद्धसत्त्वमें पुनर्जन्म प्राप्त होनेके कारण समस्त कर्मोंके द्वारा श्रीभगवत्पूजा करेंगें। अन्यान्य देवताओं तथा पितृ आदिकी पूजा न करेंगें। क्योंकि श्रीगोविन्द पूजित होने पर सभी देवता और पितृगण पूजित हो जाते हैं।

(एकमात्र श्रीगोविन्दकी पूजासे सबकी पूजा)—स्कन्दपुराणमें ऐसा ही कहा गया है—पद्म, शंख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले देवदेवेश सर्वेश्वर भगवान् श्रीगोविन्द अर्चित होने पर देववृन्द और पितृगण अर्चित हो जाते हैं क्योंकि हरि सर्वमय हैं। तैतीस करोड़ देवताओंके अधीश्वर देवराज इन्द्र हैं और उनके भी पूज्य और वन्दनीय देवता 'ब्रह्मा' हैं और उनके भी ईश्वर प्रभु 'श्रीहरि' हैं। इस प्रकार श्रीगोविन्द पितृ-पुरुषोंके भी प्रभु हैं। उन पद्म, शंख, चक्र, गदाधारी

इन्द्रोदेवस्तस्य देवो वन्दनीयो ब्रह्मा तस्यापीशः प्रभुः श्रीहरिः, तथा सर्व्वपितॄणामपि । अतस्तस्मिन्नब्जशङ्खचक्रगदाधरे वासुदेव अर्च्चिते पूजिते सति, देवाः पितरश्चेत्यनेन सर्व्वेषु नित्यनैमित्तिककाम्यमाङ्गल्यादिकर्म्मसु देवाः पितरश्च प्रत्यवायपरिहारार्थं पूज्याः, सर्व्वे त अर्च्चिताः भवन्ति। यतः सर्व्वमयः सकलदेवतापित्रादीनां मूलं सर्व्वेश्वरत्वात्, अतएव श्रीहरिरनन्यनिजसेवकानामाध्यात्मिकादितापत्रयहर्त्तेति।

ननु कलियुगे श्रीहरिनामकीर्त्तनपूजादिपरायणवर्णादयो लोकयात्रानित्यादिकर्म्माकरणत्वेनापि सम्पूर्णकर्म्मकर्त्तारो भवन्तीत्यत्राह बृहन्नारदीये—

हरिनामपरा ये च हरिकीर्त्तनतत्पराः।
हरिपूजापरा ये च ते कृतार्थाः कलौयुगे।।

ये च श्रीसद्गुरुश्रीभगवन्नामग्रहणसत्सङ्गश्रीभगवद्धर्म्म-

श्रीवासुदेवकी पूजा होने पर देवतावृन्द पितृगण (नित्य-नैमित्तिक-काम्य-मांगल्यादि प्रत्यवायको दूर करनेके लिए देवताओं और पितृ-पुरुषोंकी जो पूजा की जाती है) आदि सभीकी पूजा करनी हो जाती है; क्योंकि श्रीहरि अपने अनन्यशरण सेवकोंके त्रितापको हरण करनेवाले हैं। श्रीभगवान् सर्वमय अर्थात् सर्वेश्वर होनेके कारण देव और पितृ पुरुषोंके भी मूल हैं।

कलियुगमें श्रीहरिनाम-संकीर्त्तन और पूजा आदि परायण वर्णाश्रमी आदि व्यक्ति लोकयात्रा-नित्यादि कर्मोंके अकरणमें भी सर्वकर्मोंके अनुष्ठाता हुआ करते हैं। इस विषयमें बृहन्नारदीय पुराणमें कहा गया है—'जो लोग हरिनाम परायण, संकीर्त्तनमें तत्पर और भगवत्पूजा परायण होते हैं, वे कलियुयगमें कृतार्थ हैं'। जिन्होंने श्रीसद्गुरुसे श्रीभगवन्नाम-मन्त्र ग्रहण किया है, सत्संग और भगवद्धर्मकी शिक्षा ग्रहणकर अत्यन्त निर्मल चित्त होकर तन, मन और वचनसे **केवल श्रीहरिनाम कीर्त्तन आदिमें संलग्न रहते हैं**, उनका जीवन सफल है; यही भावार्थ है। **हरिकीर्त्तनमें तत्पर**

शिक्षातिशयशुद्धाशयत्वेन कायवाङ्मनोभिः **केवलश्रीहरिनामपरा** इत्ययं भावः **श्रीहरिकीर्त्तनतत्परत्वेन** श्रीहरिनामगुणकर्मलीलादि-स्मरणानुमोदनमननश्रवण सङ्कीर्त्तनमहोत्सव श्रीभागवत-श्रीभगवद्गीता-श्रीकृष्णोपनिषद् श्रीनारायणोपनिषदाद्यपर-श्रीभगवद्धर्म्मोक्तवेदागमपुराणोपपुराणस्मृतिभारताद्यपर-वैष्णव-शास्त्रपाठतच्छ्रवणतत्तत्पक्षानुसारविचार-सत्कर्म्मकरणव्यतिरेकेण संसारबन्धसकलकर्म्मकर्त्तृत्वेनावश्यमेव रहिताः; तथा **हरिपूजापरा** पितृ-देवाद्यर्च्चनसर्व्वकर्म्मादिकमृते केवलश्रीहरिपूजायां पराः एकान्तभजनतत्पराः, चकारात् श्रीकृष्णैकतानादिसेवापूर्व्वक-जीवदयासर्वप्राणिसन्तर्पणरताः, एवंविशिष्टा ये जनाः संसृतावपि स्थिताः सन्तः, कलौयुग इत्यनेनायं भावार्थः,—सत्यत्रेताद्वापरयुगे

रहनेके कारण श्रीहरिका नाम, रूप, गुण, कर्म, लीला इत्यादिका स्मरण, अनुमोदन, भजन, श्रवण, संकीर्त्तन, महोत्सव, श्रीमद्‌भागवत, श्रीभगवद्गीता, श्रीकृष्णोपनिषद्, श्रीनारायणोपनिषद् आदि एवं श्रीभगवद्धर्मोक्त दूसरे वेद, आगम, पुराण, उपपुराण, स्मृति, भारत और अन्यान्य वैष्णव-शास्त्रोंका श्रवण और उन सबके पक्षानुसारी विचारसे उन-उन कर्मोंके अनुष्ठानके अतिरिक्त संसार बन्धनके हेतुभूत सब प्रकारके कर्मोंके कर्तृत्वसे सर्वथा रहित होकर **श्रीहरिपूजा-परायण**—पितृ और देवताओंकी पूजा आदि सभी कर्मोंको छोड़कर केवल हरिके एकान्त भजनमें तत्पर; 'च'—कारके द्वारा केवलमात्र श्रीकृष्णके शरणागत होकर श्रीकृष्णके अनन्य–भक्तोंकी सेवापूर्वक जीव दया हेतु समस्त प्राणियोंको संतुष्ट करनेमें निरत होकर—ऐसा भी समझना चाहिए। इस प्रकार विशेष गुणोंसे युक्त व्यक्तिओंका संसारमें स्थित होकर भी कलियुगमें सफल जीवन है। इसका भावार्थ यह है कि सत्य, त्रेता, द्वापर युगमें तप-यज्ञ-अर्चन दान आदि विविध प्रकारसे भगवदुपासना करके दीर्घकालमें लोगोंका मनोरथ पूर्ण होता है। श्रीगोविन्द सम्बन्धीय यज्ञ, दान, व्रत, कूप, वापी, तड़ाग, दीर्घिका, बाग-बगीचा, विविध

तु तपोयज्ञार्च्चनदानादिभिर्विविधश्रीभगवद्भजनप्रकारैः श्रीभगवदुपासनां कुर्व्वन्तोऽनेककालेन सम्पूर्णार्था भवन्ति लोकाः, इह कलियुगे तु श्रीमद्गोविन्दसम्बन्धीयतया यज्ञव्रतदान-कूपवापीतड़ागखातारामविविधपुष्पोद्यानसेतुबन्धनोत्तममन्दिर-निर्माणद्वादशमासीययात्रामहोत्सवस्रवद्रससंयुतान्नजलापूप-पायसविविधवस्त्रालङ्कारसुगन्धिपुष्पगन्धमलयजागुरुकर्पूर-ताम्बूलधूपदीपवन्दापनीयशङ्खघण्टादिनानावाद्यप्रातःसायं-सङ्कीर्त्तनादिभिः प्रत्यहं श्रीभगवत्-सेवायां यद्भवति तद्ब्रह्मादी-नामप्यगोचरसुखकृत्यम्। एतन्निष्ठास्तु ये नित्यादिसकलं कर्मविहाय केवलानन्यशरणत्वात् श्रीहरिनामतत्कीर्त्तन-तत्पूजापरायणा भवन्ति ते कृतार्था **सेवानामापराधरहितता**विरत श्रीहरिनामस्मरणतत्पूजानिष्ठावृत्तित्वेन कृतो नित्यनैमित्तिका-द्यपरसर्व्वकर्म्मसमस्तदेवता-पितृपूजायागयज्ञदानव्रतादिकोऽर्थः प्रयोजनं येषां तादृश्या भवन्ति। ते अवश्यमेव भवबन्धनरज्जुतो मुक्ता भवन्तीत्यर्थः।

पुष्पोद्यान, सेतुबन्धन, उत्तम मन्दिर निर्माण, द्वादश महीनोंमें होनेवाले यात्रा-महोत्सव, रस प्रवाहयुक्त अन्न, जल, मालपूआ, खीर अर्पण, विविध प्रकारके अलंकार, सुगन्धित पुष्प, गन्ध, मलयज चन्दन, अगुरु, कर्पूर, ताम्बूल, धूप, दीप, वन्दनीय शंख-घंटा आदि नानाप्रकारके वाद्योंके सहित प्रातः और संध्या संकीर्त्तन आदिके द्वारा प्रतिदिन भगवत्सेवा आदि जो सब अनुष्ठित और सम्पन्न होते हैं, वे समस्त कार्य ब्रह्मा आदिके लिए भी अगोचर एवं आनन्दमय हैं। ऐसे भजननिष्ठ ऐकान्तिक भक्त अनन्य शरणागत होनेके कारण नित्य-नैमित्तिक आदि सभी कर्मोंका वर्जनकर केवल श्रीहरिके नाम-संकीर्त्तन और पूजापरायण होकर कृतार्थ हो जाते हैं। अर्थात् **सेवा** और **नामापराधसे रहित होकर** नित्य-निरन्तर श्रीहरिका

तथा पाद्मे श्रीदुर्गां प्रति सदाशिववाक्यं—

घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्व्वधर्म्मविवर्ज्जिताः।
वासुदेवपरा मर्त्त्यास्ते कृतार्था न संशयः।।

घोरे महाभयङ्करे सामान्यतः, अथवा संसाररज्जु-बन्धनानिवार्यजालसङ्कटसङ्कुले, एवम्भूते कलियुगे प्राप्ते, द्वापरशेषकलियुगप्राप्तत्वेन द्वात्रिंशत्सहस्रवत्सराधिकं चतुर्लक्षं ज्ञापितं—सर्व्वधर्म्मविवर्ज्जिताः,—श्रीगोविन्दैकतानतया पितृ-देवतार्च्चन नित्यनैमित्तिककाम्यकर्म्मादिकरणत्यागस्य का वार्त्ता—वर्णाश्रमादिसर्व्वधर्म्मविशेषरहिता अपि मर्त्त्या मरणधर्म्मवन्तो ये, केवलं यद्यपि वासुदेवपराः कृतार्थास्ते भवन्तीत्यर्थः संशयो नास्ति कश्चन। (१)

नाम-संकीर्त्तन और हरिकी आराधनारूप नैष्ठिक वृत्तिसे युक्त होनेके कारण नित्य-नैमित्तिक आदि अन्य सभी कर्म समस्त देवताओं और पितृपुरुषोंकी पूजा, याग, यज्ञ, दान, व्रत आदि अर्थ या प्रयोजन आदि सब कुछ जिनका सिद्ध हो गया है, वे अवश्य ही भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

पद्मपुराणमें श्रीसदाशिवका भगवती दुर्गाजीके प्रति कथन है—'घोर कलियुगके उपस्थित होने पर सर्वधर्म-विवर्जित होने पर भी श्रीवासुदेवके परायण मरणशील मनुष्य निःसंशयरूपमें कृतार्थ हो जाते हैं'। यहाँ घोर अर्थात् साधारणतः महाभयंकर अथवा संसारबन्धन हेतु अनिवार्य रूपमें भीषण जाल और संकटपूर्ण कलियुगके उपस्थित होने पर (द्वापरके अन्तमें कलियुगका परिमाण ४३२००० वर्ष है) सर्वधर्म विवर्जित अर्थात् पितृ-देवार्चन, नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मानुष्ठान, वर्णाश्रम आदि सब प्रकारके विशेष धर्मोंसे रहित होकर भी मरणशील मनुष्य यदि श्रीवासुदेवके

---

(१) तथा पाद्मे—

सर्व्वधर्म्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्व्वोपधार्म्मिकाः।।

श्रीहरिनामादिपरत्वेन श्रीवासुदेवपरत्वं ज्ञातं ज्ञापितञ्च कृतार्थत्वमपि तथा, पूर्व्वं वै तद्द्वयं व्याख्यातम्। तथा च स्कान्दे—

स कर्त्ता सर्व्वधर्माणां भक्तो यस्तव केशव।
स कर्त्ता सर्व्वपापानां यो न भक्तस्तवाच्युत।।

श्रीब्रह्मा स्वयं वदति,—हे केशव ! तव यो भक्तः सामान्यतः कोऽपि वर्णाश्रमादिलोकस्त्वां विनाऽन्यं न यदि भजते तदा त्वद्भक्तत्वात् सर्व्वधर्म्माणां कर्त्ता भवति। अयमर्थः—केवलैकान्तोऽनन्यत्वात्त्वत्पूजनादिकर्त्तृत्वेन वर्णाश्रमादिस्व-स्वधर्म्मावश्यकर्त्तव्यानि पितृदेवतादिपूजन-नित्यादीनि यानि तानि सर्व्वाणि करोत्यसंशयम्। (१) तथा हे अच्युत ! तव यो न

परायण होते हैं, तो वे कृतार्थ हो जाते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। [पद्मपुराणमें भी ऐसा कहा गया है—सब प्रकारके धर्मोंसे हीन, किन्तु एकमात्र श्रीविष्णु नामका कीर्त्तनकारी व्यक्ति सुखपूर्वक जिस गतिको प्राप्त होते हैं; सब प्रकारके उपधर्मोंका भलीभाँति पालन करनेवाले व्यक्ति भी वैसी गति कदापि नहीं प्राप्तकर सकते हैं।]

श्रीवासुदेव परायणता तथा कृतार्थता भी श्रीहरिनाम आदि परायणताके रूपमें जानी और समझी गयी है। इन दोनों विषयोंकी पहले ही व्याख्या की गई है।

स्कन्द पुराणमें भी ऐसा कहा गया है—'हे केशव ! जो तुम्हारे भक्त हैं, वे सब धर्मोंका अनुष्ठान कर चुके हैं। हे अच्युत ! जो तुम्हारे भक्त नहीं हैं, वे समस्त पापोंके अनुष्ठानकारी हैं'। ब्रह्माजीने स्वयं कहा है—हे केशव ! आपका भक्त चाहे वर्णाश्रमके अन्तर्गत हो या बहिर्भूत, वह तुम्हारे अतिरिक्त और किसीका भी यदि भजन नहीं करता है, तो वह तुम्हारा

---

(१) तथा नारायणीये—

या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये।
तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः।।

भक्तः श्रीसद्गुरुत्वन्नाममन्त्रोपदेशसद्धर्म्माचाराचरणव्यतिरेक-बहिर्म्मुखत्वेन सततं कर्म्माभिलाषः कर्मी लोक स सर्वपापानां कर्त्ता भवति। कथमेतत् ?—केवलशुद्धसत्त्वस्वरूपत्वदनन्य-शरणभावार्च्चनादिरहिततापातिव्रत्यधर्म्मपरित्यागेन शुद्धराजस-तामसश्रुतिस्मृतिपुराणाद्युक्तविविधयोगयज्ञहोमदानव्रत-विबुधार्च्चनादिकर्म्माचरणं वेश्यावृत्तिवत् कुर्व्वन् यथाकाले पञ्चत्वे सति स्वकर्म्मफलभुक् पुमानिति प्रमाणतस्तत्तत्कर्मफलभोक्तृत्वेन चतुरशीतिलक्षयोनिभ्रमणः स्यात्। तत्र तत्र मनुष्यजन्म प्राप्यापि पूर्व्वजन्मार्ज्जितकर्म्मद्वारा तानि तानि सर्व्व पापानि करोतीत्यर्थः श्रीभगवद्धर्म्माचाराचरणरहित्वात्।

अनन्य भक्त होनेके कारण समस्त धर्मोंका अनुष्ठान करनेवाला है। तात्पर्य यह है कि शुद्ध ऐकान्तिक भक्त अनन्यताके कारण तुम्हारी पूजा आदिका अनुष्ठान करनेवाला अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मोंका जो अवश्य कर्त्तव्य है, वह पितृ-देवता आदिकी पूजा और नित्यादि सभी कर्मोंको संशय रहित होकर करता है; अर्थात् उनका सब कुछ करना हो जाता है। [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकारके पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिए जो साधन सम्पद् है, इसके अतिरिक्त भी नारायणके आश्रित व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं।] हे अच्युत ! जो तुम्हारे **भक्त नहीं** हैं अर्थात् **सद्गुरुसे तुम्हारे नाम-मन्त्रमें अदीक्षित रहकर सद्धर्मके आचरणके विपरीत बहिर्मुख स्वभाववशतः निरन्तर कर्म और उसके फलमें आसक्त हैं**, ऐसे कर्मी समस्त पापोंके करनेवाले होते हैं। यह कैसे सम्भव है ?—एकमात्र शुद्धसत्त्व-स्वरूप आपके अनन्यरूपमें अर्चन आदिके अभावमें पातिव्रत्य-धर्म-त्यागके कारण केवल राजस-तामस श्रुति, स्मृति, पुराणादि कथित विविध प्रकारके योग, यज्ञ, होम, दान, व्रत, देवार्चन आदि कर्मोंका आचरण (वेश्या-वृत्तिकी भाँति) कर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होने पर 'स्वकर्मफलभूक् पुमान्'—इस प्रमाण वचनके अनुसार वे सब कर्मोंके फल

किञ्च तत्र—

पापं भवति धर्म्मोऽपि तव भक्तैः कृतं हरे।
निःशेषकर्म्मकर्त्ता वाप्यभक्तो नरके पतेत्।।

भक्ताभक्तयोरर्थ पूर्व्वश्लोके व्याख्यातः। हे हरे! तव भक्तैः कृतं पितृगीर्व्वानादियजन-नित्यनैमित्तिककाम्याद्यपरवेदाद्युक्त सांसारिककर्म्माद्यकरणे प्रत्यवायजनितं (१) यत् पापं तदपि निश्चितं धर्म्म श्रीभगवद्धर्म्मो भवति-श्रीभगवदेकान्तानन्यभजन-निष्ठाचरणत्वात्। वा पक्षान्तरे यदि तवाभक्ते निःशेषकर्म्मकर्त्तापि (नरके पतेत्) अयं भावार्थः,—नित्यादि कर्म्मणां का कथा, अथ रजस्तमोव्यवहारप्रमाणवेदाद्युक्तसोमयागवाजपेय-षड़ङ्गादि-

---

भोक्ताके रूपमें चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते हुए मनुष्य जन्म लाभ करके भी पूर्वजन्मार्जित कर्म और कर्मफलोंके द्वारा विविध पापकर्म आचरण करते हैं, क्योंकि वे सब प्रकारके भगवद्धर्मके आचार-विचारसे रहित हैं।

स्कन्द पुराणमें भी ऐसा उल्लेख है—'हे हरि ! तुम्हारे भक्तोंके द्वारा आचरित पाप भी धर्म होते हैं। इसके विपरीत अभक्त व्यक्ति पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान करके भी नरकमें पतित होता है'। भक्त और अभक्तका अर्थ उक्त श्लोकमें बताया जा चुका है। हे हरि ! तुम्हारे भक्तोंके द्वारा अनुष्ठित पापकर्म अर्थात् पितृ और देवताओंके यजन, नित्य, नैमित्तिक, काम्य आदि तथा वेद आदि कथित दूसरे-दूसरे करणीय सांसारिक कर्म आदिके नहीं करनेसे जो पाप होते हैं, वे सभी एकान्त भगवद्भक्तोंके अनन्य भजन एवं निष्ठापूर्वक भगवद्भक्तिमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण ही नहीं किये गये हैं, इसलिए वे भी श्रीभगवद्धर्म ही हुआ करते हैं। दूसरी ओर आपके श्रीचरणकमलोंकी

---

(१) प्रत्यवायजनकं (?)

चान्द्रायणव्रतादि-महामहोत्तम-कष्टसाधन-पञ्चाग्निसाधन-वायुभोजनाद्यपराश्वमेधादि-पशुहिंसायज्ञ-यागव्रतहोमविविध-विबुधार्च्चनादिसकलकर्म्माणि इहलोके कृत्वा परत्र तत्तत्कर्मफल-भोक्तृत्वेन कदापि तत्रलोके निवसति, कदापि स्वर्गे तिष्ठति कदापि नरके पतति (तवाभक्त इत्यर्थः) 'हे हरे'—इति सम्बोधनपदद्वयेनातिशयत्वेन सत्यवचननिवेदनोक्त्या विधात्रा श्रीभगवान् निजदासानुदास कलिभयेनोक्तः।

किञ्च तत्रैव पुनः—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्व्वोत्तमोत्तमः।।

क्रमेण वर्णतः श्रेष्ठत्वं

विष्णुभक्तिसमायुक्तस्य सर्व्वोत्तमोत्तमत्वेन वर्णाश्रम-

भक्ति नहीं करनेसे अभक्त लोग पूर्णरूपसे समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेपर भी नरकमें गमन करते हैं। इसका भावार्थ—अभक्तजन नित्य आदि कर्मोंकी तो बात ही क्या है, राजस-तामस व्यवहारिक एवं वेद आदिमें कहे गये सोमयज्ञ-वाजपेय-षडंग आदि, चान्द्रायण व्रत आदि, महामहोत्तम कष्ट-साध्य पञ्चाग्नि साधन, वायु-भोजन आदि, अश्वमेध आदि, पशु हिंसामय याग, यज्ञ, व्रत, होम, विविध देवार्चन आदि कर्मोंका इस जगतमें अनुष्ठान करनेपर भी उन कर्मोंके फल भोक्ताके रूपमें कभी इस लोकमें, कभी स्वर्गमें और कभी नरकमें गमन करते हैं। 'हे हरि!' इस सम्बोधन पदके द्वारा भगवान्‌के निज दासानुदास ब्रह्माजीने कलियुगके भयसे भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें सम्पूर्ण सत्य वचनोंके द्वारा प्रार्थना की थी।

अधिकन्तु पुनः स्कन्द पुराणमें ही ऐसा कहा गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कोई भी विष्णु भक्तिसे युक्त होने पर उसे सर्वोत्तम समझना चाहिए ।

अन्त्यजादीनां-सर्व्वेषां (विष्णुभक्तानां) सर्व्वतः श्रेष्ठ्यमुक्तं, सर्व्वतोभावेन तेषां पितृ-देवतापूज्याद्यपरविविधराजसतामस-वेदपुराणाद्युक्तसर्व्वकर्म्मनित्यनैमित्तिक काम्यादि कर्म्मान्यपि दूरीकृतानि च, अत्रायं भावार्थः। वेति क्रमे, पक्षे यदि। सङ्करान्त्यजादीनां शुद्रवदाचारव्यवहारस्तथापि संसृति-बन्धनजनकसर्व्वकर्म्मपरित्याग केवलैकान्तभक्तिद्विजसेवित्वेन तेषां उत्तमत्वं विप्रक्षत्रियविशां सेवकात्तस्मात् भक्तद्विजसेवी शूद्र उत्तमः।

शूद्रस्तु जात्या एकादश। तत्र प्रमाणं यथाह हारीतः,—

पलगण्डस्तन्त्रवायो मालाकारश्च तैलिकः।
कर्म्मकारस्ताम्बूलिको मोदको थालिको नरः।
ताम्बुलीकृत्तथा शूद्राः सत्शूद्रौ गोपनापितौ।।

पलगण्डः कुम्भकारः। अपरं सर्व्वं स्पष्टम्।

(यथा क्रमानुसार वर्णोंका श्रेष्ठत्व)—विष्णु भक्तिसे युक्त मनुष्य वर्णाश्रमके अन्तर्गत एवं बहिर्भूत सभी लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। उनके लिए पितृ-देवता पूजा आदि दूसरे सब प्रकारकी राजस-तामस वेदपुराण आदिमें कथित नित्य-नैमित्तिक-काम्य आदि सभी कर्म सब प्रकारसे निषिद्ध हैं—यही उक्त श्लोकका तात्पर्य है। 'वा'—पद क्रमानुसारके लिए कहा गया है। 'यदि'—पद पक्षके अर्थमें समझना चाहिए। संकर, अन्त्यज आदि पद शूद्रवत् आचार और व्यवहारके लिए प्रयुक्त है तथापि संसार बन्धनजनक समस्त कर्मोंका परित्यागपूर्वक केवल ऐकान्तिक भक्तिपरायण द्विजोंके सेवक होनेके कारण उनकी श्रेष्ठता स्वीकृत है। केवलमात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके सेवक शूद्रसे भी भक्त द्विजसेवी शूद्र उत्तम हैं।

शूद्र जातियाँ ग्यारह प्रकारकी होती हैं। इस विषयमें हारीत संहितामें प्रमाण है। जैसे—पलगण्ड (कुम्भकार), तन्त्रवाय (कपड़े बुननेवाले), माली,

तथा द्विजसेविनः शूद्रात् स्वर्गनरकभोगफलप्राप्तिकर्म्म-व्यतिरेकेण कृषिवाणिज्यगोपालनादिपूर्वकं केवलविप्रक्षत्रियसेवी वैश्य उत्तमः। तथैवम्भूताद्वैश्यात् पुनः संसारार्णवानुद्धार-कर्म्मकर्त्तव्यरहितत्वेन शूरवीरत्वक्षत्रधर्म्मदृढ़तर-निपूणस्वा-श्रमसर्व्वलोकगोद्विजपरिपालनपूर्व्वकं केवलैकान्तश्रद्धाभक्ति-विप्रसेवी क्षत्रिय उत्तमः। तथैवम्भूतात् क्षत्रियात् भवरज्जु-बन्धनाशेषयोनिभ्रमणजन्ममरणस्वोपार्ज्जनासंख्यनरकभोग-विविधगर्हितकर्म्मकर्त्तृत्वव्यतिरेकेण केवलब्रह्मगायत्री-भागवतीयाष्टद्वादशगुणयुक्तो ब्राह्मण उत्तमः।

द्वादशगुणाः यथा (महाभारते सनत्सुजातोक्ताः)—

धर्मश्च सत्यञ्च दमस्तपश्च ह्यमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया।

तेली, बढ़ई, तमोली, मोदक (१), थालीकर, ताम्बूलीकृत—ये शूद्र हैं तथा गोप और नाई सत्-शूद्र हैं।

स्वर्ग-नरक भोगरूप फलप्रद कर्मोंके अनुष्ठानके अतिरिक्त कृषि, वाणिज्य, गोपालनादि पूर्वक केवल विप्र और क्षत्रियोंके सेवक वैश्य द्विजसेवी शूद्रोंकी अपेक्षा उत्तम हैं। संसार समुद्रसे उद्धार करानेवाले कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले तथा शूर-वीरत्वादि क्षात्रधर्मके द्वारा दृढ़तर रूपसे निपुण होकर अपने आश्रममें सर्वलोक-गो-द्विजोंका परिपालनपूर्वक केवल ऐकान्तिक शुद्धाभक्तियुक्त विप्रोंके सेवक क्षत्रिय पूर्वोक्त वैश्य की अपेक्षा उत्तम हैं। उसी प्रकार ऐसे क्षत्रियोंकी अपेक्षा संसार रज्जुके द्वारा बन्धन, अशेष योनियोंमें भ्रमण, जन्म-मरण और अपने उपार्जित असंख्य नरकभोगके कारणीभूत विविध निन्दित कर्मोंके कर्त्ता अभिमान—इनसे रहित केवल ब्रह्मगायत्री, भागवतोक्त आठ गुणों एवं द्वादश गुणोंसे अलंकृत ब्राह्मण उत्तम हैं। महाभारतके सनक-सुजातमें कहे गये द्वादश गुण ये

---

(१) एक वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और शूद्रा मातासे बतायी गयी है।

यज्ञश्च दानञ्च धृतिः श्रुतञ्च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य।। (१)

वै निश्चितं, श्रीगायत्रीपूतब्राह्मणस्य द्वादश व्रतान्येतानि भवन्ति। एतेषु धर्म्म, चकारात् यत्किञ्चिन्मात्राधर्म्मक्रिया व्यतिरेकेण शिष्टाचारधर्म्मव्रतत्वम्। तथा सत्यं च-कारात् प्राणान्तेऽपि

हैं—'धर्म, सत्य, दम, तपः, अमत्सरता, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति और श्रुत—यही बारह ब्राह्मणके व्रत हैं'।

[जो ब्राह्मण इस संसारमें मेरे नित्य और विशुद्ध वेदरूप शरीरको धारण करते हैं, उन ब्राह्मणोंमें परम पवित्र सत्त्वगुण, शम, दम, सत्य, अनुग्रह, तपस्या, सहिष्णुता और वेदार्थ-ज्ञान भागवतमें उल्लिखित ये

---

(१) भागवतीयाष्टगुणाः,—

धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम्।
शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र।।(भा. ५/५/२४)

भागवतीयद्वादशगुणाः—

मन्ये धनाभिजन-रूप-तपः-श्रुतौज-
स्तेजः-प्रभाव-बल-पौरुष-बुद्धि-योगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयुथपाय।। (भा. ७/६/६)

अथवा,—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्त्यार्ज्जवविरक्तताः।
मौनविज्ञानसन्तोषाः सत्यास्तिक्ये द्विषड् गुणाः।। (स्वामीटीकाधृत)

उपरोक्त अष्ट वा द्वादश गुण ब्राह्मणके साधारण गुणमात्र श्रीमद्भागवतमें कहे गये हैं, किन्तु प्रकृत सात्त्विक दैव-वर्णाश्रमी ब्राह्मणके लक्षण निम्नलिखित हैं—

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्ज्जवम्।
ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यञ्च ब्रह्मलक्षणम्।। (भा. ७/११/२१)

वस्तुतः अच्युतात्मता अर्थात् कृष्णसेवापरायणता ही ब्राह्मणका मुख्य लक्षण है—

ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च सततं कृष्णसेवनम्।
नित्यं ते भुञ्जते सन्तस्तन्नैवेद्यं पादोदकम् ।। (ना. प. १/२/४२)

मिथ्याकथाभाषणरहित्वेन सदा सत्यवादित्वम्। तथा दमो जितेन्द्रियत्वम् तथा तपः चकारात् कायबृहत्कष्टसाधनकाम्यतपो विना ब्रह्मणो नित्याचारतपोनिष्ठत्वम्। तथा ह्रीः अतिशयशिष्टतया निन्दाकर्म्मप्रवृत्तिलोकलज्जाभीतितः सर्व्वदैव लज्जाशीलत्वम्। अमात्सर्य—परस्याशेषगुणविघातनग्राह्रस्थैश्वर्य्याद्युत्कर्षादर्शनत्वं मात्सर्यं, एतदृते अपरसकलोत्कर्षदर्शनोत्साहत्वममात्सर्य्यम्। तथा तितिक्षाकटुवचनतिरस्कारापमानपराभवामानाद्यपरशरीरविविधपीड़ादिसहिष्णुता। तथा अनुसूया सर्व्वस्तावकत्वेनादोषदर्शित्वम। तथा यज्ञः

आठ गुण सदैव विद्यमान रहते हैं। श्रीप्रह्लादजीने कहा धन, आभिजात्य, रूप, तपः, श्रुत, ओजः, तेजः, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग-ये बारह गुण परमपुरुष भगवान्के श्रीचरणकमलोंमें प्रीति उत्पन्न करनेके कारण नहीं होते, ऐसा समझता हूँ। भगवान् भक्तिके द्वारा ही गजेन्द्र आदिके प्रति प्रसन्न हुए थे।]

पूर्व श्लोकमें 'वै'—पदका अर्थ 'निश्चित' है, 'तु'—पदका अर्थ 'पुनः' है। श्रीगायत्रीके द्वारा पवित्र हुए ब्राह्मणोंके यह बारह गुण (व्रत) हैं। उनमें 'धर्म', पुनः 'च'—कारके द्वारा यत्किञ्चिन्मात्र अधर्म क्रियाके अतिरिक्त शिष्टाचार अर्थात् धर्ममें निष्ठाका प्रतिपादनके लिए है। 'सत्य' च-कारके द्वारा—मृत्युके पश्चात् भी मिथ्याभाषण—वर्जनहेतु नित्यसत्यवादिताको समझनके लिए है। 'दम' का तात्पर्य जितेन्द्रियता, 'तपः', च-कारके द्वारा शारीरिक महाकष्टपूर्ण काम्य'तपस्याके अतिरिक्त ब्राह्मणोंके नित्य आचाररूप तपोनिष्ठता; 'ह्री' अर्थात् अत्यन्त शिष्टतावशतः निन्दनीय कर्मोंमें प्रवृत्ति और लोक लज्जाके भयसे सर्वदा लज्जाशीलता; 'अमात्सर्य, तत्पश्चात् अशेष गुण-विघातक गार्हस्थ ऐश्वर्य आदि उत्कर्षोंके प्रति ईर्ष्या करनेको मात्सर्य कहते हैं। इसके विपरीत दूसरोंके सभी विषयोंमें उत्कर्षताके प्रति प्रसन्न होना ही अमात्सर्य है। 'तितिक्षा'—से कटुवाक्य, तिरस्कार, अपमान, पराभव, अमान आदि तथा विविध शारीरिक पीड़ा आदिके सहनेको

चकारात् कामनाविविधयज्ञादिव्यतिरेकेण शतसहस्रायुतलक्षादि-संख्या केवलश्रीगायत्रीजपयज्ञव्रतत्वम् (१) । तथा दानं, च-कारात् अन्नजलाद्यशेषदानफलभोगनिमित्तसङ्कल्पवाक्यं विना निमन्त्रितेभ्योऽथवा स्वेच्छोपस्थिताभ्यागतातिथिस्वकुटुम्बलोकादिसर्व्वर्णाश्रमसङ्करान्त्यजादिभ्यश्च भक्तिश्रद्धापूर्व्वकं यथाशक्ति जलान्नवस्त्रादिनिवेदनं सहजतः (२) तथा धृतिः संसाररूपोपद्रववोपद्रुतत्वराहित्येन सदा सन्तोष चित्तधैर्य्यता। तथा श्रुतं, च-कारात् राजसतामसवेदाध्ययनव्यतिरेकेण सात्त्विकवेदपाठाध्यापनश्रवणस्वभावत्वमित्यर्थः।

तितिक्षा कहते हैं। 'अनसूया'—अर्थात् सभीके गुणोंकी प्रशंसा करना और उनमें दोष नहीं देखना ही अनसूया है। 'यज्ञ', च-कारके द्वारा कामना, विविध यज्ञ इत्यादिके अतिरिक्त शत-सहस्र-लक्षादि संख्यापूर्वक केवल श्रीगायत्री जपरूप यज्ञपरायणताको समझना चाहिए। 'दान', च-कारके द्वारा—अन्न, जल, वस्त्र, धन आदि अनन्त प्रकारके दानके फल भोगनेके उद्देश्यसे संकल्पवाक्यके बिना ही निमन्त्रित स्वेच्छापूर्वक आये हुए उपस्थित-अभ्यागत-अतिथि-स्वकुटुम्बी आदि सभी वर्णाश्रमी, संकर तथा अन्त्यज आदि सभीको भक्तिश्रद्धापूर्वक यथाशक्ति जल, अन्न, वस्त्रादि स्वाभाविक रूपसे प्रदान करना समझना चाहिए। 'धृति'—विविध प्रकारके सांसारिक दुःखों और उपद्रवोंसे उद्विग्न न होकर सर्वदा सन्तोषपूर्वक चित्तकी धैर्यशीलताको धृति कहते हैं। राजस-तामस वेद पाठके अतिरिक्त सात्त्विक वेदपाठ, अध्यापन और श्रवणमें स्वाभाविक विशिष्टता ही 'श्रुत' च-कारका अर्थ है।

(वर्णोंकी अपेक्षा आश्रमोंका क्रमशः श्रेष्ठत्व)—

जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त पूर्वोक्त ब्राह्मणव्रतका निष्ठापूर्वक आचरण

---

(१) केवलश्रीगायत्रीशतसहस्रायुतलक्षादि संख्यया जपयज्ञव्रतत्वम्।

(२) जलान्नवस्त्रादिकं निवेदयित्यवं सहजतः।

वर्णादप्याश्रमानां क्रमतः श्रेष्ठत्वम्

तथैवम्भूतात् ब्राह्मणाज्जन्मादिदेहपातपर्यन्तं पूर्व्वोक्तब्राह्मण-व्रतनिष्ठावृत्तिपूर्व्वकापरश्रुतिस्मृतिपुराणाद्युक्तब्रह्मचर्य्यव्रताचारकर्त्तृत्वेन ब्रह्मचारी उत्तमः। तथा तस्मात् ब्रह्मचारिणः पूर्व्वोक्तब्राह्मणव्रत-धर्मस्थःसन् आमन्त्रणाह्वानव्यतिरेकयदृच्छागृहोपस्थितवर्णाश्रमादि सर्व्वलोकातिथ्यभ्यागतातिशयदयाश्रद्धापूर्वकान्नजलादि-यथाशक्तिसन्तर्पणादिसेवाकर्त्तृत्वेन गृहस्थ उत्तमः। तथैव तस्मात् गृहिणो ब्राह्मणव्रताचाराचरणनिष्ठत्वगृहाश्रमपरित्यागसस्त्रीक-वनवसतित्वेन वनाश्रमी भवन् वानप्रस्थ उत्तमः । तथैवम्भूताद् वानप्रस्थात् वेदपुराणोपपुराणभारत-धर्म्मशास्त्रादियथोक्तं सन्न्यासधर्ममाचरन् सन्न्यासी उत्तमः।

सन्न्यासं यथा श्रीभगवान् अर्जुनं प्रत्याह श्रीमद्‌भगवद् गीतायां (१८/२)—

काम्यानां कर्म्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्व्वकर्म्मफलात्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।

करते हुए दूसरे-दूसरे श्रुति, स्मृति, पुराण आदिमें कहे गये ब्रह्मचर्य व्रतका भी आचरण करनेवाला ब्रह्मचारी पूर्वोक्त ब्राह्मणसे उत्तम है। पूर्वोक्त ब्राह्मण-व्रत धर्ममें अवस्थित होकर आमन्त्रण-आह्वानके विना स्वेच्छासे घर में रहनेवाला वर्णाश्रमी सभी लोगों—अतिथि अभ्यागतोंके प्रति दया और श्रद्धा सहित अन्न-जलादिके द्वारा यथाशक्ति सबको सन्तुष्ट और सेवा करनेवाला गृहस्थ पूर्वोक्त ब्रह्मचारीसे भी उत्तम है। ब्राह्मण व्रताचारपालनमें निष्ठापरायण, गृहस्थ आश्रमको परित्यागकर स्त्रीके साथ वनमें वास करनेवाला वनाश्रमी वानप्रस्थ पूर्वोक्त गृहस्थसे उत्तम है। वेद-पुराण-उपपुराण-महाभारत-धर्मशास्त्र आदिमें वर्णित यथार्थ संन्यास-धर्मका आचरणकारी संन्यासी उपरोक्त वानप्रस्थकी अपेक्षा उत्तम है।

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको संन्यासके विषयमें गीता (१८/२) में

अस्य तात्पर्यविचारः

श्रीभगवता काम्यानां कर्म्मणां न्यासं कवयः पण्डिताः सन्न्यासं विदुर्जानन्तीति पदं, सर्व्वकर्म्मफलत्यागं विचक्षणा विवेकनिपुणाः पण्डितास्त्यागं प्राहुर्वदन्तीति पदञ्च यदुक्त-मत्रान्तर्गतार्थो विद्यते, अन्यथा सन्देहः स्यात्।

किं ततो यावत्काम्यकर्म्मव्यतिरेकेण नित्यनैमित्तिकादिकं सकलं कर्म्म करोतु? तस्मिन् कृते वाः सन्न्यासः कुतः? यथा श्रुतिः—ॐ तद्वान् वै कर्म्मकृत्, सन्न्यासो नैगमं कर्म्म च, अन्यासात् कर्म्मी, (न्यासात्) सन्न्यासः हे हीति।

हि त्ववधारणे, इहलोके नैगमं वेदिविहितं नित्यादिकर्म्म, (तत्)—कृत् पुमान् वै निश्चितं कर्म्मी भवति, तत्तत्कर्म्मनिपुणत्वात् कर्म्मठो भवति। अतःपरं न्यासात् तत्तत्कर्म्माकरणात् सन्न्यासः सन्न्यासधर्म्मो जायते। तद्वान् तं सन्न्यासधर्म्ममाचरन् सन् सन्न्यासी भवतीत्यर्थः।

कहा है—"कवि या पण्डित लोग काम्यकर्मोंके परित्यागको 'संन्यास' कहते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति समस्त कर्मोंके फलके त्यागको 'त्याग' कहते है।"

(श्लोकका तात्पर्य)—काम्य-कर्मोंके न्यास या वर्जनको पण्डितजन 'संन्यास' कहते हैं, अर्थात् विवेक निपुण बुद्धिमान व्यक्ति कर्मफलके त्यागको 'त्याग' कहते हैं—श्रीभगवान्‌के द्वारा कहे गये उक्त वाक्यका यह निगूढ़ अर्थ है, अन्यथा सन्देह हो सकता है।

फिर क्या सब प्रकारके काम्य कर्मोंको छोड़कर नित्य, नैमित्तिक कर्म-समूह कर्त्तव्य हैं ? फिर ऐसा होने पर संन्यास ग्रहण करनेका तात्पर्य ही क्या रहा ?

श्रुतिमें ऐसा कहा गया है—वैदिक कर्मोंका करनेवाला कर्मी कहलाता है तथा वैदिक कर्मोंका न्यास अर्थात् त्याग करनेवालोंको संन्यासी कहा

सन्न्यासार्थः

तथोत्तरगीतायाञ्च—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म्म त्रिविधमुच्यते।
सन्न्यासः कर्म्मणां न्यासो न्यासी तद्धर्म्ममाचरन्।।

नित्यादिकं त्रिविधं कर्म्मेति कर्म्मविद्‌भिरुच्यते। तेषां कर्म्मणां न्यासोऽकरणं सन्न्यासः। तद्धर्म्ममाचरन् न्यासधर्म्माचरणं कुर्व्वन् सन् पुरुषो न्यासी सन्न्यासी स्यादित्यन्वयः।

तथा **सर्व्वकर्म्मफलत्यागस्त्यागो** वा **कथं भवेत्**? यतः फलकामनाव्यतिरेकेण (अपि) नित्यादिकर्म्ममात्रेषु सत्सु तत्तत्कर्म्मकर्त्तृत्वेनावश्यमेव फलं भवतीति नात्र सन्देहः।

गया है। 'हि' शब्दका निश्चयात्मक रूपमें प्रयोग हुआ है, इस संसारमें नैगम अर्थात् वेदविहित नित्य आदि कर्मोंको करनेवाले व्यक्ति निश्चितरूपमें कर्मी कहलाते हैं उन कर्मोंमें निपुण होनेके कारण वे कर्मठ कहलाते हैं। वैसे कर्मोंके अकरण अर्थात् नहीं करनेसे संन्यास धर्मकी उत्पत्ति हुई है। न्यास धर्मोंका आचरणकारी व्यक्ति ही संन्यासी होता है।

संन्यासका अर्थ—उत्तरगीतामें भी "नित्य-नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकारके कर्म कहे गये हैं। कर्मोंके न्यास या वर्जनको 'संन्यास' कहा गया है, उस न्यास धर्मका आचारणकारी 'संन्यासी' है।" कर्मविद्‌गण भी ऐसा मानते हैं कि नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन तीनों कर्मोंका अकरण ही संन्यास है, इस न्यास धर्मका आचारणकर मनुष्य संन्यासी होते हैं।

समस्त कर्मोंका त्याग अथवा कर्मफलोंका त्याग कैसे संभव है? क्योंकि **फलकामनाके बिना भी** नित्यादि कर्म अनुष्ठित होनेसे इनमें कर्तृत्वका अभिमान रहनेसे **अवश्य ही फलकी प्राप्ति होती है**—इसमें सन्देह नहीं है।

'प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिए'—इस श्रुति प्रमाणसे उसके अकरणमें दोष लगता है, उस दोषसे बचनेके लिए सन्ध्योपासना आदि

अथाहरहः संध्यामुपासीतेति श्रुत्यादि प्रमाणतोऽकरण-प्रत्यवायपरिहारार्थं संध्योपासनादिकं नित्यं कर्म क्रियते, **न तु तत्फलाकाङ्क्षया क्रियते, तथापि फलं भवति**। यथा श्रीहारीतः,—

प्रत्यहं यस्त्रिकालज्ञः संध्योपासनकृद्द्विजः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति गायत्रीजपतत्परः।।

प्रत्यहं प्रतिदिवसे यः सन्ध्योपासनाकृत् द्विजो विप्रः,—द्विजत्वेन क्षत्रियो वैश्यश्च ज्ञातव्यः—त्रिकालज्ञः प्रातर्मध्याह्न-सायंकालं जानातीति, तथा गायत्रीजपतत्परः अर्थात् तत्र सन्ध्योपासनायां गायत्रीमतिशयेन पुनः पुनः जपन् सन् पश्चादन्ते पञ्चत्वे सति ब्रह्मलोकमवाप्नोति,—फलाकाङ्क्षारहितत्वेन सहजस्वभावतो (तस्य) ब्रह्मलोकप्राप्तिफलं स्यात्।

नित्यकर्म अनुष्ठित हुआ करते हैं। **किन्तु फल आकांक्षाके लिए वे अनुष्ठित नहीं होते तथापि फलकी उत्पत्ति तो होती ही है**। जैसा हारीत-संहितामें कहा गया है—'प्रतिदिन त्रिकालज्ञ संध्योपासनाकारी गायत्री जपमें तत्पर ब्राह्मण ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।' जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनेवाले; त्रिकालज्ञ अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल—इनको जाननेवाले हैं एवं गायत्री जपमें तत्पर अर्थात् सन्ध्योपासनाके समय पुनः-पुनः अत्यन्त श्रद्धाके साथ गायत्रीका जप करते हैं, वे मृत्युके पश्चात् ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं—फलाकांक्षासे रहित होनेके कारण सहज स्वाभाविक रूपमें ब्रह्मलोक प्राप्ति-फलको प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार **नैमित्तिक** श्राद्धादि कार्योंमें भी फलसंकल्पके अतिरिक्त भी **फल प्राप्त होता है**। स्कन्द पुराणमें कहा गया है—'गया, विरजाक्षेत्र, महेन्द्रपर्वत तथा जाह्नवी तट आदि क्षेत्रोंमें पिण्डदान करनेवाला व्यक्ति अनामय ब्रह्मलोकमें गमन करता है। 'गया'—श्रीविष्णुपद आदि एक कोस तककी भूमि सर्वत्र अथवा दूसरे पुराणोंके मतानुसार एक योजन

एवं **नैमित्तिके** श्राद्धादिके कर्म्मणि (अपि) फलसङ्कल्पं विना तु **फलं भवति**। तत्राह स्कान्दे,—

गयायां विरजे चैव माहेन्द्रे जाह्नवीतटे।
अत्र पिण्डप्रदो याति ब्रह्मलोकमनामयम्॥

गयायां श्रीविष्णुपदाद्येकक्रोशपर्यन्तभूमौ सर्व्वतः। अथवा पुराणान्तरमते योजनपरिमिते विष्णुपदे गयाभूमिक्षेत्रे, विरजे विरजक्षेत्रे, माहेन्द्रक्षेत्रे। चकारात्,—एवेति निश्चयं, कुरुक्षेत्र-बदरीकेदारक्षेत्रवेङ्कटाचलक्षेत्रश्रीरङ्गनाथक्षेत्रश्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्राद्यपरसकलतीर्थपुण्यभूमिषु। तथा जाह्नवीतटे यत्र क्वापि श्रीगङ्गागर्भजलाद्येकक्रोशपरिमितभूमित्वेनायत जाह्नवीतटमिति सम्भवति तत्र च। अत्रैतत्स्थले श्राद्धकृत्ये पिण्डः प्रदीयते यस्मै पुत्रादिना स तु पिण्डप्रदः सन् ब्रह्मलोकप्राप्तत्वेन कृतार्थो भवत्यवश्यमेव। तथा श्राद्धकर्त्तृत्वेन पिण्डं प्रददातीति पिण्डप्रदः पुत्रादिरपि त्वनामयं द्विपरार्द्धपर्यन्तरोगशोकादितापत्रयापर-सर्व्वोपद्रवरहितं ब्रह्मलोकं याति सत्यलोकं प्राप्नोतीत्यर्थः।

तक विष्णुपाद क्षेत्र है, च-कारका तात्पर्य—कुरुक्षेत्र, बदरीक्षेत्र, केदारक्षेत्र, वेंकटाचलक्षेत्र, श्रीरंगनाथक्षेत्र, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र आदि दूसरे सभी तीर्थ और पुण्यभूमिसे है। 'जाह्नवी तट'—गंगाके गर्भजलसे एक कोस तककी विस्तृत भूमिमें स्थित कोई भी स्थान; इन सब स्थानोंमें श्राद्ध कार्यमें जिनको पिण्ड दिया जाता है, वे 'पिण्ड पानेवाले व्यक्ति' ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर अवश्य ही कृतार्थ होते हैं। उसी प्रकार श्राद्ध करनेवालेके रूपमें पिण्डप्रदानकारी पुत्र इत्यादि भी अनामय अर्थात् द्विपरार्द्धकाल पर्यन्त रोग-शोक आदि तीन प्रकारके तापोंसे रहित और सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित ब्रह्मलोकको गमन करते हैं अर्थात् **सत्य लोकको** प्राप्त होते हैं।

काम्यं तु कर्म्म केवलफलसङ्कल्पेनैव भवति। तत्रापि **काम्यकर्म्मणः** फलकामनाव्यतिरेकेणापि **फलं भवति**। यथा श्रीबृहद्विष्णुपुराणे,—

य कश्चित् पुरुषोऽपीह कृत्वा चान्द्रायणं व्रतम्।
मुच्यते सर्व्वपापेभ्यस्तथा द्वादशवार्षिकम्।।

इहलोके पुरुषो वर्णसङ्करान्त्यजान्तर्गतो यः कश्चित् कामपि फलाकाङ्क्षामृते स्वेच्छया चान्द्रायणव्रत कृत्वा, तथा फलकामनां विना द्रव्याढ्यस्वभावतः केवलद्वादशवार्षिकं कृत्वा सर्वपापेभ्यः पातकोपपातकमहापातकातिपातकानुपातकादिभ्यो मुच्यते। अयम्भावः,—एतत्पातकादिनिरयभोगव्यतिरेकेण संसृति-बन्धनरहितत्वेन च मुक्तो भवतीत्यर्थः।

किन्तु केवल फल-संकल्पमें ही काम्य कर्मोंकी सम्भावना होती है। उसमे भी **काम्यकर्मकी** फल-कामनाके बिना ही फल हुआ करता है। यथा, श्रीबृहद्विष्णु पुराणमें ऐसा उल्लेख है—इस लोकमें चान्द्रायण और द्वादश वार्षिक व्रतका अनुष्ठान करनेवाले सभी लोग समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। इस संसारमें वर्णसंकर अथवा अन्त्यजके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति किसी प्रकारकी फलकी कामनाके बिना ही स्वेच्छापूर्वक चान्द्रायण व्रत करनेपर, पुनः फल-कामनासे रहित होने पर भी धनवान होनेके कारण स्वभावतः ही केवल 'द्वादश वार्षिक व्रत' का अनुष्ठान करते हैं तो वे पातक, उपपातक, महापातक, अतिपातक, अनुपातक आदि सारे पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, उन पातकोंके कारण नरकभोगके बिना ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं—यही इसका भावार्थ है।

त्यागका तात्पर्य—अतएव **नित्य, नैमित्तिक और काम्यकर्म आदि सभी कर्मोंके परित्यागके द्वारा ही 'संन्यास' होता है**—तथा नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंको स्वरूपतः त्याग न कर केवल उन कर्मोंका

अतएवोच्यते—**नित्यनैमित्तिक काम्यकर्म्मादिसर्व्वन्यासेन सन्न्यासो भवति**। तथा नित्यादिसर्व्वकर्म्मात्यागेन सर्व्वकर्म्मफल-त्यागस्त्यागः स्यादित्यन्तर्गर्भान्वयोनात्र सन्देहः कर्त्तव्यः।

फल परित्याग करने पर—'त्याग' होता है—यही निगूढ़ तात्पर्य है। इसमें सन्देह करना कर्त्तव्य नहीं है ।

(१) अथ मङ्गलाचरणम्

अथ प्रथमं विवाहादिकृत्यादौ **मङ्गलाचरणं** कर्त्तव्यम्। तत्र प्रथमं **प्राङ्गणे** चतुर्मुष्ट्याधिकचतुर्हस्तपरिमितां चतुष्कोणां छायामण्डपसहितां **वेदीं** कुर्य्यात्।

अत्र प्रमाणमाह श्रीकपिलपञ्चरात्रे—

संस्कृतायामुत्तमायां प्रयतायां विशेषतः।
भूमौ कुर्य्याच्चतुष्कोणां वेदिकां शुभदायिनीम्॥
चतुर्हस्तचतुर्मुष्टिपरिमाणेन चिह्निताम्।
शुद्धाभिर्मातृकाभिश्च सल्लोकेनापि निर्म्मिताम्॥
मृद्भिर्वाभिः पवित्राभिः सद्यो गोमयलेपिताम्।
खर्पराङ्गारकेशास्थितूषादिपरिवर्ज्जिताम्॥
ततः कुर्य्यात् प्रयत्नेन छायामण्डपवर्द्धनम्।
जम्बाम्रवकुलादीनां दलतोरणमण्डितम्॥
नानावर्णपताकाश्च दद्यात् अष्टघटोपरि।
घटाश्च चित्रिताः कार्य्याः पञ्चवर्णैः सुमङ्गलाः॥

---

(१) **अथ मंगलाचरण**—अनन्तर विवाह आदि सारे मांगलिक कार्योंमें सबसे पहले मंगलाचरण करना चाहिए। मंगलाचरणसे पूर्व आँगनमें चार हाथ और चार मुष्टि परिमित चतुष्कोण और छायामण्डप युक्त वेदीकी रचना करें। इस विषयमें कपिल-पंचरात्रका प्रमाण है—

विशेषरूपसे संस्कारयुक्त, उत्तम और पवित्र भूमिमें दोनों ओरसे चार हाथ और चार मुष्टि परिमित, विशुद्ध मातृका चिह्न द्वारा शोभित, उपयुक्त निपुण लोगोंके द्वारा निर्मित, पवित्र मिट्टी, जल और सर्वथा नवीन गोबरसे लिपे-पुते हुए, खपरैल, कोयला (राख), केश, हड्डी, अपवित्र छिलके (भूसी) आदिसे रहित चतुष्कोंण मंगल वेदीका निर्माण करें। अनन्तर जामुन, आम, मौलश्री आदिके पत्तोंसे तोरण-द्वार बनाकर

पूर्व्वादि क्रमतश्चाष्टौ घटाः स्थाप्या विधानतः।
अष्टौ ध्वजाः सपताकाः शुभ्रा वेद्याश्च पूर्व्वतः।।
तत्रच्छायामण्डपोर्ध्वे चन्द्रातपविमण्डितम्।
नानापुष्पादिरचितस्रग्भिर्मञ्जुलशोभनम्।।
पञ्चवर्णकृतैश्चूर्णैर्वेदिकां सधवाङ्गनाः।
साध्व्यो विचित्रितां कुर्युर्द्वारं विविधलिम्पकैः।।
मङ्गलाचरणं चैतत् वाद्यभाण्डस्य वादनैः।
शङ्खघण्टादीनां घोषैःस्थलमत्यन्तमंगलम्।
मुखवाद्यैर्ललुलाख्यैः सधवानाञ्च योषिताम्।।

(क) ततः प्रथमं मङ्गलदायकं सर्व्वविघ्नविनाशकारकं षड्दर्शनमतेन पृथङ्नामधेयं श्रीमद्भगवन्तं भक्त्या प्रणमेत्।

यथा बृहद्विष्णुपुराणे—

यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परे प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय।।

ततो वेदोक्तं मन्त्रं पठेत्, यथा सामवेदे,—

छाया-मण्डपको सुसज्जित करें। पूर्व दिशा आदिके क्रमसे आठों दिशाओंमें आठ मंगल घटका विधिवत् स्थापनकर घटके ऊपर रंग-बिरंगी पताकाओंकी स्थापना करें। घटोंको पांच प्रकारके रंगोंसे चित्रित करें। वेदीके पूर्वादि दिक्से पताका सहित आठ ध्वजाओंको स्थापित करें। छायामण्डपके ऊपरी भागमें चन्द्रातपके द्वारा मण्डित और अनेकों पुष्पोंसे रचित माला आदिके द्वारा मनोरम रूपसे सुशोभित करें। सधवा स्त्रियाँ पांच प्रकारके रंगोंसे वेदीके ऊपर चित्रांकन करें। मंगलाचरणमें अनेकों प्रकारके वाद्य, शंख और घण्टाध्वनि और सधवा स्त्रियोंकी उलुध्वनिसे उस स्थानको मंगलमय करें।

(क) अनन्तर सबसे पहले मंगलदायक, सर्वविघ्नविनाशन, छह दर्शनोंके विचारसे पृथक्-पृथक् नाम विशिष्ट श्रीभगवान्को भक्तिपूर्वक

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सुरयो दिवीव चक्षुराततम्।

अपरमृग्वेदे कृष्णोपनिषदि,—

ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः, कृष्ण आदिपुरुषः, कृष्णः पुरुषोत्तमः, कृष्णो हा उ कर्म्मादिमूलं, कृष्णः स ह सर्व्वैकार्यः, कृष्णः काशंकृदादीशमुखप्रभुपूज्यः, कृष्णोऽनादिस्तस्मिन्नजाण्डान्तर्बाह्ये यन्मङ्गलं तल्लभते कृती।

अपराणि च मङ्गलस्वरूपाणि सामयजुर्वेदाद्युक्तानि श्रीपुरुषसूक्तमन्त्राणि च पठेत्,—

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।१।।
ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।२।।
ॐ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽसय विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।३।।
ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनाऽनशने अभि।।४।।
ॐ तस्मात् विराडजायत विराजो अधिपुरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।५।।
ॐ तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।

प्रणाम करें—जैसे बृहद्विष्णुपुराणमें कहा गया है—'यं ब्रह्म' इत्यादि मन्त्र। उसके पश्चात् सामवेदोक्त मन्त्रका पाठ करें—'ॐ तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादि। अतःपर ऋग्वेदके अन्तर्गत कृष्णोपनिषदके मन्त्रका पाठ करें—'ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः' इत्यादि। तदनन्तर श्रीपुरुषसूक्त मन्त्रका पाठ करें—'ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि अथर्ववेदोक्त श्रीनारायणोपनिषत् पाठ करना भी उचित है—'ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणः' इत्यादि।

पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।६।।
ॐ तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत।।७।।
ॐ तस्मादश्वाऽजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजा वयः।।८।।
ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।९।।
ॐ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरुपादा उच्येते।।१०।।
ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरुः तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।११।।
ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणात् वायुरजायत।।१२।।
ॐ ॐ नाभ्यासीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।१३।।
ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।।१४।।
ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृता।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम्।।१५।।
ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।१६।।
ॐ अद्भ्यः सरः भृतं पृथ्वी वै रसाच्च विश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्तस्य देवत्वमायातमग्रे।।१७।।
ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।।१८।।

ॐ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधाभिजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थूर्भुवनानि विश्वा।।१६।।
ॐ यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्व्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।।२०।।
ॐ रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वेवं ब्राह्मणो विन्द्यात् तस्य देवा आसन् वशे।।२१।।
ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि।
रूपमश्विनौ व्यात्तं इध्ममिषाणामुष्म इषाण सर्व्वलोकं म इषाण।।२२।।

अपरो मङ्गलप्रदोऽथर्व्ववेदोक्तनारायणोपनिषद्पाठश्च कर्त्तव्यो, यथा—

"ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयति प्रजाः सृजेरन्। नारायणाद्ब्रह्मा जायते, नारायणादिन्द्रो जायते, नारायणाद्द्वादशादित्या रुद्राः, सर्व्वा देवताः सर्व्वे ऋषयः सर्व्वाणि भूतानि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते।।"
"अथ नित्यो देव एको नारायणो ब्रह्मा च नारायणः शिवश्च नारायणः शक्रश्च नारायणो रुद्राश्च नारायणो वसवोऽश्विनौ च नारायणः सर्व्वे ऋषयश्च नारायणः कालश्च नारायणो दिशश्च नारायणोऽधश्च नारायण ऊर्ध्वञ्च नारायणो मूर्त्तोऽमूर्त्तश्चनारायणोऽन्तर्बहिश्च नारायणः। नारायण एवेदं सर्व्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। अथ नित्यो निष्कलो निराख्यातो निर्व्विकल्पो निरञ्जनः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। य एवं देव,—बोधञ्च सारथिं कृत्वा मनः प्रग्रहवान् पुमान्। प्रयाति परमं पारं विष्ण्वाख्यं पदमव्ययम्।। विष्ण्वाख्यं पदमव्ययमिति।। एतद्वै नारायणोपनिषदं यो वै नारायणोपनिषदमध्येति स सर्व्वेभ्यो दोषेभ्यो विमुक्तो भवति, स सर्व्वान्

कामानवाप्नोति। अमृतत्वञ्च लब्ध्वाऽमृतत्वञ्च गच्छतीति।" "ओमित्यग्रे व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। नारायणायेत्युपरिष्टात्। ओमित्येकाक्षरम्। नम इति द्वे अक्षरे। नारायणायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम्। यो ह वै नारायणस्याष्टाक्षर पदमध्येति। अनपब्रुवः (१) सर्व्वमायुरेति। विन्दते प्रजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं ततोऽमृतत्वमश्नुत इति।। प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम्। अकार उकार मकार इति। ता अनेकधा समभवत्तदेतदोमिति। यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसार-बन्धनात्।। ॐ नमो नारयणायेति मन्त्रोपासको (२) वैकुण्ठ-भुवनं गमिष्यति। तदिदं पुण्डरीकं विज्ञानघनं तस्मात्-तड़िदाभमात्रम्। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः। ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युत इति। सर्व्वभूतस्थमेकं वै नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म ॐ। प्रातरधीयानो रात्रि-कृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। मध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयान पञ्चमहापातकोपपातकानि (३) नाशयति। सर्व्ववेदपारायणपुण्यं लभते। नारायणात् सायुज्य-माप्नोति।।" (४)

ततः कुङ्कुमाक्ततण्डुलान् अभावे हरिद्राक्ततण्डुलान् गृहीत्वा (ख) **स्वस्तिवाचनं** करणीयं, यथा—ऋग्वेदे कृष्णोपनिषदि,—

(ख) उसके पश्चात् कुंकुमयुक्त (चावल) उसके अभावमें हल्दी मिश्रित चावल हाथमें लेकर स्वस्तिवाचन करें—'ॐ स्वस्ति नो गोविन्द' इत्यादि। अतःपर हाथ जोड़कर पाठ करें—'करोतु स्वस्ति मे कृष्णः' इत्यादि, 'कृष्णो ममैव सर्वत्र' इत्यादि।

---

(१) सोऽनुपलब्धः। (२) तस्मान्मन्त्रोपासनात्।
(३) पञ्चमहापातकोपपातकात् प्रमुच्यते। (४) नारायणात् सायुज्यमवाप्नोति।

ॐ स्वस्ति नो गोविन्दः स्वस्ति नोऽच्युतानन्तौ, स्वस्ति नो वासुदेवो विष्णुर्दधातु। स्वस्ति नो नारायणो नरो वै, स्वस्ति नः पद्मनाभः पुरुषोत्तमो दधातु।। स्वस्ति नो विष्वक्सेनो विश्वेश्वरः, स्वस्ति नो ऋषिकेशो हरिर्दधातु। स्वस्ति नो वैनतेयो हरिः, स्वस्ति नोऽञ्जनासुतोहनूर्भागवतो दधातु।। स्वस्ति स्वस्ति सुमङ्गलैकेशो महान् श्रीकृष्णः, सच्चिदानन्दघनः सर्व्वेश्वरेश्वरो दधातु।।

ततः पुटाञ्जलिं बद्धा पठेत् यथा सम्मोहनतन्त्रे,—

करोतु स्वस्ति मे कृष्ण सर्व्वलोकेश्वरेश्वरः।
कार्ष्णादयश्च कुर्व्वन्तु स्वस्ति मे लोकपावनाः।।

विष्णुयामलसंहितायां,—

कृष्णो ममैव सर्व्वत्र स्वस्ति कुर्य्यात् श्रिया समम्।
तथैव च सदा कार्ष्णिः सर्व्वविघ्नविनाशनः।।

अतःपरं (ग) **मङ्गलवाचनं** पद्यं पठेत्—

विष्णुरहस्ये,—

अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनाकुलकदम्बमूलवर्त्ती।
नवगोपवधूविलासशाली वितनोतु नो मङ्गलाणि।।

नारदीयपुराणे,—

कृष्णः करोतु कल्याणं कंसकुञ्जरकेशरी।
कालिन्दीजलकल्लोलकोलाहलकुतूहलः।।

नारसिंहे,—

माधवो माधवो वाचि माधवो माधवो हृदि।
स्मरन्ति साधवः सर्व्वे सर्व्वकार्येषु माधवम्।।

(ग) अनन्तर मङ्गलवाचन पद्यसकल पठनीय—'अतसी-कुसुमोपमेयकान्तिः' इत्यादि।

पाण्डवगीतायां,—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्द्दनः।।

बृहद्विष्णुपुराणे,—

मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं मधुसूदनः।
मङ्गलं हृषिकेशोऽयं मङ्गलायतनो हरिः।।
विष्णूच्चारणमात्रेण कृष्णस्य स्मरणाद्धरेः।
सर्व्वविघ्नानि नश्यन्ति मङ्गलं स्यान्न संशयः।।

पाद्मे,—

सत्यं कलियुगे विप्र श्रीहरेर्नाम मङ्गलम्।
परं स्वस्त्ययनं नृणां नास्त्येव गतिरन्यथा।।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

पुण्डरीकाक्ष-गोविन्द-माधवादींश्च यः स्मरेत्।
तस्य स्यान्मङ्गलं सर्व्वकर्म्मादौ विघ्ननाशनम्।।

रुद्रयामले,—

मङ्गलायतनं कृष्णं गोविन्दं गरुडध्वजम्।
माधवं पुण्डरीकाक्षं विष्णुं नारायणं हरिम्।।
वासुदेवं जगन्नाथमच्युतं मधुसूदनम्।
तथा मुकुन्दानन्तादीन् यः स्मरेत् प्रथमं सुधीः।।
कर्त्ता सर्व्वत्र सुतरां मङ्गलानान्त कर्म्मणः।। (१)

---

(१) तथा गोपालपूर्वतापन्यां—

नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे। विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः।।
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे। कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः।।
नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने। नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः।।
बर्हापीड़ाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे। रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः।।
कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने। वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः।।

(२) अथाधिवासः

अथाधिवास-कर्त्तव्यम्—(पूर्वेद्युः) गोधूलिसमये तदभावे (कृत्यदिवसे) प्रातःकाले वाऽधिवासद्रव्याण्यानीय यथाक्रममधिवासयेत्। तानि यथा—मही गन्धः शिला धान्यं दूर्वा पुष्पं फलं दधि। घृत-स्वस्तिक-सिन्दूर-शङ्ख-कज्जल-रोचनाः। सिद्धार्थं काञ्चनं रौप्यं ताम्रं दीपश्च दपर्णम्। ततः सुगन्धि स्नानीयं हरिद्रा वसनं तथा। सूत्रकं चामरं योज्यं चन्दनं चाभिवन्दनम् ।। (आचमन-विष्णुस्मरण-स्वस्तिवाचनादि-पूर्व्वकमेव अधिवासोक्तं कार्य्यं कुर्य्यात्।)

---

(२) **अधिवास**—किसी भी यज्ञ आदि शुभ अनुष्ठानके प्रारम्भमें किये जानेवाले कृत्यको अधिवास कहते हैं—शुभकार्यके पूर्वदिन सायंकालमें अथवा शुभकार्यके दिन ही प्रातःकालमें अधिवासके द्रव्यको एकत्रकर अधिवास सम्पन्न करें। अधिवासके द्रव्य ये हैं—मिट्टी, गन्ध, शिला, धान्य, दूर्वा, पुष्प, फल, दधि, घृत, स्वस्तिक (घृताक्त अरवा चावल), सिन्दूर, शंख, काजल, रोचना, सिद्धार्थ (श्वेत सरसों), सोना, चाँदी, ताँबा, दर्पण, सुगन्धित तेल, हल्दी, वस्त्र, सूत्र, चामर, चन्दन, अभिवन्दन (सभी द्रव्यों द्वारा एकत्र वन्दना), निर्मञ्छन। (इसके पश्चात् आचमन, विष्णुका स्मरण और स्वस्ति-वाचन करें)।

वेणुनादविनोदाय गोपालायाहिमर्दिने। कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ।।
वल्लवीवदनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने। नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः।।
नमः पापप्रणाशाय गोवर्द्धनधराय च। पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्त्तासुहारिणे।।
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे। अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः।।
प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर। आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो।।
श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर। संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो।।
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन। गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव।।

तत्र प्रथमं (१) **गङ्गामृत्तिकया**—भूमिः असि, अदितिः असि, विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री, पृथिवीं यच्छ, पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः।—अनया गङ्गामृत्तिकया शुभाधिवासः अस्तु।

प्रथमं श्रीविष्णोः पश्चात् वरकन्ययोरधिवासः कर्त्तव्यः।

(२) ततो **गन्धेन**—ॐ गन्धद्वारा दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणम्, ईश्वरीं सर्व्वभूतानां त्वाम् इहोपाह्वये श्रियम्। अनेन गन्धेन शुभाधिवासः अस्तु।—एवं सर्व्वत्र।

(३) ततः **शिलया**—ॐ प्रपर्व्वतस्य वृषभस्य प्यूष्टान् नारश्चरन्ति स्वसिच इ अनन्तो आरवृत्तं न धरा गुदत्ता अहिं व्रध्न मनुवीयमाना, विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि।

(४) ततो **धान्येन**—ॐ धान्यमसि, धिनुहि देवान्, धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं, धिनुहि मां यज्ञन्यम्।

(५) ततो **दूर्व्वया**—ॐ काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च।

(६) ततः **पुष्पेण**—ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या अहोरात्रे पार्श्वे। नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इध्म मिषाण अमुष्मा इषाण सर्वलोकं म इषाण।

(७) ततः **फलेन**—ॐ याः फलिनीः याः अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्तु अहंसः।

(८) ततो **दध्ना**—ॐ दधि क्राव्णः अकार्षं जिष्णोः अश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखाकरोत् प्राण आयुंषि तारिषत्।

(९) ततो **घृतेन**—ॐ घृतवती भुवनानाम् अभि श्रियोर्वी पृथिवी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्म्मणा विस्कभिते अजरे भूरिरेतसा।

(१०) ततः **स्वस्तिकेन**—ॐ स्वस्ति नो गोविन्दः स्वस्ति नः अच्युतानन्तौ स्वस्ति नो वासुदेवो विष्णुः दधातु। स्वस्ति नो नारायणो नरो वै, स्वस्ति नः पद्मनाभः पुरुषोत्तमो दधातु। स्वस्ति नो विष्वक्सेनो विश्वेश्वरः, स्वस्ति नो हृषिकेशो हरिः दधातु। स्वस्ति नो वैनतेयो हरिः, स्वस्ति नः अञ्जनासुतो हनूः भागवतो दधातु। स्वस्ति स्वस्ति सुमङ्गलैकेशो महान् श्रीकृष्णः, सच्चिदानन्दघनः सर्व्वेश्वरेश्वरो दधातु।

(११) ततः **सिन्दूरेण**—ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमीयः पतयन्ति यह्वाः। घृतस्य धारा अरुषो नः बाजी काष्ठा भिन्दन् उर्म्मिभिः पिम्वमानः।

(१२) ततः **शङ्खेन**—ॐ प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय बहुवादिनम् अनन्ताय मूकं शब्दाय आडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्मम् अपरम्पराय शङ्खध्वं बलाय बनमपतो वन्याय दावपम्।

(१३) ततोऽञ्जनेन—ॐ समिद्धोऽञ्जन् कृदम्मतीनां घृतम् अग्ने मधुमत् पिम्वमानः। वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियम् आसधस्थम्।

(१४) ततो **रोचनया**—ॐ युजन्ति व्रध्नं अरुषं चरन्तं परितस्थूषः रोचन्ते रोचना दिवि।

(१५) ततो **सिद्धार्थेन**—ॐ रक्षोहनो वल्गहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्, रक्षोहनो वल्गहनो बलयामि वैष्णवान् रक्षोहनो वल्गहनो वः स्तृणामि वैष्णवान्, रक्षोहनौ वां वल्गहनौ उपदधामि वैष्णवी, रक्षोहनौ वां वल्गहनौ पर्यूहामि वैष्णवी, वैष्णवमसि वैष्णवाः स्थ।

(१६) ततः **काञ्चनेन**—ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य

जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।

(१७) ततो **रजतेन**—ॐ कृशनो रुक्मतरुव्याप्यभो दुर्म्मषं आपुः श्रेये रूचानः अग्निः अमृतः अभवत्। वयोभिर्यदेनं घोरजनयन् स्फुरैताः।

(१८) ततस्**ताम्रेण**—ॐ असौ यस्ताम्रः अरुणः उतवभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनहुं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः, सहस्रशो वैषा हेड़इमहे।

(१९) ततो **दीपेन**—ॐ मनो जूतिः जुषताम् आज्यस्य बृहस्पतिः यज्ञम् इमं तनोतु। अरिष्टं यज्ञम् इमं दधातु, विश्वे देवास इह मादयन्तां ॐ प्रतिष्ठ।

(२०) ततो **दर्पणेन**—ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः, कृष्ण आदिपुरुषः, कृष्णः पुरुषोत्तमः, कृष्णो हा उ कर्मादिमूलं, कृष्णः स ह सर्व्वैकार्यः कृष्णः काशंकृदादीशमुखप्रभुपूज्यः, कृष्णः अनादिः, तस्मिन् अजाण्डान्तर्बाह्ये यत् मङ्गलं तत् लभते कृती।

(२१) ततः **सुगन्धितैलेन**—ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।

(२२) ततो **हरिद्रया**—ॐ विष्णोः विक्रमणम् असि, विष्णोः विक्रान्तम् असि, विष्णोः क्रान्तमसि, विष्णोः क्रान्तमसि, युज्यन्त्यस्य काम्या हविः विपञ्चसारथे शोनो घृष्णुः नवाहसा।

(२३) ततो **वस्त्रेण**—ॐ युवा सुवासाः परिवीतः आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति साध्यो मनसा देवयन्तः।

(२४) ततः **सूत्रेण**—ॐ सूत्रामाणं पृथिवीं द्याम् अनेहसं सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतं देवो नारं सुविद्राम् अनागसम्

अस्मरतीं आरुहे मास्म स्यये।। अनेन मन्त्रेण, 'ॐ तद्विष्णोरिति' मन्त्रेण च, 'ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघन' इति मन्त्रेण च वरस्य नवगुणपरिमितं वैष्णवब्राह्मणेन, कन्यायाः सप्तगुणपरिमितं वैष्णवीभिः सधवाङ्गनाभिश्च श्रीकृष्णस्मरणपूर्व्वकं कुङ्कुम-चन्दन-हरिद्राक्तसूत्रबन्धनं कार्य्यम्।

(२५) तत**श्चामरेण**—ॐ वातो वा मनो वा गन्धर्वा वा सप्तविंशतिः ते त्वग्रे समयुञ्जन् ते अस्मिन् यवं आदधूः।।

(२६) तत**श्चन्दनेन**—ॐ कः असि कतमः असि कस्मै त्वा काय त्वा सुश्लोक सुमङ्गल सत्य राजन्।

(२७) ततः सर्व्वद्रव्याण्येकीकृत्य वन्दापनं कुर्य्यात्—ॐ प्रतिपनसि प्रतिपदे त्वा, अनुपदसि अनुपदे त्वा, सम्पदसि सम्पदे त्वा, तेजोऽसि तेजसे त्वा।। इत्यनेन सर्वाङ्गं स्पृष्ट्वा,

(२८) चतुःप्रदीपं पञ्चप्रदीपं सप्तप्रदीपं वा प्रज्वाल्य निर्मञ्छनं कुर्य्यात्।

एवंविधिना वरकन्ययोरधिवासः।।

आचमन करनेके पश्चात् मूल ग्रन्थमें लिखे मन्त्रोंका पाठपूर्वक **श्रीविष्णुका स्मरण** करें। इसके पश्चात् **स्वस्ति-वाचन** करें—कुंकुम अथवा हल्दीचूर्णसे मिश्रित तण्डुल (चावल) हाथमें लेकर 'ॐ स्वस्ति नो गोविन्दः' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करते हुए उक्त तण्डुलको निक्षेपकर पुनः हाथ जोड़कर 'करोतु स्वस्ति मे कृष्णः' इत्यादि दोनों श्लोकोंका पाठ करें। तत्पश्चात् पाद्यादिके द्वारा विष्णुका अर्चन करें ।

अनन्तर एक-एक द्रव्यको हाथमें लेकर मन्त्रपाठपूर्वक पहले श्रीविष्णुके पादपद्मसे स्पर्श करावें, उसके बाद वर-कन्याके मस्तकका स्पर्श करावें। विवाह कार्यमें सूत्र द्वारा अधिवास करानेपर, उस स्थानमें लिखित मन्त्रोंका

नामापराधभयात् नान्दीमुखश्राद्धमत्र न कर्त्तव्यम्। किन्तु तेषां पितृणां परमसुखार्थं **श्रीगुरुपरम्परापूजनं कुर्य्यात्, तेभ्यो महाप्रसादञ्च दद्यात्,** वैष्णवब्राह्मणेभ्योऽन्नवस्त्रादिकं यथाशक्ति सहजेनैव देयं विष्णुप्रीतये विष्णुस्मरणपूर्व्वकम्। (१) अतःपरं कुड्योपरि घृतेन पञ्च सप्त वा परिमिता वसुधारा देया। तत्र महाभागवतं श्रीचेदिनं राजानं श्रीविष्णुमहाप्रसाद-पुष्पजल-नैवेद्यादिभिः प्रपूजयेत्।

उच्चारण और श्रीकृष्ण स्मरणपूर्वक, किसी वैष्णव ब्राह्मण द्वारा वरके हाथमें कुंकुम, चन्दन, हल्दी द्वारा रंगे हुए नौ गुण सूत्र एवं वैष्णवी सधवा महिलाके द्वारा कन्याके हाथमें सात गुण वैसा ही सूत्र बंधवा देना चाहिए।

नान्दीमुख श्राद्ध करनेसे नामापराध होनेका भय रहता है। इसलिए नान्दीमुख श्राद्ध नहीं करना चाहिए। किन्तु पितृपुरुषोंके परम सुख सम्पादनके लिए श्रीश्रीगुरुपरम्पराकी पूजा करें तथा पितृपुरुषोंको महाप्रसाद प्रदान करें। वैष्णवों एवं ब्राह्मणोंको सामर्थ्यके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक विष्णुकी प्रीतिके लिए विष्णुका स्मरण करते हुए दान करें। तत्पश्चात् दीवालपर घीके द्वारा पांच अथवा सात वसुधारा दें। वहींपर महाभागवत चेदीराजकी महाप्रसाद, जल, नैवेद्य आदि द्वारा पूजा करें।

---

(१) पहले श्रीश्रीगुरु-गौरांगका अर्चन करें, फिर वासुदेवका अर्चन करें, तत्पश्चात् भगवत्प्रसाद, निर्माल्य आदिके द्वारा यथाविधि श्रीगुरुपरम्पराका अर्चन करें। उसके पश्चात् विष्णु-वैष्णव सेवार्थ दान आदि करें, तदनन्तर श्रीभगवान्‌को भोग देकर उनकी आरती करें, उसके पीछे श्रीगुरु-वैष्णवोंको महाप्रसाद निवेदन करें। तत्पश्चात् वसुधारा दें। इस प्रकारके क्रमका अनुसरण करें।

(३) अथ श्रीवासुदेवार्च्चनम्

अथ विवाहदिवसे श्रीगोविन्दभक्तोऽनन्यशरणो दीक्षितो वर्णादिः प्रातः कृताह्निकः कृतस्नानः कृतनित्यकृत्यस्तत्र छायामण्डपे मण्डिते (श्रीविष्णुमन्दिरे वा) कृतकुशाद्यासन आचान्तः श्रीविष्णुस्मरणं कृत्वा (अर्च्चनपद्धतौ द्रष्टव्य) परममनोहर-विचित्रमण्डले घटं संस्थाप्य तद्घटोपरि ताम्रपात्रे संस्थाप्य श्रीशालग्रामं पुरुषसूक्तमन्त्रैः पूजयेत्। तत्रापि श्रीशालग्रामस्थ-श्रीमन्नारायणपूजने विवाहादिसर्व्व-कर्म्मणि नामापराध-सेवापराधभयात् गणेशादिपञ्चदेवान् आदित्यादिनव-ग्रहान् इन्द्रादिलोकपालान् गौर्यादिमातृगणादीनि च न पूजयेत्, किन्तु वैष्णवादीन् पूजयेत्।

यथा, प्रमाणं हि पाद्मे,—शुद्धसत्त्वमयो विष्णुः कल्याणगुण-सागरः। नारायणः परंब्रह्म विप्राणां दैवतं हरिः।। ब्रह्मण्यः

---

(३) **श्रीवासुदेवार्चन**—किसी भी वर्णका व्यक्ति सद्गुरुसे पंचसंस्कारोंमें दीक्षित और श्रीराधागोविन्दका अनन्य शरणागत भक्त होनेपर अपने विवाहके दिन प्रातःकालमें स्नान, आह्निक, नित्यकृत्य समापनकर सुसज्जित छायामण्डपमें अथवा श्रीविष्णुगृहमें प्रवेशकर कुश आदिके पवित्र आसनपर बैठकर आचमन और श्रीविष्णुका स्मरण करे (विष्णु स्मरणके लिए मंगलाचरण देखें)। इसके पश्चात् परम मनोहर विचित्र मण्डपमें घट स्थापन कर उसके ऊपर तांबेके पात्रमें श्रीशालिग्राम शिलाका स्थापनकर पुरुषसूक्त मन्त्रके द्वारा अर्चन करना चाहिए। विवाह आदि सभी कार्योंमें श्रीशालिग्रामरूपी नारायणके श्रीचरणमें **नामापराध और सेवापराधके भयसे गणेश आदि पंच देवता, आदित्य आदि नवग्रह, इन्द्र आदि लोकपाल और गौरी आदि मातृगणकी पूजा नहीं करनी चाहिए।**

इस विषयमें शास्त्रोंमें भूरि-भूरि प्रमाण हैं। पद्मपुराणमें—श्रीविष्णु

श्रीपतिर्विष्णुर्वासुदेवो जनार्द्दनः। ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो हरिरच्युतः।। स एव पूज्यो विप्राणां नेतरे पुरुषर्षभाः। मोहाद् यः पूजयेदन्यं स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्।। स्मरणादेव कृष्णस्य विमुक्तिः पापिनामपि। तस्य पादोदकं सेव्यं भुक्तोच्छिष्टञ्च पावनम्।। स्वर्गापवर्गदं नृणां ब्राह्मणानां विशेषतः। विष्णोर्निवेदितं नित्यं देवेभ्यो जुहुयाद्धरिः।। पितृभ्यश्चैव तद्दद्यात् सर्व्वमानन्त्यमश्नुते।। यो न दद्याद्धरेर्भुक्तं पितृणां श्राद्धकर्म्मणि। अश्नन्ति पितरस्तस्य विन्मूत्रं सततं द्विजाः।। तस्माद्विष्णोः प्रसादो वै सेवितव्यो द्विजन्मना। इतरेषां तु देवानां निर्म्माल्यं गर्हितं भवेत्।। सकृदेव हि योऽश्नाति ब्राह्मणो ज्ञानपूर्व्वतः। निर्म्माल्यं शङ्करादीनां स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम्। कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकाग्निना।। निर्म्माल्यं तु द्विजश्रेष्ठा रुद्रादीनां

शुद्धसत्त्वमय, निखिल कल्याणोंके सागर हैं, वे नारायण, परब्रह्म, विप्रोंके आराध्य-देवता श्रीहरि हैं। विष्णु—श्रीपति, वासुदेव, जनार्दन, ब्राह्मणोंके उपास्य ब्रह्मण्यदेव, पुण्डरीकाक्ष, गोविन्द, हरि एवं अच्युत हैं। हे श्रेष्ठ पुरुषो ! विप्रोंके पूज्य केवल वे ही हैं, दूसरे नहीं। जो मोहवश अन्य देवताओंकी पूजा करते हैं, वे निश्चय ही पाखण्डी हैं। श्रीकृष्णके शरणागत होने मात्रसे ही पापियोंको भी उन पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। उनका चरणोदक एवं महाप्रसाद स्वर्गापवर्गको देनेवाला है। इसलिए वे जीवमात्रके विशेषतः ब्राह्मणोंके सेव्य हैं। विष्णुको निवेदित हविके द्वारा (घृतके द्वारा) देवताओंका नित्य होम करना चाहिए। पितृगणको भी वही (विष्णु नैवेद्य) अर्पण करना चाहिए। ऐसा करनेसे अनन्त फल अर्थात् भगवत् भक्तिकी प्राप्ति होती है। हे द्विजो ! जो व्यक्ति पितृ-पुरुषोंके श्राद्ध कार्यमें श्रीहरिका उच्छिष्ट महाप्रसाद प्रदान नहीं करता उसके पितृ-पुरुष सदा विष्ठा और मूत्र भक्षण किया करते हैं। इसलिए द्विजोंको विष्णुका प्रसाद ही ग्रहण करना (भोजन करना) चाहिए। दूसरी ओर दूसरे देवताओंका निर्माल्य

दिवौकसाम्। रक्षोयपिशाचानां मद्यमांससुरासमम्।। तदंब्राह्मणैर्न भोक्तव्यं देवानां भुञ्जितं हविः। तस्मादन्यं परित्यज्य विष्णुमेव सनातनम्। पूजयध्वं द्विजश्रेष्ठा यावज्जीवमतन्द्रिताः।। अर्च्चयेन्मन्त्ररत्नेन विधिना पुरुषोत्तमम्। प्रसादाय वै कुर्य्यान्नित्यं भक्तिमतन्द्रितः। तस्यावरणपूजायां त्रिदशान्नार्च्चयेत् सुधीः। श्रीविष्णोः पूजयेत् सदा नित्यपार्षदवैष्णवान्।। अनन्यशरणो भक्तो नाम-मन्त्रेषु दीक्षितः। कदाचिन्नार्च्चयेद्देवान् गणेशादींस्तु वैष्णवः।। यत्र यत्र सुराः पूज्या गणेशाद्यास्तु कर्म्मिणाम्। विष्ण्वर्च्चने तत्र तत्र वैष्णवानां हि वैष्णवाः।। विष्वक्सेनं ससनकं सनातनमतःपरम्। सनन्दनसनत्कुमारौ पञ्चैतान् पूजयेत्ततः।। यस्मिन्नवग्रहा अर्च्यास्तत्र कव्यादयो नव। यत्र यजन्ति विधिना दिक्पालादींस्तु कर्म्मिणः। तत्र प्रपूजयेदेतान् विधिं भागवतं

ग्रहण करना उनके लिए अनुचित या निन्दनीय है। जो ब्राह्मण शंकर आदि दूसरे-दूसरे देवताओंका निर्माल्य जान-बूझकर एकबार भी ग्रहण करता है, तो वह निश्चय ही चाण्डाल होता है तथा करोड़ों कल्पोंतक नरकाग्निमें दग्ध होता रहता है। हे द्विजोत्तमो ! रुद्रादि देवताओं, यक्ष, राक्षस और पिशाचोंका निर्माल्य-मद्य, मांस और सुराके तुल्य होता है। इसलिए ब्राह्मणोंको अन्यान्य देवताओंका प्रसाद ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसलिए हे उत्तम वैष्णवो ! अन्य देवताओंको छोड़कर जीवनभर निरालस्य होकर सनातन विष्णुकी ही पूजा करो। विधिके अनुसार मन्त्र-रत्नोंके द्वारा पुरुषोत्तमका अर्चन करो, उनका प्रसाद अथवा उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए सदा आलस्य त्यागकर उनकी सेवा करो। श्रीविष्णुकी आवरण पूजामें दूसरे देवताओंका अर्चन न करो। सदा सर्वदा विष्णुके नित्य पार्षद वैष्णवोंकी ही पूजा करनी चाहिए। पाँच प्रकारके संस्कारोंमें नाममन्त्रमें दीक्षित अनन्यशरण भक्त वैष्णवोंको कभी भी गणेश आदि देवताओंका अर्चन नहीं करना चाहिए। जिन-जिन स्थलोंमें गणेश आदि

शुकम्।। सदाशिवं वैनतेयं नारदं कपिलं बलिम्। ततो भागवतं भीष्मं प्रह्लादमञ्जनासुतम्।। अम्बरीषञ्च जनकं महाभागवतं यमम्।। मनुं स्वायम्भुवं व्यासादिकञ्च वैष्णवोत्तमम्। युगे युगे च विख्यातानपरान् वैष्णवानपि।। हर्य्यर्च्चने यजेन्नित्यं न तु देवान् कदाचन्। यत्र मातृगणाः पूज्यास्तत्र ह्येताः प्रपूजयेत्।। सदा भगवती पौर्णमासी पद्मान्तरङ्गिका। गङ्गा कलिन्दतनया गोपी चन्द्रावली तथा।। गायत्री तुलसी वाणी पृथिवी गौश्च वैष्णवी। श्रीयशोदा देवहूतिः देवकी रोहिणीमुखा।। श्रीसीता द्रौपदी कुन्ती अपरा या महर्षयः। रुक्मिन्याद्यास्तथा चाष्ट महिष्य याश्च ता अपि।। गोपालोपासकश्चैव श्रीदामादीन् विशेषतः। एतस्यावरणत्वेन गोपालान् परिपूजयेत्।। श्रीकृष्णोपासकस्तु तदर्च्चने सर्व्वकर्म्मणि। ललिताद्याः सहचरीः ससखीरङ्गिणीयुताः।। पूजयेद्विधिना कार्ष्णो यतो वैष्णवदैवतः। नान्यान् कदाचिद्विबुधानुपदेवांश्च शुद्धधीः।। वैष्णवानाञ्च कार्याणां क्रियैषा सात्विकी यतः। न राजसी न तामसी पाषण्ड-धर्मभीतितः।।

देवता कर्मियोंके द्वारा पूजित होते हैं, उन-उन स्थानोंपर विष्वक्सेन, सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार—इन पांच महाभागवतोंकी पूजा करना वैष्णवोंके लिए कर्त्तव्य है। वैष्णव लोग नवग्रह पूजनके स्थानपर कवि, हवि, अन्तरीक्ष आदि नवयोगेन्द्रकी पूजा करें। कर्मी लोग जहाँ दिक्पालोंकी विधिपूर्वक पूजा करते हैं, वैष्णव वहाँ ब्रह्मा, महाभागवत शुकदेव गोस्वामी, सदाशिव, गरुड़, नारद, कपिल, बलि, भीष्मदेव, प्रह्लाद, हनुमान, अम्बरीष, जनक, महाभागवत यमदेव, स्वायम्भुव मनु एवं वैष्णवोत्तम व्यास आदिकी पूजा करेंगे। श्रीविष्णुके अर्चनके समय युग-युगमें प्रसिद्ध दूसरे वैष्णवगण भी पूजनीय हैं, किन्तु कभी भी देवताओंकी पूजा करना

पुनरत्रैव श्रीभगवन्तं प्रति भृगुवचनं,—अहो रूपमहो शीलमहो शान्तिरहो दया। अहो सुनिर्मला क्षान्तिरहो सत्त्वं गुणा हरे।। नैसर्गिकं शुभं सत्त्वं तवैव गुणवारिधे। नान्येषां विद्यते किञ्चित् सर्व्वेषां त्रिदिवौकसाम्।। ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च त्वमेव पुरुषोत्तम। ब्राह्मणानां त्वमेवेशो नान्यः पूज्यः सुरः कश्चित्।। येऽर्चयन्ति सुरानन्यान् त्वां विना पुरुषोत्तम। ते पाषण्डत्वमापन्नाः सर्व्वलोकविगर्हिताः।। विप्राणां वेदविदुषां त्वमेवेज्यो जनार्द्दन। नान्यः कश्चित् सुराणास्तु पूजनीयः कदाचन।। अशुद्धा ब्रह्मरुद्राद्या रजस्तमोविमिश्रिताः। त्वं शुद्धसत्त्वगुणवान् पूजनीयोऽग्रजन्मनाम्।। त्वत्पादसलिलं सेव्यं पितृणाञ्च दिवौकसाम्। सर्व्वेषां भूसुराणां च मुक्तिदं कल्मषापहम्।। त्वद्भुक्तोच्छिष्टशेषं वै पितृणां च दिवौकसाम्। भूसुराणां च सेव्यं स्यात् नान्येषां तु कदाचन।। इतरेषां तु देवानां अन्नं पुष्पं जलादिकम्। अस्पृश्यं तु भवेत सर्व्वं निर्म्माल्यं

कर्त्तव्य नहीं है। हे महर्षिगण ! वैष्णवोंको मातृगणकी पूजाके बदले भगवती पौर्णमासी, पद्मा, अन्तरंगिका, गंगा, यमुना, चन्द्रावली, गायत्री, तुलसी, सरस्वती, पृथिवी, वैष्णवी, गो, यशोदा, देवहूति, देवकी, रोहिणी, सीता, द्रौपदी, कुन्ती, रुक्मिणी आदि तथा अष्ट महिषीयोंकी पूजा करनी चाहिए। श्रीगोपाल उपासक श्रीगोपालके आवरणके रूपमें श्रीदाम आदि गोपालोंकी विशेष रूपसे पूजा करेंगे। कृष्ण उपासक कृष्णार्चन और सभी कर्मोंके सखी और रंगिनीगणसहित ललिता आदि सहचरियोंकी भी विधिपूर्वक पूजा करेंगे। ऐकान्तिक कृष्णभक्त वैष्णवदेवताके परायण होनेके कारण कभी भी अन्य देवता और उपदेवताओंकी पूजा न करेंगे। वैष्णव क्रियाकलापकी यही क्रियापद्धति है; क्योंकि यही सात्विकी विधि है। राजसी एवं तामसी क्रियाएँ वैष्णवोंके लिए करणीय नहीं हैं क्योंकि उसके द्वारा पाखण्ड धर्म अवलम्बित होनेका

सुरया समम् ।। तस्माद्वै ब्राह्मणो नित्यं पूजयित्वा सनातनम् । तत्तीर्थं भुक्तमन्नञ्च भजतैवानिशं बुधः ।। नान्यदेवं निरीक्षेत ब्राह्मणो न च पूजयेत् । नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यदायतनं विशेत् । तद्ददाति हि यो विप्र पितृणां श्राद्धकर्म्मणि । तद्भुक्तमन्नं तीर्थञ्च तत् सर्व्वं विफलं भवेत् ।। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । पतन्ति पितरस्तस्य नरके पूयशोणिते ।। निवेदितं तव विभो यो जुहोति ददाति वा । देवतानाञ्च पितृणामानन्त्यं ध्रुवमश्नुते ।। तस्मात्त्वमेव विप्राणां पूज्यो नान्योऽस्ति कश्चन । मोहाद्यः पूजयेदन्यं स पाषण्डी भवेत् ध्रुवम् ।। त्वं हि नारायणः श्रीमान् वासुदेवः सनातनः । विष्णुः

सदा भय रहता है ।

पुनः पद्मपुराणमें भृगु ऋषिने भगवान्‌को कहा है—हे हरि ! आपका रूप, शील, शान्ति, दया, सुनिर्मल क्षान्ति, सत्त्व और गुण ये सभी अपूर्व हैं । हे गुणसागर ! केवल आपमें ही मंगलमय सत्त्व सदा वर्त्तमान रहता है, दूसरे-दूसरे देवताओंमें इसका अभाव है । हे पुरुषोत्तम ! तुम्हीं ब्रह्मण्यदेव, सबके शरण्य, तुम ही एकमात्र ब्राह्मणोंके प्रभु हो । तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी दूसरा देवता उनका पूजनीय नहीं है । हे पुरुषोत्तम ! जो लोग तुम्हें छोड़कर दूसरे देवताओंका अर्चन करते हैं, वे पाषण्डत्वको प्राप्त होते हैं तथा सब जनोंके लिए निन्दनीय होते हैं । हे जनार्दन ! वेदज्ञ विप्रोंके केवल आप ही पूज्य हैं । दूसरे देवताओंमेंसे कोई भी पूज्य नहीं है । ब्रह्मा और रुद्रादि देवतागण रजोगुण और तमोगुण मिश्रित होनेसे अशुद्ध हैं, आप शुद्ध-सत्त्वमय और ब्राह्मणोंके एकमात्र पूजनीय हैं । आपका चरणामृत और महाप्रसाद समस्त पापोंका नाश करनेवाला तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला है । आप सभी पितृपुरुषों, देवताओं और ब्राह्मणोंके सेव्य हैं । आपके अतिरिक्त किसी देवताका पादोदक और उपभुक्त प्रसाद कदापि सेवनीय नहीं है । दूसरे देवताओंके निवेदित अन्न, पुष्प, जल आदि समस्त

सर्व्वगतो नित्यः परमात्मा महेश्वरः।। त्वमेव सेव्यो विप्राणां ब्रह्मण्यः शुद्धसत्त्ववान्।। पूज्यत्वाद् ब्राह्मणानां वै शुद्धसत्त्व-गुणादपि। सर्व्वेषामेव देवानां ब्राह्मणत्वमवाप्यते।। त्वामेव हि सदा विप्रा भजन्ति पुरुषोत्तम। ब्राह्मणत्वे बभूवुस्ते नान्ये तत्र न संशयः।।

किञ्च, यथा स्कान्दे सेतुखण्डे,—ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणः प्रोक्तः शुद्धसत्त्वाशयः सदा। देवादिदेवं गोविन्दमृते नान्यत् प्रपूजयेत्।। नित्ये नैमित्तिके काम्ये सर्व्वमाङ्गल्यकर्म्मणि। यदि मोहात् तु विबुधान् स चाण्डालो भवेद् ध्रुवम्।।

तथा ब्रह्मवैवर्त्ते,—मोहाद्यो ब्राह्मणो भूत्वा ह्यज्ञानाज् ज्ञानपूर्वतः। अर्चयेद्विबुधांश्चेत्तु विना विष्णुमधोगतिः।।

निर्माल्य मदिराकी भाँति अपवित्र एवं अस्पृश्य हैं। अतएव विज्ञ ब्राह्मण सर्वदा सनातन-देवकी पूजाकर उन्हींका पादोदक एवं प्रसाद ग्रहण करें। विज्ञ ब्राह्मण अन्य देवताओंका दर्शन और पूजन भी न करें। उनका प्रसाद भी ग्रहण न करें। वे दूसरे देवताओंके मन्दिरोंमें भी प्रवेश न करें। इसलिए जो विप्र पितृश्राद्धमें दूसरे देवताओंका उच्छिष्ट और पादोदक अर्पण करते हैं, वह सब कुछ व्यर्थ होता है। उनके पितृपुरुष करोड़ों कल्पोंतक रक्त और पीबमय नरक भोग करते हैं। जो व्यक्ति आपके निवेदित द्रव्योंसे देवताओंके लिए होम करते हैं तथा उसे पितृगणोंके लिए अर्पण करते हैं, वे निश्चय ही 'आनन्त्य' लाभ करते हैं—अर्थात् मुक्त होकर भगवत् चरणोंकी सेवाको प्राप्त करते हैं। इसलिए आप ही विप्रोंके पूज्य हैं—दूसरे नहीं जो लोग मोहवशतः दूसरोंकी पूजा करते हैं, वे निश्चय ही पाषण्डत्वको प्राप्त होते हैं। आप ही लक्ष्मीपति नारायण हैं, सनातन वासुदेव हैं, सर्वव्यापी विष्णु हैं और नित्य महेश्वर परमात्मा हैं। आप ही शुद्ध-सत्त्वमय ब्रह्मण्यदेव हैं, आप ही ब्राह्मणोंके एकमात्र सेव्य हैं। आप सभी ब्राह्मणोंके एवं देवताओंके पूज्य होनेके कारण आपकी

तथा श्रीउत्तरगीतायाम्,—वैष्णवान् भज कौन्तेय मा भजस्वान्यदेवताः। उपदेवांस्तथा यक्षरक्षोभूतगणानपि।। बृहद्विष्णुपुराणे,—मामृतेऽन्यांस्तु विबुधान् वैष्णवो ब्राह्मणोऽथवा। यद्यर्चयेदवैष्णवांश्चाण्डालत्वमवाप्नुयात्।। एतानि प्रमाणानि सुगमत्वान्न व्याख्यातानि। अपराणि प्रमाणानि बहुतराणि ग्रन्थ-बाहुल्यान्न लिखितानि। श्रीमद्भागवत-प्रमाणं—मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ। नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः।। रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजन्ति वै। पितृ-भूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः।। (भाः १/२/२६,२७)।।

तस्मात् श्रीविष्णुपूजायां तदावरणपूज्यत्वेन प्रथमं गणेशादि-पूजाऽकरणप्रत्यवायपरिहारार्थं श्रीविष्वक्सेन-सनक-सनातन-सनन्दन-सनत्कुमारानेतान् **पञ्चमहाभागवतान्** पूजयेत्। तत्र

पूजाके द्वारा एवं शुद्धसत्त्वगुणोंके द्वारा ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। हे पुरुषोत्तम! ब्राह्मणगण सदा आपका भजन करते हैं। इसलिए वे ब्राह्मणत्वको लाभ करते हैं दूसरे नहीं, इसमें तनिक भी संशय नहीं। स्कन्दपुराणके सेतुखण्डमें ऐसा कहा गया है—नित्य शुद्धसत्त्वमय चित्तवाले ब्रह्मज्ञ व्यक्तिको ब्राह्मण कहते हैं। नित्य, नैमित्तिक, काम्य सर्वमंगलमय कार्योंमें देवादिदेव गोविन्दको छोड़कर दूसरे देवताओंकी पूजा नहीं करनी चाहिए। जो मोहवश दूसरे देवताओंकी पूजा करता है, वह निश्चय ही चाण्डाल होता है। ब्रह्मवैवर्त्तमें भी ऐसा लिखा गया है—जो व्यक्ति ब्राह्मण होने पर भी मोहवशतः जान-बूझकर या अनजानमें भी विष्णुके अतिरिक्त अन्य देवताओंकी पूजा करता है, तो उसकी अधोगति होती है। उत्तरगीतामें भी कहा गया है—हे कौन्तेय! वैष्णव-देवताओंकी पूजा करो, अन्य देवता, उपदेवता, यक्ष-रक्षः-भूत-प्रेत—इनकी पूजा नहीं करनी चाहिए। बृहत्विष्णुपुराणमें भी ऐसा लिखा गया है—यदि वैष्णव अथवा ब्राह्मण मुझ विष्णुको छोड़कर दूसरे अवैष्णव देवताओंका अर्चन करते हैं, तो वे चाण्डालत्वको प्राप्त होते हैं।

नवग्रहपूजाद्यकरणे प्रत्यवायपरिहारार्थं श्रीकविहव्यन्तरीक्षादीन् **नवयोगेन्द्रान्** प्रपूजयेत्। तत्रेन्द्रादिदिक्पालादिपूजाऽकरण-प्रत्यवायपरिहारार्थं महाभागवतश्रीपितामह-शुकदेव-सदाशिव-गरुड़-नारद-कपिल-बलि-भीष्म-प्रह्लाद-हनुमदम्बरीष-जनक-शमन-स्वायम्भुवमनूद्धव-व्यासादय, एतान् **श्रीभागवतोत्तमान्** सत्य-त्रेता-द्वापर-कलियुगेषु ये ये महाभागवतोत्तमास्तानपि पूजयेत्। तत्र गौर्यादिमातृगणपूजाऽकरणप्रत्यवायपरिहारार्थं पौर्णमासी-लक्ष्म्यन्तरङ्गा-गङ्गा-यमुना-गोपी-वृन्दावती-गायत्री-तुलसी-सरस्वती-पृथिवी-गावस्तथा, श्रीयशोदा-देवहूति-देवकी-रोहिणी-सीता-द्रौपदी-कुन्ती-रुक्मिणी-सत्यभामा-जाम्बवती-नाग्नजिती-लक्ष्मणा-कालिन्दी-भद्रा-मित्रविन्दा एता अपरा या वैष्णव्यस्ता अपि परिपूजयेत्। श्रीगोपालोपासकः श्रीदामादीन् गोपालान् अस्य पार्षदत्वेन पूजयेत्। अपरः **श्रीराधाकृष्णोपासको** भक्तः

ये सभी प्रमाण सरल और सुबोध हैं, इसलिए इसकी व्याख्या नहीं की गयी है। ग्रन्थ विस्तारके भयसे दूसरे-दूसरे प्रमाणोंका भी उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है। श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा कहा गया है असूयाहीन अर्थात् दूसरे देवताओंके अनिन्दक, शान्तस्वभाव मुमुक्षगण भीषणस्वरूप पितृ-भूतपति आदिको परित्यागकर श्रीनारायणके अवतारोंका भजन करेंगे। किन्तु पितृ, भूत, प्रजापतियों जैसे प्रकृति विशिष्ट रजस्तमः स्वभाववाले व्यक्ति धन, ऐश्वर्य, पुत्रादिकी कामनासे पितृ, भूत, प्रजापति आदिका पूजन करते हैं।

इसलिए **श्रीविष्णु पूजामें** गणेश आदि देवताओंकी पूजा नहीं करनेसे जो दोष होता है, इसे दूर रखनेके लिए श्रीविष्णुके आवरण-स्वरूप श्रीविष्वक्सेन, सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार—इन **पंचमहा-भागवतोंकी** पूजा करनी चाहिए। नवग्रहकी पूजाके बदले श्रीकवि, हवि,

श्रीललिताद्याः सखीसहचरी-रङ्गिनीगणयुता अनयोः श्रीयुगलयोः पार्षदत्वेनावश्यमेव परिपूजयेत्। ततोऽपरे श्रीमन्नारायणस्य श्रीमत्स्यादिविविधावतारोपासकास्तु तत्तन्निजनिजसेवक-पार्षदत्वेन तेषां तेषां तान् तान् पार्षदभक्तान् प्रपूजयेयुः। अयं भावार्थः। एवं विधिना **श्रीमद्वासुदेवं** षोड़शोपचारैर्द्वादशोप-चारैर्दशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा (१) पार्षदैः सह पूजयित्वा **पुरुषसूक्त-मन्त्रैरपर-सत्त्वगुणसम्वलितसद्वेदमन्त्रैर्वा आगमोक्तैर्म्मन्त्रैर्वा,**

अन्तरीक्ष आदि **नवयोगेन्द्रकी** पूजा करनी चाहिए। इन्द्र आदि दिक्पालगणोंकी पूजा न करनेसे जो दोष होता है, उस दोषसे बचनेके लिए महाभागवत ब्रह्मा, शुकदेव, सदाशिव, गरुड़, नारद, कपिल, बलि, भीष्म, प्रह्लाद, हनुमान, अम्बरीष, जनक, यमदेव, स्वायम्भुव मनु, उद्धव, व्यास, प्रभृति **भागवतोत्तमगणों** एवं सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुगके सभी महाभागवतोंकी पूजा करनी चाहिए। उसी तरह गौरी आदि मातृगणोंकी पूजाके बदले पौर्णमासी, लक्ष्मी, अन्तरंगा, यमुना, गोपी, वृन्दावती, गायत्री, तुलसी, सरस्वती, पृथिवी, गो, यशोदा, देवहूति, देवकी, रोहिणी, सीता, द्रौपदी, कुन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, नाग्नजिती, लक्ष्मणा, कालिन्दी, भद्रा, मित्रवृन्दा एवं अन्य **वैष्णवियोंकी** पूजा करनी चाहिए। श्रीश्री-राधाकृष्णके उपासकोंको **श्रीयुगल किशोर-किशोरीके परिकरोंके रूपमें** सखी, सहचरी, रंगिनी आदि सहित **श्रीललिता आदि सखियोंकी** अवश्य

---

(१) षोड़शोपचार—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार। (ह. भ. वि. ६ष्ठ वि. आसनाद्यर्पण)

द्वादशोपचार—आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार।

दशोपचार—आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार।

पञ्चोपचार—आसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प।

ततोऽधिवासं विधानोक्तं कुर्य्यात्। **केवलं श्रीभगवन्तं विना, तथा श्रीकार्ष्णादि-सकलवैष्णवान् श्रीविष्वक्सेनादीन् विना नित्यनैमित्तिककाम्यापरसकलमाङ्गल्यादिषु सर्व्वकर्म्मसु स्वप्नेऽपि प्राणान्ते नैव गणेशादि-विबुधान् सर्व्वान् पूजयेत् गृही वैष्णवो यः कोऽपि ब्राह्मणादिः॥**

---

(४) अथ विवाहकर्म्म

अथ विवाहकर्म्माभिधीयते।

तत्र [**ज्ञातिकर्म्म** (४ क), यथा]—विवाहदिवसे मुद्गयवमाष-मसूराणां श्लक्ष्नचूर्णान्येकीकृत्य कन्यायाः शरीरे म्रक्षयित्वा—(१) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः, श्रीविष्णुः देवता, ज्ञातिकर्म्मणि कन्यायाः शरीरप्लावने विनियोगः,—ॐविष्णुदेव

ही पूजा करनी चाहिए। श्रीनारायणके मत्स्यादि विविध अवतारोंके उपासक भक्तोंको उन-उन अवतारोंके पार्षदोंकी पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार विधिसे पार्षदोंके साथ भगवान् वासुदेवकी षोडश, द्वादश, दस वा पंच उपचारसे पुरुषसूक्त मन्त्रोंसे अथवा सत्त्वगुणयुक्त सत्‌वेदमन्त्रों अथवा आगममें कहे गये मन्त्रोंसे पूजा कर विधिविधानके अनुसार अधिवास करना चाहिए। कोई भी ब्राह्मण आदि गृही-वैष्णव नित्य, नैमित्तिक, काम्य और दूसरे-दूसरे सभी मंगल कार्योंमें केवल श्रीभगवान्, कार्ष्ण आदि सभी वैष्णवों, विष्वक्सेन आदि परिकरोंको छोड़कर गणेश आदि देवताओंकी पूजा प्राण जाने पर भी स्वप्नमें भी नहीं करे।

(४) **विवाहकार्य**—अनन्तर विवाह कर्मके सम्बन्धमें लिखा जा रहा है। इसके अन्तर्गत ज्ञातिकर्म (क) यथा—विवाहके दिन मूँग, जौ, उड़द और मसूरका सूक्ष्म चूर्ण (उबटन) बनाकर कन्याके शरीरमें लगायेंगे। उसके पश्चात् एक पत्रमें पतिका नाम लिखकर उसे जलपूर्ण कलसीके भीतर

श्रीविष्णुनामासि, समानय अमुं (अत्र पतिनाम वक्तव्यं), प्रह्वा ते अभवत्, परमत्र जन्माग्नेः तपसो निर्म्मितोऽस्ति स्वाहा'— अनेन अमुमिति स्थाने पतिनाम लिखित्वा उदकपूर्णकुम्भे निक्षिप्य, कुम्भस्थवारिणा शिरः प्रभृति कन्यां स्नापयेत्। ततः (२) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः मध्येज्योतिर्जगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता ज्ञातिकर्म्मणि कन्याया नाभेरधोदेशप्रक्षालने विनियोगः, ॐ इमं अधोदेशं नाभेः मधुना प्रक्षालयामि, प्रजापतेः मुखमेतत् द्वितीयं, तेन पुंसोऽभिभवासि सर्व्वान् अवशान्, वशिनी असि राज्ञी स्वाहा'— अनेन किञ्चित् शिरसि दत्त्वा क्रोड़े बहुतरं जलं दद्यात्। (३) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता ज्ञातिकर्म्मणि कन्यायाः शिर-आदि-पाद-पर्यन्त-सर्व्वशरीरप्लावने विनियोगः, ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं स्वाहा'—अनेनापि पूर्व्वदेव शिरसि किञ्चिदुदकं दत्त्वा तदितरदेशे बहुजलं दद्यात्, यतः सर्व्वदेहः प्लावितो भवति। इति ज्ञातिकर्म्म।।

(४ख) सम्प्रदानम्

अथ सम्प्रदाता लग्नसमये सम्प्रदानशालायां उत्तरतो धेनुं बद्धा विष्टरादिकं सज्जीकृत्य आचम्य उत्तराभिमुखं

डालकर मूलमें लिखे १-संख्यक मन्त्रका पाठकर कुम्भस्थ जलके द्वारा मस्तकसे आरम्भकर कन्याको स्नान कराना चाहिए। तत्पश्चात् मूलस्थ २-संख्यक मन्त्रका पाठकर कन्याके मस्तकपर थोड़ासा जल देकर उसके क्रोड़ देशमें प्रचुर जल डालना चाहिए। अनन्तर मूलमें लिखे ३-संख्यक मन्त्रका पाठकर मस्तकपर जल देकर कन्याके सर्वांगपर प्रचुर जल देना चाहिए, जिससे संपूर्ण देह प्लावित हो जाय।। इति ज्ञातिकर्म।।

(४ख) **सम्प्रदान**—अनन्तर सम्प्रदाता लग्नके समय सम्प्रदान गृहके

उपविष्टस्तिष्ठेत्। ततः सम्मुखोपस्थिते वरे श्रीविष्णुस्मरणं **स्वस्तिवाचनञ्च कृत्वा** (अर्च्चन-पद्धत्यां द्रष्टव्यं) वरं वृणुयात्। **यथा—सम्प्रदाता** कृताञ्जलिर्वरं वदेत्—'ॐ साधु भवान् **आस्ताम्**'। जामाता वदेत्— 'ॐ साधु अहं आसे'। सम्प्रदाता **वदेत्**—'ॐ अर्च्चयिष्यामो भवन्तम्'। जामाता वदेत्—'ॐ **अर्च्चय**'। ततः सम्प्रदाता गन्ध-माल्य-यथाशक्त्यङ्गुरीय-**यज्ञोपवीत**-वासोयुगानि जामात्रे समर्प्य कृताञ्जलिर्वदेत्—'ॐ **विष्णुः** ॐ तत्सत् अद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे **अमुकपक्षे** अमुकतिथौ कन्यादानार्थं एभिः बन्धादिभिः अभ्यर्च्च **भवन्तं** अहं वरत्वेन वृणे'। जामाता वदेत्—'ॐ वृतोऽस्मि'। **ततः सम्प्रदाता** इमं मन्त्रं पठेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः **अनुष्टुप्** छन्दः अर्हनीया गौः विष्णुः देवता गवोपस्थापने **विनियोगः**—'ॐ अर्हणा पुत्रवाससा धेनुरभवत् यमे, सा नः **पयस्वती** दुहाम् उत्तरामुत्तरां समाम्'। ततो जामाता पठति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दो विराड् विष्णुः देवता **उपविशद्**-अर्हणीयजपे विनियोगः—ॐ इदमहमिमां पद्यां विराजम्

उत्तर दिशामें एक गायको बाँधकर, विष्टर (आसन) आदि सज्जितकर आचमनपूर्वक उत्तरमुखी होकर बैठे। वरके सम्मुख उपस्थित होनेपर सम्प्रदाता श्रीविष्णुस्मरण और स्वस्तिवाचनकर (अर्चन पद्धतिमें द्रष्टव्य है) वरको वरण करे। यथा—सम्प्रदाता हाथ जोड़कर वरको कहे—'ॐ साधु' इत्यादि। जामाता बोले—'ॐ साधु' इत्यादि। अनन्तर सम्प्रदाता—'ॐ अर्च्चयिष्यामः' इत्यादि। जामाता—'ॐ अर्च्चय'। अनन्तर सम्प्रदाता गन्ध, माल्य यथाशक्ति अँगूठी, यज्ञोपवीत, धोती और चादर दो वस्त्र जामाताको अर्पणकर हाथ जोड़कर बोले—'ॐ विष्णुः' इत्यादि। जामाता—'ॐ वृत' इत्यादि। तत्पश्चात् सम्प्रदाता मन्त्र पाठ करे— 'ॐ प्रजापति'

अन्नाद्याया अधितिष्ठामि'—इमं मन्त्रं जपन् आसने प्राङ्मुख उपविशति। ततः सम्प्रदाता साग्रपञ्चविंशतिकुशपत्रैः सार्द्धद्विर्व्वामावर्त्तग्रन्थिरचितम अधोमुखं विष्टरमुत्तराग्रम् उत्तानहस्ताभ्यां गृहीत्वा, 'ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्', इत्यभिदधानो जामात्रे विष्टरमपर्यति। जामाता, 'ॐ विष्टरं प्रतिगृह्णामि', इति विष्टरं प्रतिगृह्णाति। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्द औषध्यो विष्णुः देवता विष्टरस्य आसनदाने विनियोगः—ॐ या औषधीः सोमराज्ञीः बह्वीः शतविचक्षणाः, ता मह्यमस्मिन् आसने अच्छिद्राः शर्म्म यच्छत'—इत्यासने विष्टरमुत्तराग्रं दत्त्वोपविशति। ततः पुनरपि सम्प्रदाता तादृशमेव विष्टरं गृहीत्वा, 'ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्', इत्यभिदधानस्तथैव विष्टरमर्पयति। जामाता 'ॐ विष्टर प्रतिगृह्णामि', इति तथैव विष्टर गृहीत्वा पठेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्द औषध्यो विष्णुः देवताः विष्टरस्य पादयोरधस्तद्दाने विनियोगः—ॐ या औषधीः सोमराज्ञीः

इत्यादि। तत्पश्चात् जामाता—'ॐ प्रजापतिः ...... अधितिष्ठामि' मन्त्र पाठकर आसनके ऊपर पूर्वमुख होकर बैठे। तत्पश्चात् सम्प्रदाता अग्रभागके सहित २५ कुशपत्रोंको ढाई कुश पत्रके द्वारा वामावर्त्तस ग्रन्थिबद्धकर उन कुशग्रन्थियोंको अधोमुख (नीचे मुख) और उत्तराग्रभावसे ऊपरकी तरफ हथेलियोंको करते हुए उसे ग्रहणकर 'ॐ विष्टरः' इत्यादि मन्त्र द्वारा जामाताको अर्पण करे। जामाता 'ॐ विष्टरः' इत्यादि मन्त्रके द्वारा उसे ग्रहणकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठपूर्वक आसनपर उत्तराग्र विष्टर स्थापनकर बैठे। सम्प्रदाता पुनः इस प्रकार विष्टर ग्रहणकर मन्त्रसे उसी प्रकार जामाताको दे। जामाता पूर्ववत् ग्रहणकर 'ॐ प्रजापति' इत्यादि मन्त्र पाठ करते हुए दोनों चरणोंके नीचे उत्तराग्र विष्टर स्थापन करे। अनन्तर सम्प्रदाता जलपात्र ग्रहणकर 'ॐ पाद्याः' इत्यादि मन्त्रसे

विष्ठिताः पृथिवीम् अनु, ता मह्यमस्मिन् पादयोः अच्छिद्राः शर्म्म यच्छत'—इति पादयोरधस्ताद् उत्तराग्रं विष्टरं स्थापयेत्। अथ सम्प्रदाता पानीयपात्रं गृहीत्वा, 'ॐ पाद्याः पाद्याः पाद्याः प्रतिगृह्यन्ताम्', इत्यभिदधानः पाद्या अर्पयति। जामाता च, 'ॐ पाद्याः प्रतिगृह्णामि', इति गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः विराड्गायत्री छन्दः आपो विष्णुः देवताः पादप्रक्षालनार्थोदकवीक्षणे विनियोगः, ॐ यतो देवीः प्रतिपश्यामि आपः ततो मा ऋद्धिरागच्छतु'—इत्यनेन उदकं वीक्षेत। ततो जामाता तस्मादेव पात्रादुदकाञ्जलिं गृहीत्वा, 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः विराड्गायत्री छन्दः आपो विष्णुः देवता सव्यपादप्रक्षालने विनियोगः, ॐ सव्यं पादम् अवनेनिजे, अस्मिन् राष्ट्रे श्रियं दधे'—इत्यनेन वामपादे उदकाञ्जलिं दद्यात्। ततः पुनरपि उदकाञ्जलिं गृहीत्वा, 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः विराड्गायत्री छन्दः आपो विष्णुः देवता दक्षिणपादप्रक्षालने विनियोगः, ॐ दक्षिणं पादम् अवनेनिजे, अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयामि'—अनेन दक्षिणपादे उदकाञ्जलिं दद्यात्। ततः पुनरुदकाञ्जलिं गृहीत्वा, 'ॐ प्रजापति विष्णु ऋषिः विराड्गायत्री छन्दः आपो विष्णुः देवता उभयपादप्रक्षालने विनियोगः, ॐ पूर्व्वम् अन्यं परम् अन्यं उभयपादौ अवनेनिजे, राष्ट्रस्यर्द्ध्या अभयस्यावरुद्ध्यै'—अनेन पादद्वयमध्ये उदकाञ्जलिं दद्यात्। ततः सम्प्रदाता

पाद्य अर्पण करे। जामाता 'ॐ पाद्याः' इत्यादि मन्त्रसे उसे ग्रहणकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रके द्वारा उस जलको देखे। अतःपर जामाता उसी पात्रसे एक अञ्जलि जल लेकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे उस जलको बायें चरणपर दे। पुनः और एक अञ्जलि जल ग्रहणकरके 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे दोनों चरणोंपर दे। अतःपर सम्प्रदाता पात्रमें

साक्षत-दूर्वापल्लवान् शङ्खादिपात्रे निधाय, 'ॐ अर्घ्यं अर्घ्यं अर्घ्यं प्रतिगृह्यतां', इति जामात्रे अर्घ्यं अर्पयति। जामाता, 'ॐ अर्घ्यं प्रतिगृह्णामि', इति गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अर्घ्यरूपो विष्णुः देवता अर्घ्यप्रतिग्रहणे विनियोगः, ॐ अन्नस्य राष्ट्रिरसि राष्ट्रिस्ते भूयासं'—अनेनार्घ्यं शिरसि दद्यात्। ततः सम्प्रदाता पुनरुदकपात्रं गृहीत्वा, 'ॐ आचमनीयं आचमनीयं आचमनीयं प्रतिगृह्यतां', इति जामात्रे समर्पयति। जामाता, 'ॐ आचमनीयं प्रतिगृह्णाामि', इत्युदकपात्रं गृहीत्वा पठेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः आचमनीयं विष्णुः देवता आचमनीयाचमने विनियोगः, 'ॐ यशोऽसि यशो मयि धेहि'—अनेनोत्तराभिमुखीभूय आचामेत्। ततः सम्प्रदाता घृतदधिमधु-युक्तं मधुपर्कं पवित्रपात्रे निधाय पात्रान्तरेणपिहितं गृहीत्वा पठेत्, 'ॐ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यतां', इति मधुपर्कमर्पयति। जामाता, 'ॐ मधुपर्कं प्रतिगृह्णामि', इति गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः मधुपर्को विष्णुः देवता अर्हणीयमधुपर्कग्रहणे विनियोगः, ॐ यशसो यशोऽसि'—अनेन मधुपर्कं गृहीत्वा भूमौ संस्थाप्य,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः मधुपर्को विष्णुः देवता अर्हणीय-मधुपर्कप्राशने विनियोगः, ॐ यशसो भक्षोऽसि, महसो भक्षोऽसि, श्रीर्भक्षोऽसि, श्रियं मयि धेहि'—अनेन मन्त्रेण बारत्रयं भक्षयित्वा पुनः सकृत् तुष्णीं भक्षयेत्।

शंख, अक्षत् और दूर्वा, पल्लव आदि स्थापनकर 'ॐ अर्घ्यं' इत्यादि मन्त्रसे जामाताको अर्पण करे। जामाता 'ॐ अर्घ्यं' इत्यादि मन्त्रसे उसे ग्रहणकर 'ॐ अन्नस्य' इत्यादि मन्त्र द्वारा उक्त अर्घ्यको अपने मस्तकपर दे। तत्पश्चात् सम्प्रदाता पुनः जलपात्र लेकर 'ॐ आचमनीयं' इत्यादि

ततः पूर्व्वाभिमुखं वरं सम्प्रदाता उत्तराभिमुखः अथवा पश्चिमाभिमुखो भूत्वा कन्यासम्प्रदानं कुर्यात्।

यथा मनुः,—सर्व्वत्र प्राङ्मुखो दाता ग्रहीता च उदङ्मुखः। अयमुक्तो विधिर्दाने विवाहे तु विपर्ययः।। सर्व्वत्र दाने अन्नजलादि-विविधसकलदानविषये दाता प्राङ्मुखः पूर्व्वमुखो भवेत्, ग्रहीता उदङ्मुख उत्तरमुखो भवेत्। अयं विधिः सर्व्वमुनिभिरुक्तः कथितो, नात्र सन्देहः। किन्तु विवाहे स एव व्यतिक्रमो भवति। व्यतिक्रममाह—कन्यासम्प्रदानकर्त्तुरुदङ्मुखत्वं कन्याग्रहणकर्त्तुः प्राङ्मुखत्वमेवेतिनिर्गलितार्थः। तथा हारीतः—दानं पूर्व्वमुखं कुर्य्यात् सर्व्वमन्नजलादिकम् ।आर्य्यावर्त्ते सम्प्रदाता कन्यादानमुदङ्मुखः।। किञ्च विष्णुः—प्राङ्मुखः सर्व्वदानेषु दाता भवति सर्व्वदा। कन्याप्रदस्तु सर्व्वत्र वै भवेदुत्तरामुखः।। तथा हयशीर्षपञ्चरात्रे—वराय प्राङ्मुखायेह पूताय ह्युत्तरा-मुखः। पश्चिमाभिमुखीं कन्यां पिता दद्यात् सुलक्षणाम्।।

मन्त्रसे उसे जामाताको अर्पण करे। जामाता 'ॐ आचमनीयं' इत्यादि मन्त्रसे उसे ग्रहणकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठपूर्वक उत्तरमुखी होकर आचमन करे। तत्पश्चात् सम्प्रदाता घृत, दधि, मधुयुक्त मधुपर्क पवित्र पात्रमें स्थापनकर दूसरे पात्र द्वारा उसे आच्छादनपूर्वक अपने हाथसे लेकर 'ॐ मधुपर्कः' इत्यादि मन्त्रसे जामाताको दे। जामाता 'ॐ मधुपर्क' इत्यादि मन्त्रसे उसे ग्रहणकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे मधुपर्क भूमिपर स्थापनकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र उच्चारणपूर्वक उसे तीन बार भक्षण करे। पुनः बिना मन्त्रके ही एक बार पुनः भक्षण करे। तत्पश्चात् सम्प्रदाता उत्तरमुखी वा पश्चिममुखी होकर पूर्वमुखी बैठे हुए वरको कन्या सम्प्रदान करे।

यथा मनुसंहितामें—दाता सब समय पूर्वमुख और ग्रहीता उत्तरमुख बैठे, यह दानकी विधि है। किन्तु विवाहमें ठीक इसके विपरीत होता है।

ततो जामाता आचान्तो मङ्गलौषधिलिप्तेन दक्षिणहस्तेन तादृशमेव कन्याया दक्षिणहस्तं ग्रहीत्वा स्वदक्षिणहस्तोपरि निदध्यात्। ततः सौभग्यवती पतिपुत्रवती नारी मङ्गलपूर्व्वकं कुशेन (माल्ययुक्तेन) हस्तद्वयं बध्नाति। ततः सम्प्रदाता गन्ध-पुष्प-तुलसी-फलसहितमुदकपात्रं गृहीत्वा श्रीविष्णुस्मरणं कुर्य्यात्। ततः—

'ॐ विष्णुः ॐ तत्सत् अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे, श्वेतवराहकल्पे (वा पाद्मकल्पे), वैवस्वताख्यमन्वन्तरे, अष्टाविंशतिकलियुगस्य प्रथमसन्ध्यायां ब्रह्मविंशतौ वर्त्तमानायां, यथानाम शुभसम्वत्सरे, यथायने, अमूक-ऋतौ, अमूक-मासि, अमुक-पक्षे, अमुक-राशिस्थिते भास्करे, अमुक-तिथौ अमुक-वारान्वितायां अमुक-नक्षत्रसंयुतायां, श्रीचन्द्रमसि यथा-स्थानावस्थिते भौमादिग्रहयोग-करण-मूहूर्त्तशकादिषु, जम्बुद्वीपे

अन्न, जल आदि नानाविध द्रव्योंके सर्वप्रकारके दान-विषयमें दाता पूर्वमुख रहे, ग्रहीता उत्तरमुख रहे—यह विधि मुनियोंने कही है; इसमें सन्देह नहीं। किन्तु विवाहमें इसके विपरीत होता है। इसमें यह व्यतिक्रम होता है—कि कन्याको सम्प्रदान करनेवाला कर्त्ता उत्तरमुख रहे और कन्या-ग्रहीता पूर्वमुख रहे। हारीतसंहितामें—आर्यावर्त्तमें दाता पूर्वमूख होकर अन्न, जल इत्यादि समस्त दान करे, उत्तरमुख होकर कन्यादान करे। विष्णुसंहितामें—सब प्रकारके दानमें दाता पूर्वमूखी होकर रहे, कन्यादाता सब समय उत्तरमुखी रहे। हयशीर्षपञ्चरात्रमें उत्तरमुखी पिता पूर्वमुखी वरको पश्चिमाभिमुखी सुलक्षणा कन्या दान करेंगे। तत्पश्चात् जामाता आचमनपूर्वक मंगलऔषधिलिप्त अपने दाहिने हाथसे वैसे ही कन्याका दक्षिण हस्त स्थापन करे। अनन्तर पतिपुत्रवती सौभाग्ययवती नारी माल्ययुक्त कुशके द्वारा मंगलाचारपूर्वक दोनोंके हाथ बाँध देंगी। तत्पश्चात् सम्प्रदाता तिल, तुलसी, कुश, कुसुम, फलसहित जलपात्र ग्रहणकर

भारतखण्डे मेधीभूतस्य सुमेरोः दक्षिणे लवणार्णवस्योत्तरे कोणे गङ्गायाः पश्चिमे (वा अन्यस्मिन्) भागे पुराणभूमौ श्रीशालग्राम-शिला-गो-ब्राह्मण-वैष्णव-वह्नि-सन्निधौ अस्मिन् विशिष्टे भारतवर्षाख्यपुण्यभूप्रदेशे अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुक-वेदान्तर्गतस्य अमुकशाखैकदेशाध्यायिनः अमुकदेवशर्म्मणः (१) प्रपौत्रय, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदान्तर्गतस्य अमुक-शाखैकदेशाध्यायिनः अमुकदेवशर्म्मणः पौत्राय, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदान्तर्गतस्य अमुकशाखैकदेशाध्यायिनः अमुकदेवशर्म्मणः पुत्राय, अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुक-वेदान्तर्गताय अमुकशाखैकदेशाध्यायिने श्रीअमुकदेवशर्म्मणे विशिष्टवराय,—अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदान्तर्गतस्य अमुकशाखैकदेशाध्यायिनः अमुकदेवशर्म्मणः प्रपौत्रीं, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकवेदान्तर्गतस्य अमुकशाखैकदेशाध्यायिनः अमुकदेवशर्म्मणः पौत्रीं, अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुक-वेदान्तर्गतस्य अमुकशाखैकदेशाध्यायिनः अमुकदेवशर्म्मणः पुत्रीं,

---

श्रीविष्णुका स्मरण करे। (अर्चन पद्धति द्रष्टव्य है) अनन्तर 'ॐ विष्णुः ॐ तत्सत्' इत्यादि सम्प्रदान मन्त्र पाठकर सम्प्रदाता वर-कन्याके हाथमें तिलकुसुमादि सहित वही तुलसीजल दे। अतःपर जामाता 'ॐ स्वस्ति' कहकर 'ॐ नारायणाय विद्महे' इत्यादि वैष्णव गायत्रीका जप करे। तत्पश्चात्—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।। इस महामन्त्रके द्वारा श्रीश्रीराधाकृष्णका स्मरण करे। तत्पश्चात् 'ॐ कन्येयं' इत्यादि पाठपूर्वक 'ॐ क इदं' इत्यादि

---

(१) पाञ्चरात्रिक शुद्ध वैष्णवगण अमुकदेवशर्मणके स्थानपर श्रीगुरुदेवके निकट प्राप्त नामका उल्लेख करें। यथा—श्रीगोपालदास अधिकारी, अथवा—गोपालदास शर्मा।

अमुकगोत्राम् अमुकप्रवराम् अमुकवेदान्तर्गताम् अमुकशाखैदेशाध्यायिनीं श्रीमतीम् अमुकाभिधानाम् एतां कन्यां सवस्त्रां यथाशक्त्यलङ्कृताम् अरोगिनीम् अप्रवासिनीम् यथाकालोपस्थापिनीं ॐ प्रजापति-विष्णुदेवताकां श्रीश्रीराधाकृष्णस्मारणपूर्वकं श्रीअमुकदेवशर्म्मद्वारा स्वयं श्रीश्रीराधाकृष्णो दत्ताम्'—इति वरकन्यायोर्हस्तोपरि तत्तुलसीजलं गन्धपुष्पादिसंयुक्तं अर्पयेत्। ततो जामाता, 'ॐ स्वस्ति' इति ब्रुयात्, ततः श्रीमतीं वैष्णवीं गायत्रीं जपेत्—'ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'; अथवा 'ॐ त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।' ततः श्रीश्रीराधाकृष्णस्मरणं कुर्य्यात्—'ॐ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।'

ततः, 'ॐ कन्येयं ॐ प्रजापतिविष्णुदेवताका', इत्युक्त्वा (कामस्तुतिं) पठेत्—'ॐ क इदं कस्मा अदात्, कामः कामाय अदात्त, कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता, कामः समुद्रम् आविशत्, कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि, काम एतत् ते'—इति जप्त्वा कन्याया हृदयं संस्पृश्येत्। ततः सम्प्रदाता च,—'ॐ विष्णुः तत्सत् अद्येत्यादि अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदान्तर्गताय अमुकशाखैकदेशाध्यायिनेः श्रीमते अमुकदेवशर्म्मने वराय कृतैतत्कन्यासम्प्रदानसुप्रतिष्ठार्थं दक्षिणां सुवर्णमूल्योपकल्पितां श्रीश्रीराधाकृष्णस्मारणपूर्व्वकं श्रीअमुकदेवशर्म्मद्वारा श्रीश्रीराधाकृष्णौ दत्ताम्'—इति पठित्वा श्रीश्रीराधाकृष्णौ स्मृत्वा च

कामस्तुति पाठकर कन्याका हृदय स्पर्श करे। तदनन्तर सम्प्रदाता मूलोक्त मन्त्रका पाठकर और श्रीराधाकृष्णका स्मरणकर तुलसी, जल, तिल आदि

गन्ध-पुष्प-तुलसी-जलादिसंयुक्तां दक्षिणां वरहस्ते दद्यात्। (वरो दक्षिणां गृह्णीयात्)। जामाता पूर्व्ववत्, 'ॐ स्वस्ति', इति— ब्रुयात्, ततःपठेत्—'ॐ क इदं कस्मा अदात्, कामः कामाय आदात्, कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता, कामः समुद्रम् आविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि, काम एतत् ते'—इति पठित्वा श्रीमतीं वैष्णवीं गायत्रीं जपेत्, ततः श्रीश्रीराधाकृष्णस्मरणं कुर्य्यादनेकशः। अथवा, यस्य य इष्टस्तन्नामधेयं वा, श्रीनारायणविष्णु-रामनृसिंह-हरिवामनादिकं वा स्मरेत्। (अस्मिन् अवकाशे सम्प्रदाता यौतुकादिकं श्रीविष्णुवैष्णवसेवार्थदानादिकञ्च दद्यात्)। ततो वस्त्रेण हरीतकी-गुवाकादिसंयुक्तेन तुलसी-गन्धपुष्प-कुङ्कुम-हरिद्रा-चन्दनादिमाङ्गल्यद्रव्यसंयुक्तेन च श्रीकन्यावरयोर्ग्रन्थि-बन्धनं कुर्य्यात्। तद् यथा—'श्रीलक्ष्मीपीताम्बरयोः रेवतीबलरामयोः। तथा सीतारामयोश्च श्रीदुर्गाशिवयोर्यथा।। देवहूतिकर्द्दमयोः शचीमघवतोर्यथा। शतरूपास्वयम्भुवयोः रेणुकाजामदग्न्योः।। यथाऽहल्यागौतमयोर्देवकीसुदेवयोः। मन्दोदरीरावणयोर्यशोदा-नन्दयोर्यथा।। श्रीद्रौपदीपाण्डवयोः श्रीताराबालिभूभुजोः। दमयन्तीनलकयोः श्रीराधाकृष्णयोर्यथा।। अनयोः कन्या-वरयोस्तथा स्याद् ग्रन्थिबन्धनम्।।'—अनेन श्रीकन्यावरयोर्ग्रन्थि-बधनं कुर्यात्। ततो नापितेन,—'गौः गौः', इत्युक्ते जामाता पठेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दो गोरूपो विष्णुः देवता पूर्व्वबद्धगवीमोक्षणे विनियोगः, ॐ मुञ्च गा वरुणपाशाद्

सहित वरके हाथमें दक्षिणा दे। वर दक्षिणा ग्रहणकर 'ॐ स्वस्ति' कहकरके कामस्तुतिका पाठ करके वैष्णवी गायत्री जप करे एवं अनेक बार श्रीश्री-राधाकृष्णका स्मरण करे। अथवा अपने इष्टदेवताका नाम या नारायण, विष्णु, राम, नृसिंह, हरि, वामनादि नामका स्मरण करे। (इस समय

द्विषन्तं मे अभिधेहि। तं जहि अमुष्य (अर्थात अमुक देवशर्म्मणः) (१) चोभयोः, उत्सृज गाम् अत्तु तृणानि पिबतूदकम्'—इति पठित्वा नापितेन मुक्तायां गवि जामाता (पुनः) पठेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दो गोरूपो विष्णुः देवता गवानुमन्त्रणे विनियोगः, ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा आदित्यानाम् अमृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुशे जनाय मा गाम् अनागाम् अदितिं वधिष्ट'—अनेन मन्त्रेण गां विसर्ज्जयेत्। ततः सम्प्रदाता अच्छिद्रवाचनं कुर्य्यात्।

सम्प्रदाता कृताञ्जलिः ब्रुयात्—'ॐ अस्मिन् कन्या-सम्प्रदानकर्म्मणि—अङ्गहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत्। अस्तु तत् सर्व्वं अच्छिद्रं कृष्णकार्ष्णप्रसादतः।।' ततोऽर्घ्यहस्तः पुनः पठेत्—'ॐ विष्णुः ॐ तत्सत् ॐ अद्येतादि कृतेऽस्मिन् कन्यासम्प्रदानकर्म्मणि यत्किञ्चित् वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय

सम्प्रदाता वरको उपहार आदि एवं विष्णु-वैष्णव सेवाके लिए दान इत्यादि भी दे।) तत्पश्चात् हरीतकी, सुपारी आदिके सहित तुलसी, गन्ध, पुष्प, कुंकुम, हरिद्रा, चन्दन आदि मांगलिक द्रव्योंके साथमें वस्त्रोंके द्वारा वरकन्याका ग्रन्थिबन्धन करते-करते 'लक्ष्मी-पीताम्बरयोः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करेंगे। तत्पश्चात् नाई 'गौः गौः' उच्चारण करनेपर जामाता 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठकर गायको छोड़ दे। तत्पश्चात् अच्छिद्रवाचन—सम्प्रदाता बोले 'ॐ अस्मिन्' इत्यादि। अतःपर वैगुण्य समाधान—सम्प्रदाता 'ॐ अद्य' इत्यादि मन्त्र पाठपूर्वक श्रीविष्णुस्मरण करे एवं श्रीश्रीगुरु-वैष्णव-गौरांग गान्धर्विका-गिरिधारीको दण्डवत् प्रणाम करे। इति सम्प्रदान।

कुशण्डिका—तदनन्तर जामाता सम्प्रदान-मण्डपमें अथवा प्रधान गृहमें आकर कुशण्डिकाके लिए कहे गये विधानके अनुसार श्रीविष्णुरूप

---

(१) सम्प्रदान दाताका नाम उल्लेख करे।

श्रीविष्णुस्मरणमहं करोमि'—इति श्रीविष्णुस्मरण-महामन्त्रकीर्त्तन पूर्व्वकं श्रीगुरु-वैष्णव-गौराङ्ग-गान्धर्विकागिरिधारीन् नमस्कुर्य्यात्।

इति सम्प्रदानम्।

(४ग) कुशण्डिका

ततो जामाता सम्प्रदानशालायां प्रधानगृहागतो वा कुशण्डिकोक्तविधानेन श्रीविष्णुरूपं योजकनामानमग्निं संस्थाप्य कुशण्डिका-विधानं कुर्य्यात्।(१)

तत्र पूर्व्वकृताम् उभयतश्चतुर्हस्तचतुर्मुष्टि-परिमितां वेदिकां (भूमिं वा) केशतुषाङ्गारास्थिशर्करादिरहितां पूर्व्वोत्तरप्लवां समानां वा छायामण्डपसहितां गोमयेनालिप्य, विधिना स्नातः शुचिराचान्तः द्विवासाः प्राङ्मुखः कुशसहिता-सनोपविष्टः कुशण्डिकाकर्म्मकर्त्ता उत्तरस्यां दिशि अभ्युक्षणार्थं गन्ध-पुष्प-तुलसी-यव-गुवाक-हरीतकी-दुर्वा-चन्दनाक्षत-हरिद्रा सिद्धार्थसहितं सजलं ताम्रपात्रं मृतपात्रं (घटं) वा निधाय, ततो

योजक-नामक अग्नि स्थापनकर कुशण्डिकाका अनुष्ठान आरम्भ करे।

(४ग) कुशण्डिका—दोनों तरफ चार हाथ चार मुष्टि परिमित पूर्वनिर्मित वेदिका अथवा केश, तुष, अंगार, हड्डी, खपरैल इत्यादिसे रहित भूमि तैयार करे। उसे पूर्व उत्तरकी दिशामें क्रमशः नीचा बनावे अथवा समान बनावे। उस वेदीके ऊपर एक छायामण्डप बनावे तथा उस वेदीको ताजा गोबरसे लीप-पोतकर साफ-सुथरा बनावे। कुशण्डिका

---

(१) जामाता स्वयं कुशण्डिका सम्पादन करनेमें असमर्थ होनेपर योग्य वैष्णव ब्राह्मणको होता एवं अपर वैष्णव ब्राह्मणको ब्रह्मा वरण करेंगे और वे इस अनुष्ठानको जामाताका प्रतिनिधि बनकर कार्य करें।

दक्षिणजानु भूमौ पातयित्वा सव्यहस्तस्य प्रादेशमात्रं भूमौ निधाय, उभयतो हस्तप्रमाणे चतुरस्त्रे यथाविधिनिर्मिते कुण्डे अङ्गुष्ठमात्रोच्चे वालुकामये स्थण्डिले वा मध्यभागे सर्व्वरेखासु अग्निस्थापनं कुर्य्यात् ।

तदनुष्ठानं विधीयते, यथा—दक्षिणहस्तगृहीतकुशमुलेन (१) पञ्चरेखाः कुर्य्यात् । तत्र प्रथमरेखा द्वादशाङ्गुलप्रामाणा प्राङ्मुखी पीतवर्णा लेख्या,—(क) 'ॐ रेखे त्वं पृथ्वीरूपा पीतवर्णासि ।' तन्मूललग्ना उदङ्मुख्येकविंशत्यङ्गुलप्रमाणा लोहितवर्णा लेख्या, गोरूपा वैष्णवी ध्येया—(ख) 'ॐ रेखे त्वं गोरूपा लोहितवर्णासि ।' ततः प्रथमरेखातः सप्ताङ्गुलान्तरिता उत्तराग्ररेखा-लग्ना प्राङ्मुखी प्रादेशप्रमाणा कृष्णवर्णा लेख्या, कालिन्दीरूपा वैष्णवी

कर्त्ता विधि अनुसार स्नानकर पवित्र होवे तथा आचमन आदि कर साफ सुथरे धुले हुए वस्त्र पहने अर्थात् चादर और धोती धारण करे तथा कुशासनके ऊपर पूर्वमुख होकर बैठे । तत्पश्चात् स्थण्डिलके (वेदिकाके) उत्तरमें अभ्युक्षणके लिए कुश, पुष्प, जौ, तिल, तुलसी, सुपारी, हरीतकी, दुर्वा, चन्दन, तण्डुल, हरिद्रा, श्वेतसरसों इत्यादिके साथ जलपूर्ण ताम्रपात्र या मिट्टीके पात्रकी स्थापना करे । तत्पश्चात् दक्षिण जानुको भूमिमें रखकर बायें हाथको प्रादेशमात्र (एक वित्ता) भूमिमें स्थापनकर विधिके अनुसार निर्मित दोनों ओर एक एक हस्त प्रमाण चतुष्कोण यज्ञकुण्डमें अथवा अंगुष्ठमात्र उच्च वालुकामय स्थण्डिलके मध्यभागमें सर्व रेखाओंपर अग्नि स्थापन करे ।

अग्निस्थापनकी विधि,—दाहिने हाथमें कुशका मूल ग्रहणकर (१) **पञ्चरेखा** बनाये । प्रथम रेखा द्वादशांगुलके बराबर पूर्वमुखी होगी तथा **पीले रंगसे** अंकित करे एवं 'ॐ रेखे' (क) इत्यादि मन्त्रसे उसका पृथिवीरूपिणी वैष्णवीके रूपमें ध्यान करे । प्रथम रेखाके मूलसे उत्तर दिशामें इक्कीस अंगुलियोंके बराबर **लोहितवर्ण** (लाल) रेखा बनाये एवं

ध्येया—(ग) 'ॐ रेखे त्वं कालिन्दीरूपा कृष्णवर्णासि।' ततोऽपि सप्ताङ्गुलान्तरिता उत्तराग्ररेखालग्ना प्राङ्मुखी प्रादेशप्रमाणा स्वर्णवर्णा लेख्या, श्रीरूपा वैष्णवी ध्येया—(घ) 'ॐ रेखे त्वं श्रीरूपा स्वर्णवर्णासि।' ततोऽपि सप्ताङ्गुलान्तरिता उत्तराग्ररेखालग्ना प्राङ्मुखी प्रादेशप्रमाणा शुक्लवर्णा लेख्या, सरस्वतीरूपा वैष्णवी ध्येया—(ङ) 'ॐ रेखे त्वं सरस्वतीरूपा शुक्लवर्णासि।'

ततो दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां प्रदक्षिणक्रमेण सर्व्वरेखासु (२) उत्करं गृहीत्वा, 'ॐ प्रजापतिर्विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उत्करनिरसने विनियोगः, ॐ निरस्तः परावसुः'—इत्यनेन इशान्यां स्थण्डिलादरत्निमात्रान्तरिते देशे प्रक्षिपेत्। ततः पूर्व्वस्थापितजलेन (३) रेखाभ्युक्षणं कुर्य्यात्।

सन्निधापिताग्नेर्ज्वलदिन्धनं गृहीत्वा 'ॐ प्रजापतिः विष्णु

'ॐ रेखे' (ख) इत्यादि मन्त्रके द्वारा उसे गोरूपा वैष्णवी ध्यान करे। तत्पश्चात् प्रथम रेखासे सात आंगुल दूरीपर उत्तरमुखी रेखासे पूर्वकी ओर प्रादेशप्रमाण **कृष्णवर्णकी** रेखा अंकित करे और उसे 'ॐ रेखे' (ग) इत्यादि मन्त्रके द्वारा कालिन्दीरूपा वैष्णवी ध्यान करे। अनन्तर इस रेखासे सात आंगुल दूर उत्तरमुखी रेखासे पूर्वमुखी प्रादेशप्रमाण **स्वर्णवर्णकी** रेखाका अंकन करे तथा 'ॐ रेखे' (घ) इत्यादि मन्त्रसे श्रीरूपा वैष्णवी ध्यान करे। इससे भी सात आंगुल दूरीपर उत्तरमुखी रेखासे पूर्वमुखी प्रादेशप्रमाण **शुक्लवर्ण** रेखा अंकनकर उसे 'ॐ रेखे' (ङ) इत्यादि मन्त्रके द्वारा सरस्वतीरूपा वैष्णवी ध्यान करे। (२) **उत्करनिरसन**—दाहिने हाथकी अनामिका और अंगुष्ठके द्वारा सभी रेखाओंसे प्रदक्षिणा करते हुए उत्कर (रेती) लेकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे ईशान (पूर्वोत्तर) कोणमें स्थण्डिलसे अरत्निमात्र (कुहनीसे लेकर कनिष्ठ अंगुलिके छोर तककी दूरी पर) दूर छोड़ दे। (३) **रेखाभ्युक्षण**—तत्पश्चात् पूर्वस्थापित

ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता (४) अग्निसंस्कारे विनियोगः, ॐ क्रव्यादमग्निं प्रहिनोमि दूरं, यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः'— इत्यनेन नैर्ऋत्यां प्रक्षिपेत्।

ततोऽपरज्वलदिन्धनं गृहीत्वा, 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीविष्णुः देवता (५) अग्निस्थापने विनियोगः,ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ' इत्यनेन आत्माभिमुखं कुर्वन् अग्निं तृतीय रेखोपरि (कृष्णवर्णा) स्थापयेत्। अत्रैव यस्मिन् कर्म्मणि योऽग्निर्विहितस्तन्नाम्ना तमावाहयेत्। अत्र विवाहे तु योजक नामा एव। ततः—'ॐ योजकनामाग्ने इहागच्छ, अग्ने त्वं योजकनामासि' इत्यावाह्य, 'श्रीविष्णोस्तेज एवायम्' इति विचिन्त्य अग्निं पाद्यादिभिः विष्णुध्यानेन च पूजयेत्। ततो (बद्धाञ्जलिः) जपेत् 'ॐ कृष्णानन्त मुकुन्द माधव हरे गोविन्द बंशीमुख। श्रीगोपीजनवल्लभ ब्रजसुहृत् भक्तप्रियेड्याच्युत।। भक्तप्रेमवशक्रियाफलरसानन्दैक दीनार्त्तिहृत्। राधाकान्त दुरन्तसंसृतिहरेत्याख्याहि जिह्वे सदा।। ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।। ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः, कृष्णः आदिपुरुषः, कृष्णः पुरुषोत्तमः, कृष्णो हा उ कर्म्मादिमूलं, कृष्णः स ह सर्व्वैकार्य्यः, कृष्ण काशंकृदादी-

---

पञ्चपात्रके जल द्वारा रेखाओंका अभ्युक्षण (जल प्रोक्षण) करे। (४) **अग्निसंस्कार**—निकटमें स्थापित अग्निसे एक प्रज्वलित ईंधन ग्रहणकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे उसे नैर्ऋत (दक्षिणपश्चिम) कोणमें निक्षेप करे। (५) **अग्निस्थापन**—अनन्तर और एक प्रज्वलित लकड़ी लेकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रके द्वारा उसे अपने सन्मुख तृतीय रेखा (कृष्णवर्ण) के ऊपरसे स्थापन करे। उस समय जिस कार्यके लिए जो अग्नि उचित है,उस नामकी अग्निका आवाहन करे। विवाहमें योजक-नामकी अग्निका

शमुखप्रभुपूज्यः, कृष्णोऽनादिस्तस्मिन्नजाण्डान्तर्बाह्ये यन्मङ्गलं तल्लभते कृती।' ततो बद्धाञ्जलिः पठेत्—'ॐ अग्निं दूरं पुरोदधे, हव्यवाहमुपब्रुवे, देवा आशदयादिह।' 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता अग्निस्थापने विनियोगः, ॐ इहैवायम् इतरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।' ततो घृताक्तां प्रादेशप्रमाणां समिधं तुष्णीमग्नौ दद्यात्।

ततो (६) ब्रह्मस्थापनम्। वैष्णवब्राह्मणं तदभावे कुशमय-ब्राह्मणं वृणुयात्। जामाता वैष्णवब्राह्मणं ब्रुयात्—'ॐ साधु भवान् आस्ताम्'। वैष्णवब्राह्मणः—'ॐ साधु अहम् आसे।' जामाता—'ॐ अर्च्चयिष्यामो भवन्तम्।' वैष्णवब्राह्मणः—ॐ 'अर्चय।' जामाता गन्ध-पुष्प-तुलसी-वस्त्रादिभिर्ब्राह्मणस्य जानु स्पृष्ट्वा—'ॐ विष्णुः ॐ तत्सत् अद्य इत्यादि अस्य विवाह-कर्म्मणो होमकर्म्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म्मकरणाय भवन्तमहं वृणे।' ब्राह्मणः—ॐ वृतोऽस्मि।' जामाता—'ॐ यथायथं ब्रह्मकर्म्म कुरु।' 'ॐ यथाज्ञानं करवाणि'—इति तेन वैष्णवब्राह्मणेन वक्तव्यम्। होता (जामाता) धारासहितमुदकपात्रं

आवाहन करना चाहिए। तत्पश्चात् तत्तत् मन्त्रसे योजक अग्निका स्मरण करे, आवाहन करते समय विष्णुतेजके रूपमें योजक नामकी अग्निका स्मरण करे, पाद्य इत्यादि प्रदान करे; तथा विष्णुका ध्यान करते हुए अर्चन करे। तत्पश्चात् 'ॐ कृष्णानन्त' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे। पुनः हाथ जोड़कर पाठ करे 'ॐ अग्नि' इत्यादि, 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि। तत्पश्चात् प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें अमन्त्रक दे। (६)**ब्रह्मस्थापन—** वैष्णवब्राह्मण, उसके अभावमें कुशमय ब्राह्मणका यथाविधि वरण करे। तत्पश्चात् होता (जामाता) धारासहित जलपात्र ग्रहणकर, प्रदक्षिणा करते हुए दक्षिणमें जाकर, अरत्निमात्र दूर स्थानमें पूर्वमुखी होकर जलधारा दे।

गृहीत्वा, प्रदक्षिणक्रमेण दक्षिणां दिशं गत्वा, अरत्निमात्रान्तरिते देशे प्राङ्मुखीं वारिधारां दत्त्वा, तदुपरि वैष्णव-ब्रह्मासने प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य, तेषां पुरस्तात् प्रत्यङ्मुख ऊर्द्ध्वं तिष्ठन् वामहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्याम् आस्तीर्णकुशमेकमादाय 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता तृणनिरसने विनियोगः, ॐ निरस्तः परावसुः'—इत्यनेन नैर्ऋत्यां निक्षिपेत्। ततो जलं स्पृष्ट्वा दक्षिणेन पादेन सव्यपादमवष्टभ्य उत्तराभिमुखीभूय आस्तृतकुशान् जलेनाभ्युक्ष्य, वैष्णवब्रह्माणं उदङ्मुखं कुशासने उपवेशयेत्। ततो जलं स्पृष्ट्वा पठेत्—'ॐ पजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता वैष्णवब्रह्मोपवेशने विनियोगः, ॐ आ वसोः सदने सीद। 'ॐ सीदामि'—इति वैष्णवब्रह्मणा, कुशमयब्रह्मपक्षे तु जामात्रा (होत्रा) स्वयमेव वक्तव्यम्। ततः कुशमयब्रह्मपक्षे पूर्वाग्रं, वैष्णवब्रह्मपक्षे तूत्तराग्रं कुशं दत्त्वा श्रीकृष्णमहाप्रसाद-चन्दन-कुसुम-नैवेद्य-फल-मूलमिष्टान्नादिकं चरणोदकञ्च दत्त्वा तमर्च्चयेत्। ततस्तेनैव

उसके ऊपर वैष्णव ब्रह्माके आसनपर पूर्वकी तरफ मुखकर कुश बिछाकर उसके सम्मुख पश्चिममुख खड़ा होकर, वाम हस्तकी अनामिका तथा अंगुष्ठके द्वारा एक गुच्छ कुश लेकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे नैर्ऋत कोणमें उसको छोड़ दे। तत्पश्चात् जल स्पर्शकर, दक्षिण पैरके द्वारा वाम पैरको दबाकर विस्तारित कुशसमूहके ऊपर जलके द्वारा अभ्युक्षण करे, तत्पश्चात् वैष्णव ब्रह्माको उत्तरमुखी कर कुशासनपर बैठावे। तत्पश्चात् जल स्पर्शकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। वैष्णव ब्रह्मा 'ॐ सीदामि' बोले। कुशमय ब्रह्माके पक्षमें होता स्वयं बोले। तत्पश्चात् कुशमय ब्रह्माको पूर्वाग्र कुश, वैष्णव ब्रह्माको उत्तराग्र कुश अर्पणकर श्रीकृष्णका महाप्रसाद, चन्दन, पुष्प, नैवेद्य, फल, मूल, मिठाई आदि और चरणामृतके द्वारा ब्रह्माका अर्चन करे। तत्पश्चात्

पथा प्रत्यावृत्य जामाता (होता) निजासने प्राङ्मुख उपविशेत्। यदि ब्रह्मत्वारोपितो ब्राह्मणोऽयज्ञियवाग्वचनं ब्रुयात् तदा मन्त्रमिमं जपेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता अयज्ञियवाग्वचननिमित्तजपे विनियोगः, ॐ इदं विष्णुः विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदं, समूढ़म् अस्य पांशुले।' कुशमयब्रह्मपक्षे तु कर्म्मकर्त्तुरेव कृताकृतावेक्षणादिकर्म्मकर्त्तृत्वादयज्ञियवाग्वचन-निमित्तजपं स एव कुर्य्यात्।

अथ प्रकृते कर्म्मणि चरुहोमोऽस्ति चेदत्रैव चरुं स्रपयेत्, अग्नेरुत्तरश्चरुं स्थापयित्वा (७) भूमिजपं कुर्य्यात्। यथा—अधोमुखौ हस्तौ भूमौ निधाय, 'ॐ परमेष्ठी विष्णुः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता भूमिजपे विनियोगः, 'ॐ इदं भूमेः भजामहे इदं भद्रं सुमङ्गलं, परा सपत्नान् बाधस्व, अन्येषां विन्दते धनम्'—इति सकृज्जपेत्। रात्रौ चेत् 'विन्दते वसुम्' इति पठेत्।

ततोऽग्निसम्मुखीकरणम् (८)—'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता अग्निसम्मूखीकरणे विनियोगः,

---

उसी तरफ फिर आकर होता (जामाता) उपने आसनपर पूर्वमुखी होकर बैठे। ब्रह्माके रूपमें वरण किया ब्राह्मण अयज्ञिय वाग्-वचन प्रयोग करनेकी आशंकासे 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। कुशमय ब्रह्मके पक्षमें होता स्वयं उसे जप करे। अनन्तर अनुष्ठेय कर्ममें चरुहोमकी व्यवस्था रहनेपर उसी समय चरु पाक करे और उसे अग्निके उत्तर दिशामें स्थापनकर भूमि जप करे। (७) **भूमिजप**—दोनों हथेलियोंको भूमिसे ऊपर उठाकर पुनः सीधा भूमिमें स्थापनकर 'ॐ परमेष्ठी विष्णु' इत्यादि मन्त्रका एकबार जप करे। रात्रिमें इसका अनुष्ठान होने पर 'धन' के स्थानपर 'वसु' पाठ करे। (८) **अग्निका सम्मुखीकरण**—'ॐ

ॐ एको ह देवः प्रदिशो नु सर्व्वाः पूर्व्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः, स एवं जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्व्वतोमुखः।'

ततो दक्षिणहस्तेन कुशान् गृहीत्वा अग्नेरुत्तरतः प्रभृति तृणादिकं अनेन मन्त्रत्रयेण त्रिः शोधयेत् (६) । मन्त्रत्रयस्य ऋष्यादयः साधारणाः। —'ॐ कौत्स ऋषिः जगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता पृष्ठ्यस्य षड़हस्य षष्ठेऽहनि आग्निमारुते शस्त्रे परिसमूहने विनियोगः,—(क) ॐ इमं स्तोमम् अर्हते जातवेदसे, रथमिव सन्महेमा मनीषया, भद्रा हि नः प्रमतिः अस्य संसदि, अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव; (ख) ॐ भराम इध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयं, जिवातवे प्रतरां साधया धियः, अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।' (ग) ॐ शकेम त्वा समिधं साधया धियः, त्वे देवा हविः अदन्त्याहुतं, त्वमादित्यान् आ वह तान् ह्युस्मसि, अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।' ततः परिसमूहनकुशान् ऐशान्यां क्षिपेत्। ततोऽग्नेः

प्रजापतिः ...... सर्वतोमुखः' इस मन्त्रका पाठ करे। (६) **तृणादि-शोधन**— तत्पश्चात् दक्षिण हाथमें कुश लेकर अग्निके उत्तरसे आरम्भकर कहे गये तीन मन्त्रोंसे तृण आदिका तीन बार शोधन करे, तीनों मन्त्रोंमें ऋषि इत्यादि एक ही रूप होंगे (क) 'ॐ कौत्सः ...... वयं तव', (ख) 'ॐ कौत्सः ...... वयं तव', (ग) 'ॐ कौत्सः ...... वयं तव'। तत्पश्चात् परिसमूहन कुशोंको ईशान कोणमें फेंक दे। तत्पश्चात् कुछ छिन्नमूल कुशको लेकर अग्निके पूर्वकी ओर उत्तर प्रान्तसे दक्षिण प्रान्त तक एक-एक कर पूर्वाग्र कर बिछाये। पुनः उसके ऊपर और एक पंक्ति कुशके अग्रभाग द्वारा पहलेके बिछाये हुए कुशके मूल भागको आच्छादनपूर्वक बिछाये। पुनः उसके ऊपर और एक पंक्ति कुशके अग्रभागके द्वारा द्वितीय बार बिछाये

पूर्व्वतः उत्तरान्तात् दक्षिणान्तं यावदुपमूललुनान् एकपत्रीकृतान् प्रागग्रान् कुशान् अग्रेण मूलमाच्छादयन् बारत्रयमास्तरेत्। एवं दक्षिणस्यां पूर्व्वान्तात् पश्चिमान्तं यावत्, उत्तरस्यां पश्चिमान्तात् पूर्व्वान्तं यावत्, प्रतीच्याञ्च दक्षिणान्तादुत्तरान्तं यावत् क्रमेणास्तरेत्।

ततो दशदिक्षु पूर्व्वादिक्रमेण ब्रह्मादिवैष्णवेभ्यः श्रीविष्णुप्रसादचन्दनपुष्पनैवेद्यादिभिः (१०) स्वस्तिकान् निवेदयेत्। यथा'—"ॐ एतन्महाप्रसाद-नैवेद्यादि पूर्व्वस्यां श्रीनारदाय स्वाहा, आग्नेयां श्रीकपिलदेवाय, याम्ये श्रीयमभागवताय, नैर्ऋत्यां श्रीभीष्मदेवाय, प्रतीच्यां श्रीशुकदेवाय, वायव्यां श्रीजनकाय, उदीच्यां श्रीसदाशिवाय, ऐशान्यां श्रीप्रह्लादाय, ऊर्द्ध्वं श्रीब्रह्मणे, अधः श्रीबलिराजाय।" ततः (११) प्रादेशद्वयप्रमाणां खदिरपलाशोडुम्बराणां अन्यतमस्य विंशतिकाष्ठिकां गृहीत्वा, मध्ये घृतस्रुवं दत्त्वा, श्रीविष्णुं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं अग्नौ जुहुयात्। ततः (१२) आज्यसंस्कारः। — आस्तरणकुशादेव साग्रकुशपत्रद्वयं गृहीत्वा कुशान्तरेण वेष्टयित्वा, (क) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः

हुए कुशके अग्रभागको आच्छादनपूर्वक बिछाये इस प्रकार अग्निकी दक्षिण ओर पूर्व प्रान्तसे पश्चिम प्रान्त पर्यन्त एवं पश्चिममें दक्षिणसे उत्तर प्रान्त पर्यन्त क्रमानुसार तीन स्तर कर पूर्वोक्त प्रकारसे कुश बिछावे। (१०) **स्वस्तिक निवेदन**—तत्पश्चात् पूर्व आदिके क्रमसे दश दिशाओंके भूलमें कहे गये मन्त्रोंसे श्रीविष्णु प्रसाद, चन्दन, पुष्प, नैवेद्य आदिके द्वारा स्वस्तिक निवेदन करे। (११) **विंशति-काष्ठिका होम**—तत्पश्चात् खैर, पलाश वा गूलरकी दो-दो प्रादेशप्रमाण लम्बी बीस लकड़ियाँ (लकड़ियोंके अभावमें कुश) लेकर, उनके मध्यभागमें एक स्रुव घृत देकर, मन ही मन श्रीविष्णुकी चिन्ता कर, अमन्त्रक अग्निमें हवन करे। (१२) **आज्यसंस्कार**—

ऋषिः गायत्री छन्दः पवित्रे विष्णुः देवते पवित्रच्छेदने विनियोगः, 'ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ'—इत्यनेन कुशद्वयं प्रादेशप्रमाणं नखव्यतिरेकेण छित्वा, (ख) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः गायत्री छन्दः पवित्रे विष्णुः देवते पवित्रमार्ज्जने विनियोगः, ॐ विष्णोः मनसा पूते स्थः'—इत्यनेन मन्त्रेणभ्युक्ष्य, ताम्रादिपात्रे संस्थाप्य तत्र होमार्थं घृतं निक्षिपेत्। ततस्तत् कुशपत्रद्वयं अग्रे दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मूले च वामहस्तानामिकाङ्-गुष्ठाभ्यां गृहीत्वा दक्षिणहस्तोपरिभावेनाधोमुखव्यस्तपाणिः (ग) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः आज्यं विष्णुः देवता आज्योत्प्लवने विनियोगः, ॐ देवस्त्वा सवितोत्पुनातु अच्छिद्रेण पवित्रेण, वसोः सूर्य्यस्य रश्मिभिः स्वाहा'—इत्यनेन मन्त्रेण कुशपत्रद्वयमध्येन घृतमग्नौ सकृज्-जुहुयात्, तुर्ष्णीं बारद्वयम्। ततस्तत्कुशपत्रद्वयमद्भिरभ्युक्ष्य अग्नौ प्रक्षिपेत्। ततः आज्यपात्रस्य उदकेनानुमार्ज्जनं, अग्नेरुपरि निधानमुत्तरस्यां दिश्यवतारणञ्च—एवं बारत्रयं कुर्य्यात्। इत्याज्यसंस्कारः।।

ततः (१३) खदिरपलाशोडुम्बराणाम् अन्यतमस्य स्रुवम्

तत्पश्चात् दो गुच्छ अग्रभागयुक्त कुश लेकर दूसरे कुशके द्वारा उसे वेष्टन करे। (क) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे उक्त दोनों कुशोंको प्रादेशप्रमाण बिना नखके उसे तोड़कर (ख) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे अभ्युक्षणकर तांबेके पात्रमें संस्थापन करे तथा उस पात्रमें होमका घृत डाल दे। तत्पश्चात् दोनों कुश गुच्छोंका अग्रभाग दाहिने हाथकी अनामिका और अंगुष्ठके द्वारा मूलभाग बायें हाथकी अनामिका और अंगुष्ठके द्वारा पकड़कर, दक्षिण हाथ धृताग्र ऊपरकी ओर दूसरे किनारे पर नीचेकी ओर पकड़कर (ग) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे दोनों कुश गुच्छोंके मध्यभाग द्वारा अग्निमें एक बार हवन करे; तत्पश्चात् पुनः उसी

अरत्निप्रमाणं भ्रमिताङ्गुष्ठपर्व्वविलम् इत्थमेव बारत्रयं संस्कुर्य्यात्। इति स्रुवसंस्कारः।

ततो दक्षिणं जानु भूमौ पातयित्वा (१४) उदकाञ्जलिसेकं कुर्य्यात्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनन्तो देवता उदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ अनन्त अनुमन्यस्व'—अनेनाग्नेर्दक्षिणतः पश्चिमान्तात् पूर्वान्तं यावत् उदकाञ्जलिना सिञ्चेत्।।१।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतो देवता उदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ अच्युत अनुमन्यस्व'—अनेनाग्नेः पश्चिमतो दक्षिणान्तादुत्तरान्तं यावदुकाञ्जलिना सिञ्चेत्।।२।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ सरस्वत्यनुमन्यस्व'—अनेनाग्नेरुत्तरतः पश्चिमान्तात् पूर्व्वान्तं यावदुद-

---

प्रकारसे दो बार अमन्त्रक होम करे। तत्पश्चात् दो कुश जलके द्वारा अभ्युक्षित कर अग्निमें निक्षेप करे। तदनन्तर जलके द्वारा घृत पात्रका अनुमार्जन (छींटा देना), उसे अग्निके ऊपर स्थापन एवं उत्तर दिशामें उतारना—इस प्रकार तीन बार करे। इति आज्यसंस्कार।। (१३) **स्रुवसंस्कार**—खैर, पलाश या गूलरकी लकड़ी द्वारा निर्मित अरत्नि प्रमाण (हाथकी कुहनीसे अनामिका अंगुलकी शेष सीमा तक लम्बाईयुक्त, जिसके गर्त्तभागमें अंगुष्ठका एक पर्व घुमाया जा सके) स्रुव उक्तरूपमें अर्थात् अभ्युक्षण, अग्निके ऊपर स्थापन और दिशामें अवतारण—इस क्रमसे तीन बार संस्कार करे। (१४) **उदकाञ्जलिसेक**—तत्पश्चात् दक्षिण जानु भूमिमें रखकर उदकाञ्जलिसेक करे,—'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके दक्षिण भागमें पश्चिमसे पूर्व प्रान्त तक उदकाञ्जलि सिंचन करे।।१।। 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके पश्चिम भागमें दक्षिणसे उत्तर प्रान्त तक उदकाञ्जलि सिंचन करे।।२।। 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके उत्तर दिशामें पश्चिमसे पूर्व प्रान्त तक उदकांजलि

काञ्जलिना सिञ्चेत् ।।३।। ततः 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनिरुद्धो देवता अग्निपर्य्युक्षणे विनियोगः, ॐ प्रभो अनिरुद्ध, प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय, पाता सर्वभूतस्थः केतपूः केतं नः पुनातु, वागीशः वाचं नः स्वदतु— अनेनोदकाञ्जलिना दक्षिणावर्त्तेनाग्निं वेष्टयेत्।

ततो दक्षिणं जानु उत्थाप्य उपर्य्यधःस्थितदक्षिणवाममुष्टिभ्यां साक्षतगन्धपुष्पफलादीनी गृहीत्वा श्रीमहाभागवतविरूपाक्षं जपेत् (१५)—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दो रुद्ररूपो विष्णुः देवता श्रीमहाभागवतविरूपाक्षजपे विनियोगः ॐ भूः भुवः स्वः ॐ महान्तं विरूपाक्षं त्वां आत्मना प्रपद्ये, भागवत-विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिः तस्य ते शय्या पर्णे, गृहं अन्तरिक्षे विमितं हिरन्मयम्। तद्देवानां हृदयानि अयस्महे कुम्भेऽन्तः सन्निहितानि तानि। वलभृच्च वलसाच्च रक्षतोऽप्रमणी अनिमिषत्। तत् सत्यं यत्ते द्वादशपुत्राः, ते त्वा संवत्सरे संवत्सरे कामप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनः ब्रह्मचर्य्यम् उपयन्ति। त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽसि, अहं मनुष्येषु, ब्राह्मणो वै ब्राह्मणम् उपधावति, उप त्वा धावामि; जपन्तं मा मा प्रतिजापीः, जुह्वन्तं मा मा प्रतिहौषीः, कुर्व्वन्तं मा मा प्रतिकार्षीः त्वां प्रपद्ये। त्वया प्रसूत इदं कर्म्म करिष्यामि; तन्मे राध्यतां तन्मे समृध्यतां, तन्मे उपपद्यताम्। समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्मा अनुजानातु, तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रः अनुजानातु, श्वात्रो मा प्रचेता

सिंचन करे।।३।। तत्पश्चात् अग्निपर्युक्षण—'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणावर्त्तनपूर्वक उदकांजलि द्वारा अग्निको वेष्टन करे। तत्पश्चात् (१५) **विरूपाक्षजप**—दक्षिण जानुको उठाकर दक्षिण मुष्टि नीचे, वाम मुष्टि ऊपरमें स्थापनपूर्वक फल, पुष्प सहित कुश ग्रहणकर 'ॐ प्रजापतिः'

मैत्रावरुणः अनुजानातु। तस्मै विरूपाक्षाय दन्ताञ्जये, समुद्राय विश्वव्यचसे, तुथाय विश्ववेदसे, श्वात्राय प्रचेतसे, सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय परमभागवतोत्तमाय नमः'—इति जप्त्वा गृहीतद्रव्याणि प्रागुदीच्यां (ऐशान्यां) दिशि प्रक्षिपेत्। ततो बद्धाञ्जलिरपरं जपेत्—'ॐ तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्च अक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च सत्वञ्च वाक् च मनश्च आत्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये, तानि मामवन्तु।' ततः घृताक्तां प्रादेशप्रमाणां समिधं गन्धपुष्पचन्दनसहितां तुष्णीमग्नौ जुहुयात्।। इति सर्व्वकर्म्मसाधारणी कुशण्डिका।।

(४घ) पाणिग्रहणम्

ततो जामातुः कश्चिदेको वयस्यः अशोषजलाशयोद्धृत-जलपूर्णकलसहस्तो वस्त्रावृतकायो वाक्यतः पूर्व्वेणाग्निं परिक्रम्य अग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि उत्तराभिमुखः ऊर्ध्वस्तिष्ठेत्। ततोऽपरोऽपि कश्चिद्वयस्यः पर्चनिकाहस्तः तथैव गत्वा जलकलसधारिणः पृष्ठदेशे तथैव तिष्ठेत्। ततोऽग्नेः पश्चिमतः शमीपत्रमिश्रितान् लाजान् चतुरञ्जलिपरिमितान् शूर्पे निधाय स्थापयेत्। तत्समीपे सपुत्रां शिलां संस्थाप्य, तत्पश्चिमतो वीरणपत्ररचितं पटवेष्टितं

...... मामवन्तु' इस मन्त्रसे श्रीमहाभागवत विरूपाक्षका जप करे। तत्पश्चात् प्रादेशप्रमाण घृताक्त कुश, समिध्, गन्ध, पुष्प, चन्दन सहित अग्निमें अमन्त्रक हवन करे। इति सर्वकर्मसाधारण कुशण्डिका।।

(४घ) पाणिग्रहण— इसके बादमें जामाताका एक साथी न सूखनेवाले जलाशयसे कलशसे जल परिपूर्णकर उसे हाथमें ले आये, वस्त्रोंसे आवृत शरीरसे चुपचाप बिना शब्द किये हुए अग्निके पूर्व ओरसे जाकर दक्षिण दिशामें उत्तरमुख होकर खड़ा हो जाये। तदनन्तर दूसरा साथी गाय चरानेका डण्डा हाथमें लेकर उसी प्रकारसे कलशको पकड़नेवालेके पीछे

कटञ्च संस्थाप्य, जामाता गृहं प्रविश्य, अहतवासोयुगं • अधश्चोपरि च वधूमनेन मन्त्रद्वयेन यथाक्रमं परिधापयेत्। (१) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः जगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता अधोवस्त्रपरिधापने विनियोगः, ॐ या अकृन्तन् अवयन या अतन्वत, याश्च देव्यो अन्तान् अभितः अततन्थ, ताः त्वा देव्यो जरसा संव्ययन्त, आयुष्मति इदं परिधत्स्व वासः, अनेन नववस्त्रं वधूमधः परिधापयेत्—(२) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता उत्तरीयवस्त्र परिधापने विनियोगः, ॐ परि धत्त धत्त वाससा एनां शतायुर्षी कृणुत दीर्घमायुः; शतञ्च जीव शरदः सुवर्चाः वसूनि च आर्य्ये विभृजासि जीवन्'— अनेन यज्ञोपवीतरूपमुत्तरीयवासः परिधापयेत्। ततो भाले तस्याः सिन्दूरं दद्यात्—(३) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता सिन्दूरदाने विनियोगः ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमीयः पतयन्ति यह्वाः, घतृस्य धारा अरूषो नः वाजी, काष्ठा भिन्दन् उर्म्मिभिः पिन्वमानः।'

खड़ा हो। तत्पश्चात् शमीपत्रसे मिले हुए चार अञ्जलि खील एक सूपमें रखकर अग्निके पश्चिम दिशामें स्थापन करे। उसीके निकट शिल और लोढ़ा स्थापन कर, उसके पश्चिममें वस्त्रसे आच्छादित कुशपत्रके द्वारा निर्मित एक चटाई स्थापन करे। इसके पश्चात् जामाता गृहमें प्रवेशकर नयी धुली हुई अव्यवहृत (नयी) साड़ी एवं चुनरी यथाक्रमसे दो मन्त्र पाठपूर्वक वधूको पहनाये—मन्त्र (१) 'ॐ प्रजापतिः ...... वास', (२) ॐ प्रजापतिः ...... जीवन' तत्पश्चात् 'ॐ प्रजापतिः, इत्यादि (३) मन्त्रसे वधूके कपालमें सिन्दूर दे। अनन्तर वधूको अग्निकी ओर लाते-लाते जामाता

• अहतलक्षणं—ईषद्धौतं नवं शुभ्रं सदशं यन्न धारितम्। अहतं तत् विजानीयात् सर्व्वकर्म्मसु पावनम्।।

ततो वधूमग्न्यभिमुखं नयन् जामाता पठति—(४) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषि अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता पत्युः कन्यानयनजपे विनियोगः, ॐ सोमः अददत् गन्धर्वाय, गन्धर्वः अददत् अग्नये, रयिञ्च पुत्रांश्च अदात् अग्निः मह्यम अथो इमाम्।' ततोऽग्नेः पश्चिमतो गत्वा वीरणपत्ररचितं पटवेष्टितं कटं बर्हिस्तरणदेशसमीपपर्यन्तं दक्षिणपादेन प्रेरयन्तीं वधूमिमं मन्त्रं जामाता वाचयति—(५) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः द्विपाज्जगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता कटपादप्रवर्त्तने विनियोगः, ॐ प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतां, शिवा अरिष्ठा पतिलोकं गमेयम्।' अथ लज्जावशात् यदि वधूर्न पठति तदा मन्त्रमिमं जामाता स्वयं पठेत्—(६) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः द्विपाज्जगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता कन्याकटपादप्रवर्त्तने विनियोगः, ॐ प्र अस्याः पतियानः पन्थाः कल्पताः, शिवा अरिष्टा पतिलोकं गम्याः।'

ततः कटस्य पूर्व्वान्ते वधूः पत्युर्दक्षिणत उपविशति, जामाता च वध्वाः उत्तरतः। ततः प्रकृतहोमार्थं तूर्ष्णीं प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधमग्नौप्रक्षिप्य महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्,— 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप

४-संख्यक मन्त्र पाठ करे। तत्पश्चात् अग्निके पश्चिम दिशामें जाकर वधूके दक्षिण पैरके द्वारा पूर्वोक्त चटाईको कुशान्तरण स्थान तक हटाकर वधूको ५-संख्यक मन्त्र पाठ कराये। वधू लज्जावशतः मन्त्र पाठ न कर सकने पर जामाता स्वयं ६-संख्यक मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् उक्त

छन्दः श्रीनारायणो देवता महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा।।' ततो वधूर्दक्षिणहस्तेन पत्युर्दक्षिण स्कन्धं स्पृष्ट्वा तिष्ठति, जामाताच षड़ाज्याहुतीः जुहुयात्, यथा—'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः अतिजगती छन्दः श्रीविष्णु देवता आज्यहोमे विनियोगः, ॐ विष्णुः एतु प्रथमो वै सर्वेभ्यः, सोऽस्यै प्रजां मुञ्चातु मृत्युपाशात्, तदयं प्रभुः अच्युतः अनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रं अघं न रोदात् स्वाहा।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अतिजगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता आज्यहोमे विनियोगः, ॐ इमां कृष्णः त्रायतां गार्हपत्ये, प्रजां अस्यै जरदष्टिं कृणोतु, अशून्यक्रोड़ा जीवतां अस्तु माता, पौत्रं आनन्दम् अभिबुध्यताम् इयं स्वाहा।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः शक्वरी छन्दः श्रीविष्णुः देवता आज्यहोमे विनियोगः, ॐ हरिः ते रक्षतु पृष्ठं विष्णुः ऊरु, नरनारायणौ स्तनद्वयं ते पुत्रान् श्रीकृष्णः अभिरक्षतु आवाससः परिधानात्, अनन्तः अस्य अवतारा अभिरक्षन्तु पश्चात् स्वाहा।।३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अतिजगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता आज्यहोमे विनियोगः, ॐ मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थात्, अन्यत्र त्वत् रुदत्यः संविशन्तु, मा त्वं रुदती उर आ वधिष्ठा, जीवपत्नी पतिलोके विराज, पश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमानां स्वाहा।।४।। ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः उपरिष्टादबृहती छन्दः श्रीविष्णुः देवता आज्यहोमे विनियोगः, ॐ अप्रजस्यं प्रौत्रमर्त्त्यं पाप्मानं उत वै अघं, शीर्ष्णः स्रजम् इवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा।।५।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीविष्णुः देवता आज्यहोमे विनियोगः, ॐ परैतु मृत्युः अमृतं मे आगाद् वैवश्वतो नो अभयं कृणोतु परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यत्र नो अन्य इतरो देवयानात् चक्षुष्मते

शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषः मा उत वीरान् स्वाहा।।६।।' इति षड़ाज्याहुतिः समाप्य व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्, यथा 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीअनन्तो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमें विनियोगः ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा।'

अथ लाजहोमः कन्यापरिणयनञ्च।

ततो वधूसहितः पतिरुन्थाय पत्नीपृष्ठदेशेन दक्षिणदेशं गत्वा उत्तरमुखो दक्षिणहस्तेन वधूहस्तद्वयं अञ्जलिरूपं गृहीत्वा तिष्ठति। अथ वध्वा माता भ्राता अन्यो वा ब्राह्मणः पूर्वस्थापित-

---

चटाईके पूर्व प्रान्तमें वधू वरके दक्षिणमें, वर वधूके उत्तरमें बैठे। तदनन्तर प्रकृत होमके उद्देश्यसे प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें निक्षेप कर महाव्याहृति होम करें (मूलमें द्रष्टव्य)। अनन्तर वधू दाहिने हाथसे पतिका दाहिना कन्धा स्पर्श कर खड़ी होगी, जामाता छह आज्यहोम करे (मन्त्र मूलमें देखें)। आज्यहोम समाप्तकर व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम करना चाहिए—मूलमें देखें।

लाजहोम और परिणयन—अनन्तर पति वधूके साथ खड़ा हो, वधूके पीछे होकर दक्षिणकी ओर जाकर उत्तरमुखी होकर वधूके अंजलिबद्ध दोनों हाथोंको अपने दक्षिण हाथसे ग्रहण करे। तत्पश्चात् वधूकी माता,

लाजानादाय अग्रतः सपुत्रां शिलां निधाय वधूं दक्षिणपादाग्रेण शिलामाक्रामयति, जामाता च मन्त्रं पठति—(१) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता अश्माक्रामणे विनियोगः, ॐ इम् अश्मानं आरोह, अश्मेव त्वं स्थिरा भव परमपदे, द्विषन्तं अपवाधस्व, मा च त्व द्विषतां अधः।' ततो वध्वञ्जलौ पतिदत्तघृतस्रुवद्वयोपरि वध्वा मातादिः पञ्चावत्तान् लाजान् ददाति, पतिश्च तदुपरि घृतस्रुवद्वयं दद्यात्। ततो वरेणास्मिन् मन्त्रे पठिते वधूराञ्जलिभेदमकुर्व्वती लाजान् जुहोति—(२) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती छन्दः श्रीविष्णुः देवता लाजहोमे विनियोगः, ॐ इयं नारी उपब्रूते अग्नौ लाजान् आवपन्ती, दीर्घायुः अस्तु मे पतिः, शतं वर्षाणि जीवतु, एधतां नौ हरौ भक्तिः स्वाहा।' ततः पतिरग्रतो वधूं कृत्वा इमं मन्त्रं पठन् अग्नि प्रदक्षिणं करोति,—(३) 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता कन्या-परिणयने विनियोगः, ॐ कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यति इयम् अपदीक्षाम् अयष्ट, कन्ये उत त्वया वयं धारा उदन्या इव

उसका भ्राता या कोई ब्राह्मण पहलेसे स्थापित सूपमें रखे खीलको लेकर वधूके सामने लोढ़ासहित शिल स्थापितकर वधूका दक्षिण पैर शिलके ऊपर रखवाये एवं जामाता (१) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठ करे। वधूकी अजलिमें पतिके द्वारा प्रदत्त दो स्रुव घृतके ऊपर वधूकी माता आदि पाँच भाग खील दें। पति इस खीलके ऊपर पुनः दो स्रुव घृत दे। तत्पश्चात् वर (२) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठ करे। तत्पश्चात् वधू अपनी अंजलि खोले बिना खील अग्निमें हवन करे। तत्पश्चात् पति वधूको आगे कर (३) संख्यक मन्त्र पाठ करते-करते अग्निकी प्रदक्षिणा करे।।१।। वर पुनः पूर्ववत् वधूकी अंजलि ग्रहणकर उत्तरमुखी होकर

अतिगाहेमहि द्विष'।।१।। पुनस्तथैव वध्वञ्जलिं गृहीत्वा उत्तराभिमुखः पतिरवतिष्ठेत, पूर्व्ववत् मातादिः लाजानादाय तिष्ठेत्, वधूं दक्षिणपादेन सपुत्रां शिलामाक्रामयति, जामाता च पठति—(४) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता अश्माक्रामणे विनियोगः, ॐ इमम् अश्मानं आरोह, अश्मेव त्वं स्थिरा भव परमपदे द्विषन्तं अपवाधस्व, मा च त्वं द्विषतां अधः।' पुनस्तथैव वध्वञ्जलौ लाजादिकं दातव्यं, वधूः पूर्व्ववत् जुहोति, जामाता च पूर्व्ववत् मन्त्रं पठति—(५) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उपरिष्टाद्बृहती छन्दः श्रीविष्णुः देवता लाजहोमे विनियोगः, ॐ विष्णुं नु देवं, कन्या हरिम् अयक्षत, स इमां देवो विष्णुः प्र इतो मुञ्चातु माम् उत स्वाहा।' ततः पुनः पूर्व्ववत् पतिर्वधूमग्रतः कृत्वा मन्त्रमिमं पठन् अग्निं प्रदक्षिणं करोति—(६) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता कन्यापरिणयने विनियोगः, ॐ कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यति इयम् अपदीक्षां अयष्ट, कन्ये उत त्वया वयं धारा उदन्या इव अतिगाहेमहि द्विषः।।२।।' पुनस्तथैव वध्वञ्जलिं गृहीत्वा उत्तरमुखः पतिरवतिष्ठेत्। पूर्व्ववत् लाजादानाय मातादिर्वधूं दक्षिणपादाग्रेण शिलामाक्रामयति, जामाता च मन्त्रं पठति—(७) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः

खड़ा रहे। वधू दक्षिण पैरके द्वारा शिल और लोढ़ाको ठोकर मारे, जामाता (४) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठ करे; पुनः पूर्ववत् वधूकी अंजलिमें खील दे, वधू उससे हवन करे, जामाता (५) 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि होम मन्त्र पाठ करे; पति वधूको आगे कर (६) संख्यक मन्त्र पाठ करते-करते अग्निकी प्रदक्षिणा करे।।२।। पुनः उसी प्रकार वधूकी अंजलिको ग्रहणकर पति उत्तरमुखी होकर खड़ा रहे, माता आदि खीलको ग्रहणकर

अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णु देवता अश्माक्रामणे विनियोगः, ॐ इमम् अश्मानं आरोह, अश्मेव त्वं स्थिरा भव परमपदे द्विषन्तं अपवाधस्व, मा च त्वं द्विषता अधः।' पुनस्तथैव लाजादिभिः वध्वा अञ्जलिपूरणं वधूकर्त्तृको होमः, जामाता च पठति—(८) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उपरिष्टाद्बृहती छन्दः श्रीविष्णुः देवता लाजहोमे विनियोगः, ॐ विष्णुं नु देवं कन्या हरिम् अयक्षत, स इमां देवो विष्णुः प्र इतो मुञ्चातु माम् उत स्वाहा।' पतिर्वधूसहितः पूर्ववत् अग्निं प्रदक्षिणं करोति, पठति च—(९) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता कन्यापरिणयने विनियोगः, ॐ कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यती इयम् अपदीक्षां अयष्ट, कन्ये उत त्वया वयं धारा उदन्या इव अतिगाहेमहि द्विषः।।३।।' ततः शूर्पस्योत्तरार्द्धे घृतस्रुवद्वयं दत्त्वा तदुपरि लाजशेषं निधाय पुनस्तदुपरि घृतस्रुवद्वयं दत्त्वा, 'ॐ स्वस्तिकृते श्रीअच्युताय स्वाहा', मन्त्रेण शूर्पेणैव जुहुयात्।

वधूके दाहिने पैरके द्वारा शिलको ठोकर मरवायें। जामाता (७) संख्यक मन्त्र 'ॐ प्रजापतिः इत्यादि पाठ करें; पुनः खील आदि द्वारा वधूकी अंजलि पूर्ण करें, वधूके द्वारा होम (८) एवं जामाता 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठ करे। तत्पश्चात् वधूके साथ पूर्ववत् अग्नि प्रदक्षिणा एवं जामाता ' ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्र पाठ करे। तत्पश्चात् वधूके साथ पूर्ववत् अग्नि प्रदक्षिणा एवं जामाता (९) संख्यक मन्त्र पाठ करे।।३।। तदनन्तर सूपके अग्रभागमें दो स्रुव घृत देकर उसके ऊपर अवशिष्ट खील रखे, उसके ऊपर पुनः दो स्रुव घृत देकर 'ॐ स्वस्तिकृते' इत्यादि मन्त्रसे सूपके द्वारा होम करे।

सप्तपदीगमन—अनन्तर पति सात मन्त्रोंके द्वारा सात मण्डलमें पदक्षेप कराकर वधूको ईशान कोणमें ले जावे। वधू पहिले दाहिना पैर और पीछे बाँया पैर रखे। जामाता वधूको कहे—'मा वामपदेन' इत्यादि।

अथ **सप्तपदीगमनम्** । ततो जामाता ऐशान्यां दिशि वधूं सप्तभिर्मन्त्रैः सप्तसु मण्डलिकासु सप्तपदानि नयेत्, वधूश्च मण्डलिकायां अग्रे दक्षिणपादं नीत्वा पश्चात् वामपादं नयेत्, जामाता च वधूमिदं ब्रुयात्—'मा वामपदेन दक्षिणपादं आक्राम।' 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः एकपाद् विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता एकपादाक्रमणे विनियोगः, ॐ एकम् इषे विष्णुः त्वा नयतु'।।१।। इति प्रथमं दक्षिणं पादं नयति। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः द्विपाद्विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता द्विपादाक्रमणे विनियोगः, ॐ द्वे ऊर्जे विष्णुः त्वा नयतु'।।२।। इति वामं पादं नयति। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिपाद्विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता त्रिपादाक्रमणे विनियोगः, ॐ त्रीणि व्रताय विष्णुः त्वा नयतु'।।३।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः चतुष्पाद्विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता चतुष्पादाक्रमणे विनियोगः, ॐ चत्वारि मायोभवाय विष्णुः त्वा नयतु'।।४।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः पञ्चपादद्विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता पञ्चपादाक्रमणे विनियोगः, ॐ पञ्च पशुभ्यो विष्णुः त्वा नयतु'।।५।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः षट्पाद्विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता षट्पादाक्रमणे विनियोगः, 'ॐ षड्रायस्पोषाय विष्णुः त्वा नयतु'।।६।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः सप्तपाद्विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता सप्तपादाक्रमणे विनियोगः, ॐ सप्त सप्तभ्यो होत्राभ्यो विष्णुः त्वा नयतु'।।७।।

जामाता एक-एक मन्त्र पाठ करे, वधू एक-एक पैर आगे बढ़ावे। सप्तपदीगमनके पश्चात् पति वधूको आशीर्वाद करे—'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि। तत्पश्चात् जामाता विवाह दर्शनार्थ समागत व्यक्तियोंको 'ॐ प्रजापतिः इत्यादि मन्त्रसे आमन्त्रण करे। अनन्तर जलकुम्भ धारण करनेवाला

ततः सप्तपदीगतां कन्याः पतिराशास्ते—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः सामिकीपङ्क्तिः छन्दः श्रीहरिः देवता पादाक्रमणानन्तरं आशासने विनियोगः, ॐ सखा सप्तपदी भव, सख्यं ते गमेयं, सख्यं ते मा योषाः, संख्यं ते मा योष्ट्याः।'

ततो जामाता विवाहं द्रष्टुमागतान् जनान् आमन्त्रयेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता विवाहप्रेक्षकजनामन्त्रणे विनियोगः, ॐ सुमङ्गलीः इयं वधूः, इमां समेत पश्यत, सौभाग्यम् अस्यै दत्त्वाय अस्तं विपरेतन।'

तत उदककुम्भधारी जामातुर्वयस्योऽग्नेः पश्चिमदेशेन सप्तपदीस्थानमागत्य मूर्द्ध्नि वरमभिषिञ्चेत्। जामाता च पठति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टूप् छन्दः श्रीवासुदेवाद्या देवता मूर्द्धाभिषेचने विनियोगः,—ॐ समञ्जन्तु वासुदेवाद्याः सम् आपो हृदयानि नौ, सम् मातरिश्वा सम् धाता समु देष्ट्री दधातु नौ। पश्चादनेनैव मन्त्रेण वधूमप्यभिषिञ्चेत्।

अथ पाणिग्रहणम्।

ततो जामाता अधोनिहितवामहस्तेन वध्वञ्जलिं, दक्षिण हस्तेन च साङ्गुष्ठमुत्तानं वधूदक्षिणहस्तं गृहीत्वा सप्तपदीस्थान

साथी अग्निके पश्चिमसे सप्तपदीस्थानमें आकर वरके मस्तकके ऊपर अभिषेक करे एवं जामाता 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। इसके पश्चात् इसी मन्त्रके द्वारा वधूके मस्तकके ऊपर अभिषेक करे।

पाणिग्रहण—तदनन्तर सप्तपदीस्थानमें जामाता नीचे बायें हाथसे वधूकी अंजलि ग्रहणकर दाहिने हाथसे वधूका उत्तानभावस्थ दक्षिण हाथ अंगुष्ठके साथ धारण कर, (मूलमें लिखे) छः मन्त्रोंका जप करे। तत्पश्चात् पाणि ग्रहणकर अग्निके समीप आकर वधूको बायीं ओर रखकर बैठे तथा

एव षन्मन्त्रान् जपति—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः सनकादयो देवता गृहीताकन्यापाणेः पत्युः जपे विनियोगः, ॐ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं, मया पत्या जरदष्टिः यथा आसः, सनक-सनातन-सनन्दन-सनत्कुमारः मह्यं त्वा अदुः कार्ष्णगार्हपत्याय।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता गृहीतकन्यापाणेः पत्युः जपे विनियोगः, ॐ अघोरचक्षुः अपतिघ्नी एधि, शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्च्चाः वीरसूः जीवसूः कृष्णकामा स्योना, शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः जगती छन्दः श्रीविष्णुः देवता गृहीतकन्यापाणेः पत्युः जपे विनियोगः, ॐ आ नः प्रजां जनयतु विष्णुः आजरसाय, समनक्तु कृष्णः अदुर्मङ्गलीः पतिलोकम् आविश, शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता गृहीतकन्यापाणेः पत्युः जपे विनियोगः, ॐ इमां त्वं विष्णो मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृधि, दश अस्यां पुत्रानाधेहि, पतिम् एकादशं कुरु ।।४।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता गृहीतकन्यापाणेः पत्युः जपे विनियोगः, ॐ सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव, ननन्दरि च सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु।।५।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता गृहीतकन्यापाणेः पत्युः

व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम करे। तत्पश्चात् प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध अग्निमें अमन्त्रक होम करे। [अनन्तर साधारण शाट्यायन होमसे वामदेव्यगान पर्यन्त उदीच्यकर्म पूर्ण करे तथा दक्षिणा दे। किन्तु विवाह-होमके दिन चतुर्थी होम करनेसे शाट्यायन होमादि उसके पीछे करना चाहिए।] इति पाणिग्रहण।।

जपे विनियोगः, ॐ मम व्रते हृदयं दधातु, मम चित्तं अनु चित्तं तेऽस्तु, मम वाचम् एकमना जुषस्व, श्रीविष्णुः त्वा नियुनक्तु मह्यम्'।।६।।

ततः पाणिग्रहणानन्तरम् अग्निसमीपमागत्य वधूं वामतः कृत्वोपविष्टा जामाता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः,—ॐ भूः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः ॐ स्वः स्वाहा। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीअनन्तो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा'।। ततः प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ जुहुयात्। [ततः सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्तमुदीच्यं कर्म्म कृत्वा दक्षिणां दद्यात् किन्तु विवाहहोमदिवसे चतुर्थीहोमश्चेत् क्रियते, शाट्यायनहोमादिस्तु अन्ते कर्त्तव्यः।] इति पाणिग्रहणकर्म्म।

(४ङ) अथ उत्तरविवाहः

अथ [पुनरपि योजकनामानमग्निं संस्थाप्य विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, यदि दिवाभागे विवाहस्तदा नक्षत्रोदयं यावत् पतिस्तिष्ठेत, अथोदिते नक्षत्रे] सुखासने वधूं वाग्यतामुपवेश्य उपविष्टो वरः पुनरपि समित्प्रक्षेपानन्तरं व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कृत्वा षड़ाज्याहुतीः जुहुयात्, प्रत्याहुतिशेषञ्च स्रुवलग्नमाज्यं वधूशिरसि निदध्यात्। षण्णां मन्त्राणाम् ऋष्यादयः साधारणाः। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता उत्तरविवाहे पाणिग्रहण-स्याज्यहोमे विनियोगः, ॐ लेखासन्धिषु पक्ष्मसु आवर्त्तेशु च यानिते, तानि ते पूर्णाहुत्या सर्व्वाणि शमयामि अहं स्वाहा।।१।। ॐ केशेषु यच्च पापकम् ईक्षिते रुदिते च यत्, तानि ते पूर्णाहुत्या सर्व्वाणि शमयामि अहं स्वाहा।।२।। ॐ शीले यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्, तानि ते पूर्णाहुत्या सर्व्वाणि शमयामि अहं स्वाहा।।३।। ॐ आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् तानि ते पूर्णाहुत्या सर्व्वाणि शमयामि अहं स्वाहा।।४।। ॐ ऊर्व्वोः उपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि

(४ङ) उत्तरविवाह—अनन्तर [पुनः योजक नामक अग्नि स्थापन करके विरूपाक्ष जप और कुशण्डिका समाप्तकर, दिवा भागमें विवाह होनेसे नक्षत्रोदय तक पति प्रतीक्षा करे। नक्षत्र उदित होनेपर] वधू चुपचाप आसन पर बैठे, पति आसन पर बैठकर पुनः समिध लेकर अग्निमें निक्षेप कर, व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम कर छह मन्त्रोंसे छह आज्य होम करे। प्रति बार होमके अन्तमें स्रुवसे लगे हुए घी को वधूके मस्तकपर दे। सभी मन्त्रोंके ऋषि आदि समान हैं। मूल मन्त्र द्रष्टव्य है। तत्पश्चात् वर वधूके साथ खड़े होकर बाहर आकर (क)—मन्त्रका पाठ

ते, तानि ते पूर्णाहुत्या सर्व्वाणि शमयामि अहं स्वाहा।।५।। ॐ यानि कानि च घोराणि सर्व्वाङ्गेषु तव अभवन्, पूर्णाहुतिभिः आज्यस्य सर्व्वाणि तानि अशीशमं स्वाहा'।।६।।

ततः सवधूर्वरः उत्थाय बहिर्निष्क्रम्य वधूमिमं मन्त्रं पाठयन् ध्रुवं दर्शयति—(क) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दो ध्रुवप्रियो देवता ध्रुवदर्शने विनियोगः, ॐ ध्रुवम् असि, ध्रुवा अहं पतिकुले, श्रीविष्णुवैष्णवसेवासु भूयासं, श्रीअमुकदासाधिकारिनः अनुगता श्रीअमुकदेव्यहम्।' इति उभयोर्नामग्रहणं वध्वा कर्त्तव्यम्। ततो जामाता वधूममुं मन्त्रं पाठयन् अरुन्धतीं दर्शयति—(ख) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता अरुन्धतीदर्शने विनियोगः, ॐ अरुन्धतिः अवरुद्धा अहम् अस्मि।' ततो वधूं पश्यन् वरो जपति—(ग) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता कन्यानुमन्त्रणे विनियोगः, ॐ ध्रुवा द्यौः, ध्रुवा पृथिवी, ध्रुवं विश्वम् इदं जगत्, ध्रुवासः पर्व्वता इमे, ध्रुवा स्त्री प्रतिकुले श्रीविष्णुवैष्णव-सेवासु इयम्।' ततो वधूः पितृ-गोत्रेण (१) भर्त्तारभिवादयेत्—

कराते-कराते वधूको ध्रुवका दर्शन कराये। [मन्त्र पाठके समय वधू पतिका और अपने नामका उल्लेख करे]। अनन्तर वर वधूको (ख)—मन्त्रका पाठ कराते-कराते अरुन्धतीका दर्शन कराये। अतःपर वधूकी ओर देखकर जामाता (ग)—मन्त्रका पाठ करे। अनन्तर वधू अपने पितृगोत्रका उल्लेख करते हुए 'अमुक गोत्रा' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करते हुए पतिका अभिवादन करे। वर 'ॐ कृष्णमतिः भव सौम्ये' कहकर

---

(१) चतुर्थी होमके पूर्व वधूका गोत्रान्तर सम्पूर्ण नहीं होता। इसलिए चतुर्थी होमके पूर्व तक कन्याके पितृ गोत्रका उल्लेख होता रहेगा। इसके पश्चात् पतिके गोत्रका उल्लेख होना चाहिए।

'अमुकगोत्रा श्रीअमुकीदेवी अहं भो भवन्तम् अमुकगोत्रं अभिवादये।' वरो वदेत्—'ॐ कृष्णमतिः भव सौम्ये।' ततस्त्यक्तमौनया वध्वा सहित वरम् आचारतो वेदीमुत्थाप्य जलपूर्णकलसमादाय अविधवा नार्य्यः सहकारपल्लवोदकेन स्नानादिमङ्गलं कुर्य्युः। ततो वरः अग्निसमीपमागत्य पूर्व्ववत् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं समित्क्षेपं उदीच्यं कर्म्म च कुर्य्यात्।

(४च) अथ भोजनादिधृतिहोमः

तत्र जामाता एभिर्मन्त्रैः श्रीमहाप्रसादान्नं भुञ्जीत। मन्त्रो यथा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता महाप्रसादान्नभोजने विनियोगः, ॐ श्रीमहाप्रसादान्नेन अनेन प्राणसूत्रेण विष्णुना वध्नामि सत्यग्रन्थिना, मनश्च हृदयञ्च ते ।।१।; ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता श्रीविष्णुवैष्णवसेवनकर्म्मसु दम्पत्योः हृदयैक्यप्रार्थने

आशीर्वाद करे। सधवा नारियाँ वर-वधूको वेदीमें ले जाकर जलपूर्ण कलशसे सहकार-पल्लवके जलके द्वारा स्नान आदि मंगलाचार करें। तत्पश्चात् वर अग्निके समीप आकर पूर्ववत् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम, समित्क्षेप और उदीच्यकर्म करे।

(४च) भोजनादिधृतिहोम—तत्पश्चात् जामाता मूलोक्त तीन मन्त्रोंसे श्रीमहाप्रसाद अन्न भोजन करे। तृतीय मन्त्रमें 'असौ' के स्थान पर देवीपदान्त और सम्बोधनान्त वधूका नाम उल्लेख करे। यदि उस समय भोजन न किया जाय तब पीछेसे भोजनके लिए महाप्रसाद आदि रख देना चाहिए। भोजनके पश्चात् अवशिष्ट महाप्रसाद वधूको दें। उसी दिनसे दम्पति तीन रात तक महाप्रसाद सेवनपूर्वक ब्रह्मचारी रहकर भूमिमें शयन करें।

ॐ यदेतद् हृदयं तव, तदस्तु हृदयं मम, यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः द्विपाज्जगती छन्दः श्रीहरिः देवता अन्नस्तुतौ विनियोगः, ॐ अन्नं प्राणस्य पङ्क्तिंशः, तेन वध्नामि त्वा असौ (वधूनाम) स्वाहा'।।३।। असावित्यत्र देव्यन्त-सम्बोधनान्तं वधूनाम् योज्यम्। इदानीं यदि न भुज्यते, तच्च श्रीमहाप्रसादादिकं पश्चात् भोजनार्थं स्थापनीयम्। भुक्तोच्छिष्टं वध्वै प्रदातव्यम्। ततः प्रभृति त्रिरात्रं महाप्रसादमात्रसेविनौ दम्पती ब्रह्मचारिणौ भूमिशय्यायां शयीयाताम्।

ततो दिनान्तरे अनेन मन्त्रेण वधूं रथारूढ़ां कृत्वा वरः स्वगृहं नयेत्,—(१) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता यानारोहणे विनियोगः, ॐ सुकिंशुकं शाल्मलिं विश्वरूपं सुवर्णवर्णं सुकृतं सुचक्रम्, आरोह सूर्य्ये अमृतस्य नाभिं, स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व।। ततो वधूसहितः पतिर्गच्छन् अध्वनि चतुष्पथादीन् आमन्त्रयेत्—(२) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता चतुष्पथाद्यामन्त्रणे

दूसरे दिन पति वधूको (१) संख्यक मन्त्र पाठ कराकर पालकी आदि सवारीमें चढ़ाकर अपने घरमें ले जावे। वधूके सहित गमन करते समय पति २-संख्यक मन्त्रसे पथमें चतुष्पथादि आमन्त्रण करे। वधूको पालकीसे उतारकर वामदेव्यगान (अथवा केवल स्वस्ति-गान) पाठपूर्वक गृहमें प्रवेश करावे । पुत्रवती सधवा वैष्णवी-स्त्रियाँ वधूको शुभासन पर बैठावें। जामाता ३-संख्यक मन्त्र पाठ करे। अनन्तर पति धृति-नामक अग्निकी स्थापना कर समिध प्रक्षेप और व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोम कर मूलोक्त आठ आज्य होम करे। सभी मन्त्रोंके ऋषि आदि एक समान हैं। आज्य होमके पश्चात् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम और समिध प्रक्षेपकर

विनियोगः, ॐ मा विदन् परिपन्थिनो ये आसीदन्ति दम्पती, सुगेभिः दुगम् अतीताम्, अपद्रान्तु अरातयः।।' ततो यानादवतार्य्य, वामदेव्यं गीत्वा पतिर्वधूं गृहं प्रवेशयेत्। ततः कृतमङ्गलाचाराः पुत्रवत्यः अविधवा वैष्णव्यः वधूं शुभासने उपवेशयेयुः, पतिश्च मन्त्रं पठति—(३) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता आसनोपवेशने विनियोगः, ॐ इह गावः प्रजायन्ताम्, इह अश्वा, इह पूरुषाः, इह उ प्रेम्ना समर्च्चितो श्रीवासुदेवो विराजताम्।।' ततः पतिः कुशण्डिकाविधानेन धृतिनामानमग्निं संस्थाप्य समित्प्रक्षेपं, व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति-होमञ्च कृत्वा अष्टावाज्याहुतीर्जुहुयात्। अष्टानां मन्त्राणाम् ऋष्यादयः साधारणाः।—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीविष्णुः देवता धृतिहोमे विनियोगः, ॐ इह धृतिः स्वाहा।।१।। ॐ इह स्वधृतिः स्वाहा।।२।। ॐ इह रन्तिः स्वाहा।।३।। ॐ इह रमस्व स्वाहा।।४।। ॐ मयि धृतिः स्वाहा।।५।। ॐ मयि स्वधृतिः स्वाहा।।६।। ॐ मयि रमः स्वाहा।।७।। ॐ मयि रमस्व स्वाहा।।८।।' ततो व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, पतिर्वधूं श्वशुरादिषु पितृगोत्रेणाभिवादनं कारयेत्। ततः सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्तं उदीच्यं कर्म्म समाप्य कर्म्मकारयितृवैष्णवब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात्।।

वधूके द्वारा पितृगोत्र उल्लेखपूर्वक श्वसुर आदिका अभिवादन करायें। तत्पश्चात् सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्य कर्म समाप्तकर कर्म करानेवाले पाञ्चरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा दें।

(४छ) चतुर्थीहोमः

अथ विवाहदिवसाच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थी होमः कर्त्तव्यः। तत्र प्रथमं कुशण्डिकोक्तविधिना शिखिनामानमग्निं संस्थाप्य तूष्णीं समित्प्रक्षेपं व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमञ्च कृत्वा, दक्षिणतो वधूमुपवेश्य तुलसी-चन्दन-गन्धपुष्पकुशादिसहितमुदकपात्रम् अग्नेर्दक्षिणतो निधाय वक्ष्यमानमन्त्रैर्विंशत्याहुतीर्जुहुयात्, प्रत्याहुतिशेषञ्च स्रुवलग्नमाज्यम् उदकपात्रे संपातयेत्। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीकृष्णो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ कृष्ण प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अवैष्णवी लक्ष्मीः ताम् अस्या अपजहि स्वाहा।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीकेशवो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ केशवो प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अवैष्णवी लक्ष्मीः तां अस्या अपजहि स्वाहा।।२।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीगोविन्दो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ गोविन्द प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि' या अस्याः अवैष्णवी लक्ष्मीः ताम् अस्याः अपजहि

(४छ) चतुर्थी होम—विवाहसे चौथे दिन चतुर्थी होम करना चाहिए। पहले कुशण्डिका विधानसे **शिखि** नामक अग्निकी स्थापना कर अमन्त्रक समिध क्षेप और व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम करके वधूको दक्षिणभागमें बैठाकर तुलसी, चन्दन, गन्ध, पुष्प, कुशादि सहित जलपात्र अग्निके दक्षिणमें स्थापनपूर्वक मूलमें कहे गये मन्त्रसे बीस होम करे एवं प्रत्येक बार होमके अन्तमें स्रुव संलग्न घृत जलपात्रमें निक्षेप करे।

स्वाहा।।३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीनारायणो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ नारायण प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अवैष्णवी लक्ष्मीः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।४।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीकृष्ण केशव-गोविन्द-नारायणाश्चतस्रो देवताः चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ कृष्णकेशवगोविन्दनारायणाः प्रायश्चित्तयः, यूयं जीवानां प्रायश्चित्तयः स्थ, दासो वो नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अवैष्णवी लक्ष्मीः ताम् अस्याः अपहत स्वाहा।।५।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीहरिः देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ हरे प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः भक्तिघ्नी तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।६।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमाधवो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ माधव प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः भक्तिघ्नी तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।७।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनन्तो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ अनन्त प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः भक्तिघ्नी तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।८।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमधुसूदनो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ मधुसूदन प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः भक्तिघ्नी तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।९।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः हरिमाधवानन्तमधुसूदनाश्चतस्रो देवताः

चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ हरिमाधवानन्तमधुसूदनाः प्रायश्चित्तयः, यूयं जीवानां प्रायश्चित्तयः स्थ, दासो वो नाथकाम उपधावामि, या अस्याः भक्तिघ्नी तनूः ताम् अस्याः अपहत स्वाहा।।१०।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ विष्णो प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्या अपुत्र्या तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।११।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीनृसिंहो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ नृसिंह प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपुत्र्या तनू ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।१२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ अच्युत प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपुत्र्या तनू ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।१३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीजनार्द्दनो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ जनार्दन प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपुत्र्या तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।१४।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुनृसिंहाच्युतजनार्द्दनाश्चतस्रो देवताः चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ विष्णुनृसिंहाच्युतजनार्द्दनाः प्रायश्चित्तयः यूयं जीवानां प्रायश्चित्तयः स्थ, दासो वो नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपुत्र्या तनूः ताम् अस्याः अपहत स्वाहा।।१५।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीवासुदेवो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ वासुदेव प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा

नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपशव्या तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।१६।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीसङ्कर्षणो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ सङ्कर्षण प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपशव्या तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।१७।। ॐ प्रजापतिः विष्ण ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीप्रद्युम्नो देवता चतुर्थीहोमेः विनियोगः, ॐ प्रद्युम्न प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, य अस्याः अपशव्या तनूः ताम् अस्याः अपजहि स्वाहा।।१८।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनिरुद्धो देवता चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ अनिरुद्ध प्रायश्चित्ते, त्वं जीवानां प्रायश्चित्तिः असि, दासः त्वा नाथकाम उपधावामि, या अस्याः अपशव्या तनूः तां अस्याः अपजहि स्वाहा।।१९।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीवासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाः चतस्रो देवताः चतुर्थीहोमे विनियोगः, ॐ वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाः प्रायश्चित्तयः, यूयं जीवानां प्रायश्चित्तयः स्थ, या अस्याः अपशव्या तनूः ताम् अस्याः अपहत स्वाहा'।।२०।।

ततो वधूसहितं जामातारमुत्थाप्य अग्नेरुत्तरदेशं नीत्वा स्रुवलग्नाज्यमिश्रोदकेन अविधवा पुत्रवत्यो नार्य्यः सहकारपल्लवोदकेन स्नापनादिमङ्गलं कुर्य्युः। ततो व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः

अतःपर वधूके साथ जामाताको उठाकर अग्निके उत्तरमें ले जाकर, सधवा पुत्रवती नारियाँ आम्रपल्लवके द्वारा उक्त स्रुवलग्न आज्यमिश्रित

श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा।।' ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीअनन्तो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा।। ततः प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधमग्नौ तूष्णीं हुत्वा, सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्तं उदीच्यं कर्म्म कुर्य्यात्। तदभिधीयते, यथा—

(४ज) उदीच्यं कर्म्म

ॐ विष्णुः ॐ तत्सत् अद्येत्यादि अत्र अमुक कर्म्मणि यत्किञ्चित् वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय श्रीकृष्णस्मरणपूर्व्वकं शाट्यायनहोम् अहं कुर्वीय इति संकल्प्य विधूनामानमग्निमावाह्य सम्पूज्य पुनरपि पूर्व्ववत् अग्नौ घृताक्तां समिधं प्रादेशप्रमाणां तूष्णीं दत्त्वा महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। ततः श्रीकृष्णं स्मरेत्, यथा—ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः इत्यादि। तत प्रायश्चित्तहोमं कुर्य्यात्, यथा—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री

जलसेक कर मंगलस्नान करावें। तत्पश्चात् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम, अमन्त्रक घृताक्त समिध् प्रक्षेप, सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त **उदीच्य कर्म** करना कर्त्तव्य है।

(४ज) **उदीच्यकर्म—** 'ॐ विष्णुः' इत्यादि मन्त्रसे संकल्पकर विधू नामक अग्निका आवाहन और पूजा कर, अमन्त्रक (बिना मन्त्र कहे) समिध् निक्षेपपूर्वक **महाव्याहृतिहोम** करे। तत्पश्चात् 'ॐ कृष्णो वै

छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ पाहि नोऽच्युत एनसे स्वाहा।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ यज्ञः पाहि हरे विभो स्वाहा।।३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णु देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ सर्व्वं पाहि श्रियःपते स्वाहा।।४।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ पाहि नोऽनन्त एकया, पाहि उत द्वितीयया, पाहि ऊर्ज्ज तृतीयया, पाहि गीर्भिश्चतसृभिः विष्णो स्वाहा।।५।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ पुनः ऊर्ज्जा निवर्त्तस्व, पुनः विष्णो इषा आयुषा, पुनः नः पाहि अहंसः स्वाहा।।६।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ सह रय्या निवर्त्तस्व, विष्णो पिन्वस्व धारया, विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि स्वाहा।।७।।ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ आज्ञातं यदनाज्ञातं, यज्ञस्य क्रियते मिथु, विष्णो तदस्य कल्पय, त्वं हि वेत्थ यथातथं स्वाहा।।८।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता प्रायश्चित्तहोमे विनियोगः, ॐ प्रजापते विष्णो न त्वत् एतानि अन्यो, विश्वा जातानि परि ता बभूव, यत्कामाः ते जुहुमः तत् नोऽस्तु, वयं स्यामः पतयो रयीनां स्वाहा।।९।। ततः पूर्ववत् महाव्याहृतिहोमं समित्प्रक्षेपञ्च कुर्य्यात्।

ततः क्रमतो वैष्णवहोमः।

तत्र प्रथमं पञ्चमहाभागवतेभ्यः प्रत्येकं जुहुयात्—ॐ विष्वक्सेनाय स्वाहा। एवं सनकाय, सनातनाय, सनन्दनाय, सनत्कुमाराय।। ततो नवयोगेन्द्रेभ्यः प्रत्येकं जुहुयात्, ॐ कवये स्वाहा। एवं हवये, अन्तरीक्षाय, प्रबुद्धाय, पिप्पलायनाय, आविर्होत्राय, द्रुमिलाय, चमसाय, करभाजनाय।। ततो दशमहाभागवतेभ्यः ॐ नारदाय स्वाहा। एवं कपिलाय, यमभागवताय, भीष्मदेवाय, शुकदेवाय, जनकाय, सदाशिवाय, प्रह्लादाय, ब्रह्मणे, बलिराजाय।। ततः—ॐ स्वायम्भुवाय स्वाहा। एवं गरुड़ाय, हनूमते, अम्बरीषाय, व्यासदेवाय, उद्धवाय, युधिष्ठराय, भीमाय, अर्ज्जुनाय, नकुलाय, सहदेवाय, विदुराय, विष्णुराताय, बिभीषणाय।। ततः—ॐ श्रीकृष्णचैतन्याय स्वाहा, ॐ श्रीनित्यानन्दाय स्वाहा, ॐ श्रीअद्वैताय स्वाहा, ॐ पण्डितगदाधरादिभ्यः स्वाहा, ॐ श्रीवासादिभ्यः स्वाहा, ॐ श्रीरूपाय, ॐ सनातनाय, ॐ भट्टरघुनाथाय, ॐ श्रीजीवाय, ॐ गोपालभट्टाय, ॐ दासरघुनाथाय, ॐ दीक्षागुरवे, ॐ शिक्षागुरुभ्यः; ॐ श्रीनवद्वीपधाम्ने, ॐ श्रीमायापुर-योगपीठाय। ततः कृष्णप्रेयसीभ्यः प्रत्येकम्—ॐ अन्तरङ्गायै स्वाहा, ॐ पौर्णमास्यै स्वाहा, ॐ पद्मायै स्वाहा, ॐ महालक्ष्म्यै स्वाहा।

सच्चिदानन्दघनः' इत्यादि मन्त्रसे श्रीकृष्णका स्मरण करे। अतःपर मूलोक्त नौ मन्त्रोंसे प्रायश्चित्त होम करे। तदनन्तर पहलेकी भाँति महाव्याहृति होम और समिध् प्रक्षेप करे। तत्पश्चात् यथाक्रमसे वैष्णवहोम करे (मूलमें द्रष्टव्य है) । पहले विष्वक्सेन आदि पंच महाभागवतोंके लिए हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् कवि प्रभृति नव योगेन्द्रोंका हवन। तत्पश्चात् नारद आदि दस महाभागवतोंका एवं स्वायम्भुव मनु आदिका हवन, तदनन्तर

एवं ॐ गङ्गायै, ॐ यमुनायै, सरस्वत्यै, गोप्यै, वृन्दायै, गायत्र्यै, तुलस्यै, पृथिव्यै, गवे, यशोदायै, देवहूत्यै, देवक्यै, रोहिण्यै, सीतायै, द्रोपद्यै, कुन्त्यै, रुक्मिण्यै, सत्यभामायै, जाम्बवत्यै, नाग्नजित्यै, लक्ष्मणायै, कालिन्द्यै, भद्रायै, मित्रविन्दायै।। ततः श्रीगोपालोपासकानां तदावरणत्वेन श्रीदामादिनां होमः कर्त्तव्यः— ॐ श्रीदाम्ने स्वाहा, एवं सुदाम्ने, स्तोककृष्णाय, लवङ्गाय, अर्ज्जुनाय, वसुदाम्ने, विशालाय, सुबलाय, श्रीरामाय, श्रीकृष्णाय। ततः—ॐ नर्म्मसखिभ्यः स्वाहा, ॐ प्रियनर्मसखिभ्यः स्वाहा, ॐ सहचरेभ्यः, सर्व्वगोपालेभ्यः, नन्दाय, उपनन्दाय, सुनन्दाय, महानन्दाय, शुभानन्दाय, प्राणानन्दाय, सदानन्दाय।। श्रीयुगलोपासकानां श्रीकृष्णावरणत्वेन प्रियसखी-सहचरी-रङ्गिनी-प्रभृतियुथानां श्रीललितादीनाञ्च होमः कर्त्तव्यः। तत्र प्रथमं श्रीगुरुयुगलस्य होमः कर्त्तव्यः। यथा—गुरवे स्वाहा, ॐ सर्व्वेभ्यो महान्तगुरुभ्यः स्वाहा, ॐ चैत्यगुरवे स्वाहा।। ततः श्रीराधाहोमः— ॐ वार्षभानवि, गान्धर्व्विके, कार्त्तिकदेवी, श्रीकृष्णप्रिये, सर्व्वेश्वरी, क्लीं श्रीवृन्दावनसेवाधिकारप्रदे श्रीं ह्रीं तुभ्यं श्रीराधिकायै स्वाहा।। ततः श्रीकृष्णहोमः—ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः, कृष्ण आदिपूरुषः, कृष्णः पुरुषोत्तमः, कृष्णो हा उ कर्म्मादिमूलं, कृष्णः स ह सर्व्वैकार्य्यः, कृष्णः काशंकृदादीशमुखप्रभुपूज्यः, कृष्णोऽनादिः

पञ्चतत्त्वसहित श्रीकृष्णचैतन्यका होम करें। अनन्तर अन्तरंगा पौर्णमासी आदि कृष्णप्रेयसियोंका होम करना चाहिए। अतःपर श्रीगोपाल उपासकगण श्रीगोपालके आवरणरूपमें श्रीदाम आदिका होम करें। तत्पश्चात् नर्मसखा आदिका होम करें तत्पश्चात् श्रीयुगल उपासकगण श्रीकृष्णावरण प्रियसखी, सहचरी, रंगिणी आदिका एवं ललिता आदिका होम करे। उसमें पहले शिक्षा

तस्मिन्नजाण्डान्तर्बाह्ये यन्मङ्गलं तल्लभते कृती, क्लीं कृष्णाय ...... स्वाहा।। ततः—ॐ ललितायै स्वाहा, ॐ श्यामलायै:, ॐ विशाखायै, ॐ चम्पकलतायै, इन्दुरेखायै, सुदेव्यै, रङ्गदेव्यै, सुचित्रायै, तुङ्गविद्यायै, कुन्दलतायै; धन्यायै, मङ्गलायै, पद्मायै, शैब्यायै, भद्रायै, चित्रोत्पलायै, पाल्यै, तारायै, कुञ्जकलिकायै, निकुञ्जकलिकायै, सुखकलिकायै, रसकलिकायै, प्रमोदायै, धनिष्ठायै, तुलस्यै, रमायै, रम्यायै, विम्बोष्ठ्यै, रसदायै, आनन्ददायै, कलावत्यै; रूपमञ्जर्यै, अनङ्गमञ्जर्यै, रसमञ्जर्यै, लवङ्गमञ्जर्यै, कस्तूरीमञ्जर्यै, गुणमञ्जर्यै, रतिमञ्जर्यै, कर्पूरमञ्जर्यै। ॐ सर्व्वसखीभ्यः स्वाहा, ॐ सर्वसहचरीभ्यः, सर्व्वसङ्गिनीभ्यः, सर्व्वरङ्गिनीभ्यः। ॐ वृषभानुभ्यः स्वाहा, ॐ वृषभानुगणेभ्यः स्वाहा, ॐ कीर्त्तिदायै स्वाहा, ॐ सर्व्वकार्ष्णेभ्यः स्वाहा, ॐ सर्व्ववैष्णवेभ्यः स्वाहा, ॐ सर्व्ववैष्णवीभ्यः स्वाहा।। ततः—ॐ नारायणाय स्वाहा, ॐ कारणाब्धिशायिने स्वाहा। एवं गर्भोदशायिने, क्षीराब्धिशायिने, वैकुण्ठधाम्ने, वासुदेवाय, सङ्कर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय; गोलोकधाम्ने, मथुराधाम्ने, द्वारकाधाम्ने; मत्साय, कूर्म्माय, वराहाय, नृसिंहाय, वामनाय, सङ्कर्षण-रामाय, रघुनाथ-रामाय, जामदग्न्य-रामाय, बुद्धाय, कल्किने; सर्व्वेभ्यो गुणावतारेभ्यः, सर्व्वेभ्यो मन्वन्तरावतारेभ्यः, हंसाय, यज्ञाय, दत्तात्रेयाय, पृथवे, धन्वन्तरये, मोहिन्यै, विराजे, सत्ययुगावताराय, शुक्लमूर्त्तये, त्रेतायुगावताराय रक्तमूर्त्तये, द्वापरयुगावताराय कृष्णमूर्त्तये, कलियुगावताराय पीतमूर्त्तये,

---

एवं दीक्षा इन दो गुरुओंके लिए होम करना कर्त्तव्य है। तत्पश्चात् श्रीराधा होम। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण होम। तत्पश्चात् ललिता, श्यामला आदिका

श्रीवृन्दावनधाम्ने, श्रीवृन्दावनाय, द्वादशवनेभ्यः द्वात्रिंशत्-उपवनेभ्यः, ॐ श्रीं क्लीं ब्रजवासि-स्थावर-जङ्गम-सपरिकर-श्रीश्रीराधाकृष्णेभ्यः स्वाहा।।

ततो घृताक्तां प्रादेशप्रमाणां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा उदकाञ्जलिसेकैरग्निपर्य्युक्षणं कुर्य्यात्। यथा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनिरुद्धो देवता अग्निपर्य्युक्षणे विनियोगः, ॐ प्रभो अनिरुद्ध ! प्र सुव यज्ञं, प्र सुव यज्ञपतिं भगाय, पाता सर्व्वभूतस्थः केतपूः केतं नः पुनातु, वागीशः वाचं नः स्वदतु',—अनेन मन्त्रेण उदकाञ्जलिना दक्षिणावर्त्तने अग्नि वेष्टयेत्। ततः—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनन्तो देवता उदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ अनन्त अन्वमंस्थाः,—अनेनाग्नेर्दक्षिणतः पश्चिमान्तात् पूर्व्वान्तं यावदुदकाञ्जलिना सिञ्चेत्।।१।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतो देवता उदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ अच्युत अन्वमंस्थाः',—अनेनाग्नेः पश्चिमतः दक्षिणान्तादुत्तरान्तं यावत् उदकाञ्जलिना सिञ्चेत्।।२।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ सरस्वत्यन्वमंस्थाः', अनेनाग्नेरुत्तरतः पश्चिमान्तात् पूर्व्वान्तं यावत् उदकाञ्जलिना सिञ्चेत्।।३।।

तत उत्तानहस्तद्वयेन कतिपयास्तरणकुशान् गृहीत्वा दर्भजुटिकाहोमं कुर्य्यात्—(१) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री

होम। अतःपर श्रीनारायण और उनके अवतारोंका होम करना चाहिए।

होमके अन्तमें अमन्त्रक (बिना मन्त्रके) समिध् निक्षेपपूर्वक अग्निपर्युक्षण और उदकाञ्जलिसेक करना चाहिए। 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मन्त्रसे अग्निपर्युक्षण करें। तत्पश्चात् मूलमें कहे गये तीन मन्त्रोंसे तीन और

छन्दः श्रीविष्णुः देवता दर्भतृणाभ्यञ्जने विनियोगः, ॐ अक्तं रिहाणा व्यन्तु वयः',—अनेन अग्रमध्यमूलानि घृतेन बारत्रयं अभ्यनक्ति, मन्त्रश्चायं बारत्रयं पठितव्यः। ततस्तान् दर्भानद्-भिरभ्युक्ष्य—(२) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता दर्भजुटिकाहोमे विनियोगः, ॐ भो वैष्णवाना-मधिपते विष्णो ! रुद्र तन्तिचरो वृषा पशून् अस्माकं मा हींसीत्, एतदस्तु हुतं तव स्वाहा',—इत्यनेन अग्नौ क्षिपेत्।

ततो महाप्रसाद-वस्त्र-सूत्र-गन्ध-माल्य-चन्दन-पुष्प-फल-ताम्बूलादिभिरग्निं परितोष्य उत्थाय **पूर्णहोमं** कुर्य्यात्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः विराड् गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता विष्णुदास्ययशस्कामस्य यजनीयप्रयोगे विनियोगः, ॐ पूर्णहोमं यशसे विष्णवे जुहोमि, यः अस्मै विष्णवे जुहोति, स वरं अस्मै ददाति, विष्णोः वरं वृणे, यशसा भामि लोके स्वाहा', अनेन पूर्णाहूतिं दद्यात्।

ततः प्रदक्षिणेन गत्वा, (कुशमयब्राह्मणपक्षे) ब्रह्मग्रन्थिं मुक्त्वा, पुनरागत्य आसने उपविश्य पूर्वस्थापित-महाप्रसाद-गन्ध-पुष्प-चन्दन-तुलसी-फलादिसंयुत-पानीयपात्रोदकैः **शान्तिदानं** कुर्य्यात्,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता शान्तिकर्म्मणि जपे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः, कया नः चित्रे आभूवत् ऊती सदा वृधः सखा, कया शचिष्ठया वृता।। ॐ भूः भुवः स्वः कः त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सत् अन्धसः, दृढ़ा चिद् आरुजे वसु।। ॐ भूः भुवः स्वः अभी-षु-णः सखीनाम्

उदकाञ्जलिसेक करें। तदनन्तर **दर्भजुटिका होम**—अपने हथेलियोंको ऊपर रखते हुए दोनों हाथोंमें कुछ कुश लेकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि

अविता जरितृणां, शतं भवासि ऊतये।। ॐ स्वस्ति नो गोविन्दः स्वस्ति नोऽअच्युतानन्तौ, स्वस्ति नो वासुदेवो विष्णुः दधातु। स्वस्ति नो नारायणो नरो वै, स्वस्ति नः पद्नाभः पुरुषोत्तमो दधातु।। स्वस्ति नो विष्वक्सेनो विश्वेश्वरः, स्वस्ति नो हृषिकेशो हरिः दधातु।। स्वस्ति नो वैनतेयो हरिः, स्वस्ति नोऽञ्जनासुतो हनूः भागवतो दधातु।। स्वस्ति स्वस्ति सुमङ्गलैकेशो महान् श्रीकृष्णः, सच्चिदानन्दघनः सर्वेश्वरेश्वरो दधातु।। ॐ द्यौः शान्तिः, अन्तरीक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः, वायुः शान्तिः, तेज शान्तिः, औषधयः शान्तिः, लोकाः शान्तिः, ब्राह्मणाः शान्तिः, वैष्णवाः शान्तिः, शान्तिरस्तु, धृतिरस्तु।। ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः।। इति बारत्रयं पठेत्।।

ततः कर्म्मकारयितृ—वैष्णवब्राह्मणाय अन्योम्यो ब्राह्मणेभ्यश्च यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात्, ततोऽच्छिद्रवाचनं वैगुण्यसमाधानञ्च

१-संख्यक मन्त्र तीन बार उच्चारणपूर्वक, कुशोंके अग्र, मध्य, मूलमें यथाक्रमसे घृत द्वारा सिक्त करें। तत्पश्चात् उन कुशोंको जलके द्वारा अभ्युक्षणकर २-संख्यक मन्त्रका उल्लेखपूर्वक अग्निमें होम करें। **पूर्णहोम**—तत्पश्चात् महाप्रसाद, वस्त्र, सूत्र, गन्ध, माल्य, चन्दन, पुष्प, फल, ताम्बूल आदिके द्वारा अग्निको सन्तुष्ट कर खड़े होकर मूलोक्त मन्त्र द्वारा पूर्ण होम करे। **शान्तिदान**—अनन्तर प्रदक्षिणा करते हुए कुशमय ब्रह्माकी ब्रह्मग्रन्थि खोलकर पुनः आसनके ऊपर बैठकर पहले स्थापित महाप्रसाद, गन्ध, पुष्प, चन्दन, तुलसी, फल आदि सहित जलपात्रके जल द्वारा मूलोक्त मन्त्र पाठपूर्वक शान्तिदान करें। इस मन्त्रका तीन बार पाठ करे।

अतःपर कर्म करानेवाले पांचरात्रिक वैष्णवोंको और अन्यान्य ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। तत्पश्चात् अच्छिद्रवाचन और वैगुण्यसमाधान करे। यथाशक्ति कार्ष्णादि वैष्णवगणोंकी सेवा एवं जीवसन्तर्पण करे।

कुर्य्यात्। (सम्प्रदानकर्म्मणि द्रष्टव्यं)। यथाशक्ति कार्ष्णादि-वैष्णवसेवां जीवसन्तर्पणञ्च कुर्य्यात्। श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनं वैष्णवैः, तदशक्तौ कृष्णनाम कीर्त्तनं करणीयम्। सर्व्वेभ्यो दण्डवत् प्रणमेत्। इति उदीच्यं कर्म्म।

इति विवाह-कर्म्म समाप्तम्।।

---

(५) अथ गर्भाधानम्

ऋतुस्नानादूर्ध्वं निषेकदिवसे पतिः—कृतप्रातःकृत्यः स्नातः शुचिराचान्तः कृतनित्येष्टकृत्यः कार्ष्णादिपार्षदवैष्णवसहितं श्रीमद्भगवन्तं श्रीनारायणं पुरुषसूक्तमन्त्रैः यथाविधि सम्पूज्य सायंसध्यायामतीतायां शुभलग्ने प्राङ्गणे गोमयमृत्स्नावार्भिः सुलिप्तायां भूमौ प्रपूजित-श्रीशालाग्रामादिमूर्त्ति-सम्मुखं श्रीविष्णु-स्मरण-स्वस्तिवाचनपूर्व्वकं मन्त्रैरेभिः पञ्चकृत्वोऽर्घ्यं श्रीविष्णवे दद्यात्।

वैष्णवोंके द्वारा श्रीकृष्ण-संकीर्त्तन और असमर्थ होने पर कृष्णनाम-कीर्त्तन करे। सबको दण्डवत् प्रणाम करे। इति उदीच्यकर्म।। इति विवाह समाप्त।।

(५) **गर्भाधान**—ऋतु-स्नानके पश्चात् निषेकके दिन (पति द्वारा स्त्रीमें गर्भाधान करानेके दिन) पति प्रातःकृत्य समाप्तकर स्नान और शुचि होकर आचमनपूर्वक नित्य संध्या-पूजादि करे। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त मन्त्रोंसे विधिके अनुसार कार्ष्णादि, पार्षद, वैष्णवसहित श्रीनारायणका अर्चन करे। सायं-संध्या अतीत होने पर शुभलग्नके समयमें प्राङ्गणको गोमय, मृत्तिका और जलके द्वारा उत्तमरूपसे लिप्त भूमिमें श्रीशालग्राम आदि मूर्त्तिके सम्मुख श्रीविष्णुस्मरण और स्वस्तिवाचनपूर्वक पश्चात् लिखे गये मन्त्रसे श्रीविष्णुको पाँच बार अर्घ्य प्रदान करे। [श्रीरुद्रयामलमें

अर्घ्यानुष्ठान-प्रमाणं, यथा श्रीरुद्रयामले—पञ्चामृतं पञ्चगव्यं जलं दुग्धं हरीतकी। गन्ध-गुवाक-पुष्पानि चन्दनं मलयोद्भवम्।। हरिद्रा कुङ्कुमं दूर्वा सुगन्धि तुलसी तथा। हरेरर्घ्यं भवेत् धात्री माङ्गल्ये पूजनोत्सवे।। इति षोड़शाङ्गोऽर्घ्यः।। (१)

ततः शङ्खे तदभावे मृतपात्रे पञ्चामृत-पञ्चगव्य-जल-दुग्ध-हरीतकी-गन्ध-गुवाक-पुष्प-मलयजचन्दन-हरिद्रा कुङ्कुम-दूर्वा-तुलसी-सुगन्धि-धात्री-प्रभृतीनि गृहीत्वा श्रीविष्णवे पञ्चबारं अर्घ्यं दद्यात्, यथा—'ॐ जगन्नाथ महाबाहो सर्व्वोपद्रवनाशन। नवपुष्पोत्सवे मेऽर्घ्यं गृहाण जगदीश्वर।। एतदर्घ्यं ॐ श्रीविष्णवे नमः'।।१।। इति अर्घ्यं दद्यात्। एवं प्रतिबारम्। 'ॐ नारायण हरे राम गोविन्द गरुड़ध्वज। नवपुष्पोत्सवे मेऽर्घ्यं गृहाण परमेश्वर।।२।। ॐ दीनबन्धो कृपासिन्धो परमानन्दमाधव। नवपुष्पोत्सवे मेऽर्घ्यं गृहाण मधुसूदन।।३।। ॐ विश्वात्मन्

अर्घ्यका प्रमाण इस प्रकार दिया है—पंचामृत, पंचगव्य, जल, दुग्ध, हरीतकी, गन्ध, सुपारी, पुष्प, मलयज-चन्दन, हल्दी, कुंकुम, दूर्वा, सुगन्धि, तुलसी, कुश, आँवला—मांगलिक पूजा-उत्सवमें इन मांगलिक द्रव्योंके द्वारा श्रीहरिको अर्घ्य प्रदान करे।] शंखमें, शंखके अभावमें मिट्टीके पात्रमें पंचामृत इत्यादि लेकर मूलमें कहे गये मन्त्रका पाठकर श्रीविष्णुको पाँच बार अर्घ्य दे।

---

(१) अर्घ्यः—(क) आपः क्षीरं कुशाग्रञ्च दधि सर्पिः सतण्डूलम्। यवः सिद्धार्थकश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घ्यः प्रकीर्त्तितः।। अथवा—(ख) साक्षतं सुमनोयुक्तम् उदकं दधिमिश्रितम्।। विष्णुतत्त्वका अर्घ्य साधारणतः अति संक्षेपरूपमें गन्ध, पुष्प, जल और तुलसी एवं अन्य देवताओंका गन्ध, पुष्प, जल—यह अर्घ्योपकरण है।

विश्वबन्धो हि विश्वेश विश्वलोचन। नवपुष्पपोत्सवे मेऽर्घ्यं गृहाण श्यामसुन्दर।।४।। ॐ चिदानन्द हृषिकेश भक्तवश्य जनार्द्दन। नवपुष्पोत्सवे मेऽर्घ्यं कमलापते'।।५।।

एतत् श्रीविष्णुवैष्णवपूजार्घ्यदानादिकं सर्व्वं कर्म्म समाप्य निशायां निषेककर्म्म कुर्य्यात्। ततः अर्घ्यान्ते निषेकपूर्व्वक्षणे वा पतिः शुचिः सुगन्धः सुवेशः पूर्व्वाभिमुखोपविष्टायाः वध्वाः पश्चात् स्थित्वा, वध्वाः स्कन्धोपरिभावेन अवतीर्णेन दक्षिणहस्तेन उपस्थं स्पृशन् जपति—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्ण्वच्युतहरिजगदीशा देवता गर्भाधाने विनियोगः, ॐ विष्णुः योनिं कल्पयतु, अच्युतो रूपाणि पिंशतु आसिञ्चतु हरिः गर्भं जगदीशो दधातु ते ।।१।।' ततः पुनरपि उपस्थं स्पृशन् जपति— ॐ प्रजापतिः विष्णुः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीगर्भोदशायि-नरनारायणा देवता गर्भाधाने विनियोगः, 'ॐ गर्भं धेहि गर्भोदशायिन्, गर्भं ते नरनारायणौ आधत्तां पुष्करस्रजौ।।२।।' ततो नाभिपद्मं समाधाय पतिरेदुदीरयेत्—'ॐ दीर्घायुषं कृष्णभक्तं पुत्रं जनय सुव्रते।' ततो भार्य्याम् उपेयात्।। इति सामवेदीय-गर्भाधानम्।

विष्णु-वैष्णव पूजा और अर्घ्य प्रदान आदि सम्पादन कर रात्रि कालमें निषेक कार्यका अनुष्ठान करे। अर्घ्य आदि देनके बाद अथवा निषेकके पहले पति सुगन्धलिप्त, सुन्दर कपड़ेलत्ते धारणकर और पवित्र होकर, पूर्वमुखी उपविष्ट वधूके पीछे खड़े होकर, वधूके दक्षिण कन्धेसे होकर अपने दक्षिण हस्तके द्वारा वधूका क्रोड़देश स्पर्शपूर्वक १-संख्यक मन्त्रका पाठ करे। इस प्रकार पुनः २-संख्यक मन्त्रका पाठ करे। अतःपर वधूकी नाभिको स्पर्शकर 'ॐ दीर्घायुषं' इत्यादि मन्त्रका पाठकर निषेकका कार्य करे। इति सामवेदीय गर्भाधान।।

(६) अथ पुंसवनम्

प्रथमगर्भस्य तृतीयमासस्योपक्रमे शुभे दिने प्रातः कृतस्नानाह्निकः, कृतस्वेष्टविष्णुवैष्णवार्च्चनः ततः कृतसात्त्विकवृद्धिश्राद्धः (अर्थात् श्रीविष्णुमहाप्रसादचरणोदकैः कृतगुरुपरम्परापूजनः) पतिश्चन्द्रनामानमग्निं संस्थाप्य, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, कृतस्नानां वधूमग्नेः पश्चिमायां दिशि स्वदक्षिणतः उदगग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुखीमुपवेश्य, प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तुष्णीमग्नौ हुत्वा, व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। यथा,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दःश्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः ॐ

---

(६) **पुंसवन**—वधूके प्रथम गर्भके तृतीय मासके आरम्भमें पति शुभ दिनमें प्रातः स्नान, श्रीविष्णु पूजा और श्रीविष्णुका महाप्रसाद, चरणामृतके द्वारा गुरुपरम्पराकी पूजा करे। तत्पश्चात् चन्द-नामक अग्निकी स्थापना कर विरूपाक्ष जपके पश्चात् कुशण्डिका समापन करे। अनन्तर स्नान की हुई वधूको अग्निकी पश्चिम दिशामें अपने दक्षिणपार्श्वमें उत्तरकी ओर कुशासन पर पूर्वमुखी बैठाकर, प्रकृत कर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें बिना मन्त्रके निक्षेपकर मूलमें कहे गये क्रमसे व्यस्तसमस्त-महाव्याहृति होम करे। अनन्तर पति वधूके पृष्ठभागमें खड़े होकर वधूके दक्षिण कन्धेको स्पर्शपूर्वक हाथको नीचे ले जाकर वधूकी नाभि स्पर्शकर

भूः भुवः स्वः स्वाहा।।' ततः पतिरुत्थाय वधूपृष्ठदेशस्थितो वधूदक्षिणस्कन्धं स्पृष्ट्वा अवतीर्णेन दक्षिणहस्तेनाव्यवहितं नाभिदेशं स्पृशन् जपति—'प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहाविष्णुवासुदेवाच्युतानन्त-गोविन्द-विष्णवो देवताः पुंसवने विनियोगः, ॐ पुमांसौ महाविष्णुवासुदेवौ पुमांसौ अच्युतानन्तौ उभौ। पुमान् गोविन्दश्च विष्णुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे।।' मन्त्रमिमं बारत्रयं पठेत्।

ततो व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कृत्वा प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायन-होमादि वामदेव्यगानान्तं उदीच्यं कर्म्म समाप्य कर्म्मकाररितृ पाञ्चरात्रिकवैष्णवाय दक्षिणां दद्यात्। इति सामवेदीय पुंसवनकर्म्म।।

'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रका तीन बार पाठ करे।।

इसके पश्चात् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम अमन्त्रक प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें निक्षेपकर सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होमादि वामदेव्यगानके अन्तमें उदीच्यकर्म सम्पादन कर दक्षिणा-दान दे। इति सामवेदीय पुंसवन कर्म।।

(७) अथ सीमन्तोन्नयनम्

प्रथमगर्भस्य चतुर्थे षष्ठेऽष्टमे वा मासि सीमन्तोन्नयनं कर्त्तव्यम्। तत्र यदि दैवाद् यथाकाले गर्भाधान-पुंसवनकर्म्मणी न कृते, तदा सीमन्तोन्नयनदिवसे गर्भाधान-पुंसवनकर्म्मणी समाप्य सीमन्तोन्नयनं कार्य्यम्। तत्र प्रथमं कृतस्नानः कृतविष्ण्वर्च्चनः कृतसात्त्विकवृद्धिश्राद्धः पतिर्मङ्गलनामानमग्निं संस्थाप्य, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, संकल्पं कुर्य्यात्। यथा—'ॐ विष्णुः ॐ तत्सत् अद्येत्यादि एतन्मदीयपत्न्या यथाकाले गर्भाधान-पुंसवन-कर्म्मणोः अकरणजनितदोष प्रशमनाय शाट्यायन-होममहं कुर्व्वीय,'—इति संकल्प्य शाट्ययनहोमं कुर्य्यात् (उदीच्यकर्म्म द्रष्टव्यं)। ततो यथोक्तगर्भाधान-पुंसवन-कर्म्मणी समाप्य, प्रातः कृतस्नानां वधूं अग्नेः पश्चिमायां दिशि स्वदक्षिणत उदगग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुखीमुपवेश्य, प्रकृत-कर्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, व्यस्तसमस्त-

---

(७) **सीमन्तोन्नयन**—प्रथम गर्भके चौथे, छठवें और आठवें महिनेमें सीमन्तोन्नयन करें। यदि दैववशतः उस समय गर्भाधान और पुंसवन कर्म सम्पादित न हो सके, तो सीमन्तोन्नयनके दिनतक पहले गर्भाधान और पुंसवन ये दोनों कर्म सम्पादनकर सीमन्तोन्नयनका अनुष्ठान करे। पति प्रथम स्नानकर विष्णु-पूजा करे; पश्चात् सात्त्विक-वृद्धिश्राद्ध कर मंगल नामक अग्निकी स्थापना कर विरूपाक्ष जपके पश्चात् कुशण्डिकाका कार्य समाप्त करे। अतःपर 'ॐविष्णुः' इत्यादि संकल्पपूर्वक शाट्यायन होम करे। तत्पश्चात् यथोक्त विधानके अनुसार गर्भाधान और पुंसवन कार्य समापन कर वधूको प्रातः स्नान कराकर अग्निके पश्चिममें अपनी दाहिने ओर उत्तरकी ओर बिछाये हुए कुशासनपर पूर्वमुखी बैठाये और मुख्य कार्य आरम्भ करते हुए प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् बिना मन्त्रके

महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। यथा,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनूष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीअनन्तो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा।।'

ततो वधूपृष्ठदेशे स्थितः पूर्वाभिमुखः पतिः एकवृन्तस्थित पक्वोडुम्बरफलयुगलं पट्टसूत्रादिग्रथितं आचारप्राप्तसुवर्णादि-घटित-वासुदेव पादयुगलं यवप्रतिकृति सहितं रक्षार्थोपक्लप्त-निम्बसर्षपभल्लातकवचादुपेतं गृहीत्वा, 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता औडुम्बर-फलयुगलबन्धने विनियोगः, ॐ अयं ऊर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव, पर्ण वनस्पते नुत्वा नुत्वा च सूयतां रयिः।।'१।। अनेन वधूकण्ठ

अग्निमें प्रदान करे एवं व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम करे। होमके अन्तमें पति वधूके पीछे खड़ा होकर पट्टसूत्रादिके द्वारा ग्रथित और एक डालमें स्थित दो पके हुए गूलरके फल, आचारके अनुसार सुवर्ण आदिके द्वारा निर्मित वासुदेवके चरणयुगल और जौ-प्रतिकृति एवं रक्षाके लिए निम्ब, सरसों, भेला, वच प्रभृति लेकर 'ॐ प्रजापतिः विष्णुः' इत्यादि १-संख्यक मन्त्रसे उसे वधूके कण्ठमें बाँध दें। तत्पश्चात् तीन दर्भपिञ्जली (पवित्र) लेकर 'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मूलमें कहे २-संख्यक मन्त्रका पाठकर उक्त दर्भपिञ्जलीके द्वारा वधूके सीमन्तमें (सिन्दूर प्रदानके स्थानमें) ऊपरकी ओर लगाकर दर्भपिञ्जलीत्रय केशमें स्थापन करें। [प्रादेशप्रमाण दो

दद्यात्।। ततो दर्भपिञ्जलीत्रयं गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता दर्भपिञ्जलीभिः सीमन्तोन्नयने विनियोगः, ॐ भूः।।'२।। इति दर्भपिञ्जलीभिः वध्वाः केशान्तादारभ्य सीमन्तमुन्नीय दर्भपिञ्जलीः केशपाशे स्थापयेत्। [दर्भपिञ्जली-शब्देनात्र प्रादेशप्रमाणं कुशपत्रद्वयं कुशान्तरेण वेष्टितमुच्यते।] ततः पुनरपि दर्भपिञ्जलीत्रयं गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीविष्णुः देवता दर्भपिञ्जलीभिसीमन्तोन्नयने विनियोगः, ॐ भुवः।।'३।। इति तथैव कृत्वा ताः स्थापयेत्। ततः पुनरपि दर्भपिञ्जलीत्रयं गृहीत्वा 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता दर्भपिञ्जलीभिः सीमन्तोन्नयने विनियोगः, ॐ स्वः।।'४।। इति मन्त्रेण तथैव स्थापयेत्। ततः शरंगृहित्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता शरेण सीमन्तोन्नयने विनियोगः, ॐ येन अदितेः सीमानं नयति प्रजापतिः विष्णुः महते सौभगाय, तेन अहं अस्यै सीमानं नयामि प्रजाम् अस्यै जरदष्टिं कृणोमि।।'५।। —इति तथैव केशान्तादारभ्य शरेण सीमन्तमुन्नीय शरं तथैव स्थापयेत्। ततः सूत्रपूर्णतर्कुं गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः जगती छन्दः श्रीरामो देवता सूत्रपूर्णतर्कुणा सीमन्तोन्नयने विनियोगः, ॐ राममहं सुहवां सुष्टुती हुबे, कृणोतु नः सुभगा बोधतु आत्मना सीव्यतु अपः

कुशपत्रोंको दूसरे एक कुशके द्वारा लपेटने पर उसे दर्भपिञ्जली कहते हैं।] पुनः उसी प्रकार तीन दर्भपिञ्जलीके द्वारा मूलोक्त ३-संख्यक मन्त्रसे पूर्ववत् सीमन्तोन्नयन और दर्भपिञ्जली स्थापन करे। पुनः इसी प्रकार तीन दर्भपिञ्जली द्वारा मूलोक्त ४-संख्यक मन्त्रके द्वारा सीमन्तोन्नयन

सूच्या अच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायुमुख्यम्।।'६।। —इति सूत्रपूर्णतर्कुणा केशान्तादारभ्य सीमन्तमुन्नीय तं तत्रैव स्थापयेत्। ततस्त्रिश्वेतां शलर्लीं (सजारुकण्टकं) विकल्पे काष्ठकङ्कतिकां वा गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः जगती छन्दः श्रीरामो देवता त्रिश्वेतया शलल्या (काष्ठ-कङ्कतिकया) सीमन्तोन्नयने विनियोगः, ॐ यास्ते राम सुमतयः सुपेशसो याभिः ददसि दाशुषे वसूनि, ताभिः नः अद्य सुमना उपागहि सहस्त्रपोषं सुभग रराणः।।'७।। —इति शलल्या (काष्ठकङ्कतिकया) केशान्तादारभ्य सीमन्तमुन्नीय तत्रैव स्थापयेत्। ततस्तिलतण्डुलमाषसाधित कृषररूपं स्थाली-पाकमुपरितदत्तघृतं पतिर्वधूं दर्शयन् पृच्छति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता वधूप्रश्ने विनियोगः, ॐ किं पश्यसि।।' ततः स्थालीपाकं पश्यन्तीं वधूं पाठयति—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णु देवता स्थालीपाकावेक्षणे विनियोगः, ॐ प्रजां पशून् सौभाग्यं दृढ़कृष्ण-भक्तित्वं आवयोः, दीर्घायुष्ट्वं पत्युः।।' ततो व्यस्तसमस्त-

---

और दर्भपिञ्जली स्थापित करे। तत्पश्चात् एक शर (मुञ्जमें उत्पन्न होनेवाला सरकंडा) लेकर मूलोक्त ५-संख्यक मन्त्रसे केशके अन्तसे लेकर सीमन्तके ऊपर प्रदेश तक सरकंडेको स्थापित करे। तत्पश्चात् सूत्रपूर्ण तकुवेसे (सूत्र निर्माणके यन्त्रसे) मूलमें कहे गये ६-संख्यक मन्त्र द्वारा सीमन्तोन्नयन और तकुआ स्थापन करे। अतःपर तीन स्थानपर काष्ठकी कंगी द्वारा मूलोक्त ७-संख्यक मन्त्रसे पूर्ववत् सीमन्तोन्नयन और शलली स्थापन करे। अतःपर तिल, तण्डुल, उड़दके द्वारा चूल्हेमें स्थाली पाक (खिचड़ी) बनावे और उसके ऊपर घी दे। पुनः पति वधूको उसे दिखलाकर पूछे—'ॐ प्रजापति ...... पश्यसि।' वधू इस स्थालीपाकको

महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, प्रकृतं कर्म्म समाप्य सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्त-मुदीच्यं कर्म्म समाप्य, कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिक वैष्णवाय दक्षिणां दद्यात्। ततोऽविधवाः पुत्रवत्यो नार्य्यः वेद्यामुत्थाप्य कलसोदकेन स्नानादि मङ्गलं कुर्य्युः। ताञ्च 'भक्तवीरसूस्त्वं भव जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव',— इत्यपि ब्रुयूः। तञ्च कृशरं गर्भवती भुञ्जीत। इति सामवेदीय-सीमन्तोन्नयनम्।

देखते-देखते 'ॐ प्रजापति पत्यु' मन्त्र पाठ करे।

अनन्तर महाव्याहृतिहोम कर अमन्त्रक प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें निक्षेप कर मूल कर्म समाप्तकर सर्वसाधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्यकर्म समापनपूर्वक कर्म करानेवाले पांचरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा प्रदान करे। अतःपर सधवा पुत्रवती नारियाँ वर-वधूको मण्डपमें ले जाकर स्नान आदि मांगलिक कार्य करें एवं वधूको 'वीरसु भव' इत्यादि मन्त्रसे आशीर्वाद करें। गर्भवती उस खिचड़ीको ग्रहण करे। इति सामवेदीय सीमन्तोन्नयन।।

(८) अथ शोष्यन्ती-होमः

आसन्नप्रसवायाः वध्वाः सुखप्रसवार्थं शोष्यन्ती होमः कर्त्तव्यः। तत्र कृतस्नानः कृतविष्णुवैष्णवार्च्चनः कृतसात्त्विक-वृद्धिश्राद्धः पतिः, 'ॐ विष्णुः ॐ तत्सत् अद्येत्यादि अमुकाभि-धानाया मदीयपत्न्याः सुखप्रसवार्थं श्रीविष्णुस्मरणपूर्वकं शोष्यन्तीहोममहं कुर्वीय'—इति संकल्प्य पूर्व्ववत् मङ्गल नामानमग्निं संस्थाप्य, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। यथा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा। प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा।।' ततः—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः, पङ्क्तिः छन्दः श्रीविष्णुः देवता शोष्यन्तीहोमे विनियोगः, ॐ

---

(८) **शोष्यन्ती होम**—आसन्न प्रसवा (शीघ्र ही प्रसव करनेवाली) वधूको सुखसे प्रसव करानेके लिए शोष्यन्ती होम करना उचित है। पति स्नानके पश्चात् विष्णु-वैष्णवार्चन और सात्त्विकवृद्धि श्राद्धकर 'ॐ विष्णुः' इत्यादि मन्त्रसे संकल्प कर, मंगल-नामक अग्नि स्थापनपूर्वक विरूपाक्ष जपके अन्तमें कुशण्डिका समापन कर प्रकृत कर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें बिना मन्त्रके निक्षेपपूर्वक व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम करे। तत्पश्चात् 'ॐ प्रजापतिः अमृतं स्वाहा'—इस मन्त्रसे

विष्णो या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति, तां घृतस्य धारया यजे संराधनीं अहं, संराधन्यै देव्यै देष्ट्र्यै इदं त्वत्प्रसादामृतं स्वाहा'।। इति श्रीविष्णुचरणामृतप्रसादनिर्म्माल्यसहितं आज्यं दद्यात्। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविपश्चिन्महाविष्णुः देवता शोष्यन्तीहोमे विनियोगः, ॐ विपश्चित् महाविष्णुः पुच्छमभरत् तत्धाता पुनः आहरत्, परे एहि त्वं विपश्चित् महाविष्णुः पुमान् अयं जनिश्यते अमुकदेवशर्मा नाम स्वाहा'।। अत्रामुकस्थाने भविष्यत्पुत्रस्य हृदय-निहितं विष्णुदास्यसूचकं नाम वक्तव्यम्। यथा—'मुकुन्ददास शर्मा स्वाहा' इति। ततो व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, 'प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, प्रकृतं कर्म्म समाप्य, सर्व्वकर्म्मसाधारणंशाट्यायन-होमादिवामदेव्यगानान्तमुदीच्यं कर्म्म समाप्य, कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिकवैष्णवाय दक्षिणां दद्यात्। इति सामवेदीय शोष्यन्ती-होमः।

श्रीविष्णुचरणामृत, प्रसाद, निर्माल्य सहित आज्य दे। अनन्तर 'ॐ प्रजापतिः ...... नाम स्वाहा'—मन्त्रसे भावी पुत्रके संकल्पित विष्णुदास सूचक नामका उल्लेख कर होम करे। तत्पश्चात् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम और अमन्त्रक प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् निक्षेपके द्वारा प्रकृत कर्मका समापन कर सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानके पश्चात् उदीच्य कर्म समाप्त करे। कर्म करानेवाले पांचरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा प्रदान करे। इति सामवेदीय शोष्यन्ती होम।

(९) अथ जातकर्म्म

पुत्रे जाते सति नाड़ीच्छेदनात् प्राक् पिता,—'मा नाभिं कृन्तत, स्तन्यञ्च मा दत्त'—इत्यभिधाय तत्कालकृतस्नानः श्रीगुरुन् (श्रीगुरुपरमगुरुप्रभृतीन्) अभिवाद्य स्तुत्वा श्रीविष्णुस्मरणं कृत्वा (मङ्गलाचरणे (क) द्रष्टव्यं) प्रक्षालितशिलायां ब्रह्मचारिणा कुमार्य्या गर्भवत्या वा श्रुतस्वाध्यायशील-पाञ्चरात्रिकवैष्णवेन वा अनाहतलोष्ट्रेण पिष्टं व्रीहियवचूर्णं दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीअनन्तो देवता व्रीहियवचूर्णेन कुमारस्य जिह्वामार्ज्जने विनियोगः, ॐ इयम् आज्ञा, इदम् अन्नम् इदम् आयुः इदं घृतम्' (१)—इति मन्त्रेण कुमारस्य जिह्वा परिमार्ष्टि। ततस्तथैव सुवर्णेन घृतं ग्रहीत्वा—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमाधवहरिवामनाच्युतानन्तो देवताः कुमारस्य सर्पिःप्राशने विनियोगः, ॐ मेधां ते माधव वामनौ मेधां हरिः दधातु, मेधां ते अच्युतानन्तौ आधत्तां पुष्करस्त्रजौ स्वाहा' (२)—इत्यनेन तथैव जिह्वां मार्ष्टि। पुनरपि तथैव सुवर्णेन घृतं गृहीत्वा—'ॐ प्रजापति

---

(९) **जात कर्म**—पुत्र भूमिष्ठ होने पर नाड़ी (नाल) छेदनसे पहले पिता 'नाभि छेदन मत करो' एवं 'स्तन मत दो'। यह कहकर स्नान करे तदनन्तर श्रीगुरुवर्ग और गुरुपरम्पराका अभिवादन और स्तव कर श्रीविष्णुका स्मरण करे। ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती अथवा श्रुत स्वाध्याय परायण पाञ्चरात्रिक वैष्णव इनमेंसे कोई भी एकके द्वारा जलसे धुले हुए शिलके ऊपर बिना टूटे-फूटे लोढ़ेसे धान और जौका चूर्ण पिसवाकर पिता दाहिने हाथकी अनामिका और अगूँठे द्वारा उस चूर्णको लेकर पूर्वोक्त १-संख्यक मन्त्रसे शिशुकी जिह्वाका मार्जन करे। तत्पश्चात् सुवर्ण निर्मित पात्रसे घी लेकर मूलोक्त २-संख्यक मन्त्रसे शिशुकी जिह्वाका

विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता कुमारस्य सर्पिःप्राशने विनियोगः, ॐ सदसि अतिप्रियं कृष्णस्य काम्यं सनिं मेधाम् अयासिषम् स्वाहा' (३)—इति मन्त्रेण कुमारस्य जिह्वां मार्ष्टि। ततो—'नाभिं कृन्तत, स्तन्यञ्च दत्त' इति पिता ब्रुयात्। पिता पुनः सूतिका-स्नानं कुर्य्यात्। इति सामवेदीय-जातकर्म्म।

---

(१०) अथ निष्क्रामणम्

जाते कुमारे तृतीय-शुक्लपक्षस्य तृतीयां तिथौ प्रातः कुमारं स्नापयित्वा सायंसध्यायामतीतायां श्रीभगवन्मन्दिरे नीत्वा भगवदभिमुखः पिता शालग्रामादिमूर्तिं पश्यन् तिष्ठेत्। अथ माता शुचिना वस्त्रेण कुमारमाच्छाद्य भर्त्तुर्वामपार्श्वे भगवदभिमुखी स्थित्वा कुमारं उत्तरशिरसं पित्रे समर्पयति। ततो माता भर्त्तुः पृष्ठदेशेन गत्वा श्रीगोविन्दाभिमुखीभूय भर्त्तुदक्षिणपार्श्वे तिष्ठत्।

पहलेकी भाँति पुनः मार्जन करे। पुनः उसी प्रकार सुवर्णपात्र स्थित घृत लेकर मूलमें कहे गये ३-संख्यक मन्त्रसे शिशुकी जिह्वाका मार्जन करे। अनन्तर पिता 'नाभिं कृन्तत' इत्यादि कहे। पश्चात् पिता पुनः स्नान करे। इति सामवेदीय जात कर्म।।

(१०) **निष्क्रामण**—पुत्रके जन्मके पश्चात् तृतीय शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिमें शिशुको प्रातःकाल स्नान कराकर, सायं-संध्या अतीत होने पर श्रीभगवन्मन्दिरमें ले जाकर पिता श्रीभगवान्के सम्मुख श्रीभगवन्मूर्तिका दर्शन करते हुए खड़ा होवे। माता शिशुको शुद्धवस्त्रमें आच्छादनकर पतिके बाँये भागमें भगवान्के तरफ मुखकर खड़ी होकर उत्तर शिरा (पुत्रका शिर उत्तरके तरफ) कुमारको पिताकी गोदमें दे। तत्पश्चात् माता पतिके पीछे जाकर दक्षिणकी ओर श्रीगोविन्दमुखी होकर खड़ी हो

ततः पिता अमून् मन्त्रान् पठेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः सर्व्वतोमुखो देवता कुमारस्य श्रीविष्णुदर्शने विनियोगः, ॐ एकः पुरस्तात् य इदं बभूव, यतो बभूव भुवनस्य गोप्ता, यं अप्येति भुवनं साम्पराये, नमामि तम् अहं सर्व्वतोमुखम्। तत् प्रभो सर्व्वतोमुख नाहं पौत्रम् अघं निगाम्।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः मृत्युमृत्युः देवता कुमारस्य श्रीविष्णुदर्शने विनियोगः, ॐ य आत्मदा बलदा, यस्य विश्वे उपासते प्रशिषं यस्य देवाः, यस्य छाया अमृतं यो मृत्युमत्यृः, कस्मै देवाय हविषा विधेम। तस्मात् प्रभो मृत्युमृत्यो नाहं पौत्रम् अघम् ऋषम्।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनरनारायणौ देवते कुमारस्य श्रीविष्णुदर्शने विनियोगः, ॐ नरनारायणौ शर्म्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापति, यथायं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि।।'३।। —इति जप्त्वा कुमारं श्रीभगवन्मूर्तिं दर्शयति। ततः पिता हरये अर्घ्यं दद्यात्—'ॐ कृष्ण माधव गोविन्द पुण्डरीकाक्ष वामन। गृह्णीतार्घ्यं हृषिकेश रमया सहितो मम।।' ततः पिता तथाभूतमेव उत्तरशिरसं पुत्रं मात्रे दत्त्वा वामदेव्यगानं (उदीच्यकर्म्मे द्रष्टव्यं) कृत्वा कल्याणमवधार्य्य गृहं प्रवेशयेत्।

जाये। तब पिता मूलमें कहे हुए १-३ संख्यक मन्त्रोंका जपकर शिशुको श्रीभगवन्मूर्तिका दर्शन करावे। तत्पश्चात् पिता मूलमें कहे हुए 'ॐ कृष्ण माधव' इत्यादि मन्त्रसे श्रीहरिको अर्घ्य दे। अनन्तर पिता उसी अवस्थामें पुत्रको माताकी गोदमें देकर वामदेव्यगानपूर्वक कल्याण अवधारण कर पुत्रको घरमें प्रवेश करावे।

अतःपर क्रमशः तीन शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथियोंकी सायं संध्याके

तत ऊर्ध्वं परशुक्लपक्षत्रयेऽपि तृतीयायान्तिथौ सायं-सध्यामतिक्रम्य भगवन्मूर्त्तिं पश्यन् पिता पुष्पाञ्जलीन् गृहीत्वा—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमहाविष्णुः देवता कुमारस्य भगवन्मूर्त्तिदर्शने विनियोगः, यस्मात् न जातः परो अन्यो अस्ति, य अविवेश भूवनानि विश्वा, प्रजापतिः प्रजया संविदानः त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोड़शीम्। एतत् विद्वान् महाविष्णो नाहं पौत्रम् अघं रुदम्।।'४।। इति पठित्वा त्रिःपुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततो वामदेव्यं (ॐ कया नः चित्र इत्यादि) गीत्वा कल्याणमवधार्य्य गृहं प्रविशेत्। एतच्च निष्क्रमण-कर्म्माङ्गभूतमुदीच्यं कर्म्म (वामदेव्यगानं) पत्नीपुत्रोपादान-विरहात् पित्रा प्रवासिनापि कार्य्यम्।

इति निष्क्रामणम्।

पश्चात् पिता श्रीभगवन्मूर्त्ति दर्शनपूर्वक पुष्पाञ्जलि ग्रहणकर मूलोक्त ४-संख्यक मन्त्रसे श्रीभगवान्को तीन बार पुष्पांजलि दे। पश्चात् वामदेव्यगान और कल्याण अवधारणपूर्वक (मेरा कल्याण हो—ऐसा समझकर घरमें प्रवेश करे)। निष्क्रामण क्रियाके अन्तर्गत उदीच्यकर्म अर्थात् वामदेव्यगान अपने प्रवासमें भी पत्नी, पुत्रके निकट न रहने पर भी करे। इति निष्क्रामण।

(११) अथ नामकरणम्

तत्र यद्यपि 'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे, शतरात्रे, संवत्सरे वा नामधेयकरणं' इति गृह्यवचनेन एकादशाहे नामकरणं प्राप्तं, तथाप्याचारवशात् द्वादशाहे, एकाधिकशतरात्रे, जन्मदिने वा नामकरणं कर्त्तव्यम्।

तत्र प्रथमं कृतस्नानः कृतविष्णूर्च्चनः कृतसात्त्विकवृद्धि-श्राद्धः पिता पार्थिव-नामानमग्निं संस्थाप्य, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। यथा— 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा। प्रजापति विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्तमहा-व्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती

---

(११) अथ नामकरण—जन्म होनेके पश्चात् दश रात्रि, एक सौ रात्रि या एक वर्ष पूर्ण होने पर नामकरण करना कर्त्तव्य है—इस गृह्य वचनके अनुसार जन्मके ग्यारहवें दिन नामकरणके लिए शुभ दिन होनपर भी आचारवशतः बारहवें दिन या एक सौ एकवें दिन अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर जन्मतिथिके दिन नामकरण करना चाहिए। इस अनुष्ठानके लिए पहले पिताको स्नान कर श्रीविष्णुका अर्चन और सात्त्विकवृद्धिश्राद्ध करनेके पश्चात् पार्थिव नामक अग्नि संस्थापनपूर्वक विरूपाक्ष जप समाप्त कर कुशण्डिका समापन करे। तत्पश्चात् प्रकृतकर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् बिना मन्त्रके अग्निमें निक्षेप कर व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम करे। अतःपर माता शुद्ध साफ-सुथरे वस्त्रमें बच्चेको ढककर पतिकी

छन्दः श्रीमदनन्तो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा। ततो माता शुचिना वाससा कुमारमाच्छाद्य भर्त्तुदक्षिणे स्थिता कुमारमुत्तरशिरसं पित्रे समर्पयति। ततो माता भर्त्तुः पृष्ठदेशेन उत्तरस्यां दिशि गत्वा भर्त्तुः वामपार्श्वे उत्तराग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुखी उपविशति। ततः पिता अनेन मन्त्रेण सकृज्जुहुयात्—'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयो दिवीव चक्षुराततम् ॐ श्रीविष्णवे स्वाहा।।' ततः कुमारस्य जन्मतिथि-तद्देवता-नक्षत्र-तद्देवता-होमं कुर्य्यात्। यथा, यदि प्रतिपदि जातस्तदा—'ॐ प्रतिप्रदे स्वाहा'; तत 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयो दिवीव चक्षुराततम्, ॐ प्रतिपत्तिथिदेवतायै विष्णवे स्वाहा'; ततः पुनः— 'ॐ तद्विष्णोः' इत्यादि मन्त्रेण—'ॐ वैष्णवेभ्यः स्वाहा।।' एवं द्वितीयादिस्वपि। एवं अश्विन्यादि नक्षत्रेषु च। यथा,—'ॐ अश्विन्यै स्वाहा, 'ततः 'ॐ तद्विष्णोः'—'इति मन्त्रेण—'ॐ अश्विनीनक्षत्रदेवतायै विष्णवे स्वाहा'; ततः—'ॐ तद्विष्णोः—इति मन्त्रेण—'ॐ वैष्णवेभ्य स्वाहा।।' ततः पिता कुमारस्य मुख-नासिका-नेत्र-श्रोत्रादीनि दक्षिणहस्तेन स्पृशन् जपति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः

दाहिनी ओर खड़ी होकर बच्चेका सिर उत्तरकी ओर कर पिताकी गोदमें देवे। पश्चात् माता पतिके पीछे उत्तरकी ओर जाकर पतिकी बायीं ओर उत्तराग्र कुशासन पर पूर्वमुखी होकर बैठे। तब पिता मूलमें कहे गये 'ॐ तद्विष्णोः' इत्यादि मन्त्रसे एक होम करे। तत्पश्चात् कुमारकी जन्मतिथि, जन्मतिथि-देवता, नक्षत्र और नक्षत्र देवताके लिए होम करे। होम विधि मूलमें द्रष्टव्य है। पश्चात् पिता कुमारके मुख, नाक, आँख, कानको अपने दक्षिण हस्तसे स्पर्शकर—'ॐ प्रजापतिः' इत्यादि मूलमें कहे गये १-२ संख्यक मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् पिता कुमारकी माताके बायें कानमें

गायत्रीछन्दः श्रीविष्णुः देवता नामकरणे विनियोगः, ॐ कोऽसि कतमोऽसि, एषोऽसि, अमृतोऽसि आहस्पत्यं मासं प्रविश श्रीअमुकदास।।'१।। अमुक इत्यत्र कुमारस्य सम्बोधनान्तं नाम वाच्यम्।। 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमाधवो देवता नामकरणे विनियोगः, ॐ स त्वा अह्ने परिददातु, अहः त्वा रात्र्यै परिददातु, रात्रि त्वा अहोरात्राभ्यां परिददातु, अहोरात्रौ त्वा अर्द्धमासभ्येः परिदत्तां, अर्द्धमासः त्वा मासेभ्यः परिददतु, मासाः त्वा ऋतुभ्यः परिददातु, ऋतवः त्वा सम्वत्सराय परिददतु, सम्वत्सराः त्वा आयुषे जरायै परिददातु श्रीअमुक-दास'।।२।। अमुक-इत्यत्र कुमारस्य सम्बोधनान्तम् नाम प्रयोक्तव्यम्। ततः पिता कुमारस्य मातुर्वामकर्णे 'श्रीअमुकदेव शर्म्मा अयं ते पुत्र'—इति नाम कथयित्वा कुमारस्य दक्षिणकर्णे 'श्रीअमुकदेवशर्म्मा असि—इति नाम कथयति। ततो मात्रे कुमारं दत्त्वा, पूर्व्ववत् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायन-होमादि-वामदेव्यगानान्तमुदीच्यं कर्म्म समाप्य, कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिक वैष्णवाय दक्षिणां दद्यात्।

इति सामवेदीय नामकरणम्।

'तुम्हारा पुत्र अमुक दास अमुक'—इत्यादि नाम उच्चारणकर कुमारके दक्षिण कानमें भी यह नाम उच्चारण करे। अनन्तर पुत्रको माताकी गोदमें देकर पहलेकी भाँति व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम कर, प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अग्निमें बिना मन्त्रके निक्षेपकर सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होमादि वामदेव्यगानान्त उदीच्यकर्म समापन कर कर्म करानेवाले पांचरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा दे। इति सामवेदीय नामकरण।

(१२) अथ पौष्टिककर्म्म

जननात् संवत्सरपर्यन्तं मासि मासि जन्मतिथौ पौर्णमास्यां वा प्रातःकृतस्नानः कृतविष्ण्वर्च्चनः पिता स्वस्तिध्वनिं (ॐ स्वस्ति नो गोविन्द इत्यादि) कृत्वा, 'ॐ तद्विष्णोरिति, 'ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघन' इति च पठित्वा, वलद-नामानमग्निं संस्थाप्य विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेश-प्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। ततः—'ॐ अच्युतानन्ताभ्यां स्वाहा, ॐ दामोदर-पुरुषोत्तमाभ्यां स्वाहा, ॐ वासुदेव-वामन-विष्णु-वैकुण्ठादिभ्यः स्वाहा' इति आहुतित्रयं दत्त्वा, नामकरणोक्तक्रमविपर्य्ययेण जन्मतिथिदेवता-नक्षत्र-देवतयोर्होमं कुर्य्यात्। प्रथमं तिथिदेवतायै (विष्णवे), ततस्तिथये। ततः प्रथमं नक्षत्रदेवतायै (विष्णवे), ततो नक्षत्राय। यथा, प्रतिपदि जातस्य—'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयो दिवीव चक्षुः आततं ॐ विष्णवे प्रतिपत्तिथिदेवतायै स्वाहा'; ततः—'ॐ तद्विष्णोः, इत्यादि मन्त्रेण—'ॐ वैष्णवेभ्यः स्वाहा'; ततः—'ॐ प्रतिपदे स्वाहा।।' एवं नक्षत्रेषु च । यथा—

---

(१२) **अथ पौष्टिक कर्म**—जन्मसे एक वर्ष तक महीने-महीने जन्मतिथि अथवा पूर्णिमा तिथिमें पिता प्रातः स्नानकर श्रीविष्णु पूजा एवं स्वस्ति पाठकर, 'ॐ तद्विष्णोः' एवं 'ॐ कृष्णौ वै' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् वलद नामक अग्नि संस्थापन कर, प्रकृत कर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् बिना मन्त्रका होमकर महाव्याहृतिहोम करे। तत्पश्चात् 'ॐ अच्युतानन्ताभ्यां' इत्यादि तीन मन्त्रोंसे तीन आहुतियाँ प्रदान करनेके बाद नामकरणमें कथित क्रमके विपरीत रूपमें जन्मतिथि देवता एवं नक्षत्र देवताके लिए होम करे। होम विधि मूलमें द्रष्टव्य है। तत्पश्चात् 'ॐ तद्विष्णोः' इत्यादि एवं 'ॐ कृष्णौ वै सच्चिदानन्दघनः'

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयो दिवीव चक्षुः आततं, ॐ विष्णवे अश्विनीनक्षत्र-देवतायै स्वाहा'; ततः—'ॐ तद्विष्णोः—इत्यादि मन्त्रेण—'ॐ वैष्णवेभ्यः स्वाहा; ततः—'ॐ अश्विन्यै स्वाहा ।।' इत्थं जुहुयात् । ततः—'ॐ तद्विष्णोः' इत्यनेन; 'ॐ कृष्णो वै सच्चिदानन्दघनः' इत्यनेन च यथाशक्ति होमं कुर्य्यात् । ततो महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, प्रकृतं कर्म्म समाप्य, सर्व्वकर्म्म-स ‍ारणं शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्तमुदीच्यं कर्म्म समाप्य, कर्म्मकारयितृपाञ्चरात्रिकाय दक्षिणां दद्यात् ।

इति कुमारस्य सामवेदीय–पौष्टिककर्म्म ।

---

(१३) अथ अन्नप्राशनम्

अथ षष्ठेऽष्टमे वा मासि पुंसः, स्त्रियास्तु पञ्चमे सप्तमे वा मासि, शुभे दिने कृतप्रातः कृत्यः स्नातः कृतेष्टविष्णुवैष्ण-वार्च्चनः कृतसात्त्विकवृद्धिश्राद्धः पिता शुचि-नामानमग्निं संस्थाप्य,

---

इत्यादि मन्त्रोंसे यथाशक्ति होम करे। अतःपर महाव्याहृतिहोम और अमन्त्रक प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् होम कर प्रकृत कर्मको समापनकर सर्वकर्म साधरण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्य कर्म समाप्तकर कर्म करानेवाले पांचरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा दे। इति सामवेदीय पौष्टिक कर्म।

(१३) **अथ अन्नप्राशन**—पुत्रके छठवें अथवा आठवें महीनेमें और कन्याके पाँचवें अथवा सातवें महीनेमें शुभ दिनमें पिता प्रातःकृत्य समापन कर, स्नान कर इष्टदेवता एवं वैष्णवोंका अर्चन कर सात्त्विक-वृद्धिश्राद्ध करे तथा शुचि नामक अग्नि संस्थापनपूर्वक विरूपाक्षजपान्त

विरूपाक्ष जपान्तां कुशण्डिकां समाप्य प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेश-प्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। यथा,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा'।। ततः 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमदनन्तो देवता पुरुषाधिपत्यार्थस्य चतुष्पथे अग्नौ अनन्ताभिमुखस्य आज्यहोमे विनियोगः, ॐ महाप्रसादान्नं वै एकं छन्दस्यं, तत् हि एकं भूतेभ्यः छन्दयति स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमदनन्तो देवता पुरुषा-धिपत्यार्थस्य चतुष्पथे अग्नौ अनन्ताभिमुखस्य आज्यहोमे विनियोगः, ॐ श्रीः वै एषा, यत् सत्वानो विरोचनो सङ्कर्षणो मयि सत्त्वम् अवदधातु स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता पुरुषाधिपत्यार्थस्य चतुष्पथे अग्नौ अनन्ताभिमुखस्य आज्यहोमे विनियोगः ॐ अन्नस्य घृतमेव रसः तेजः—सम्पदर्थो तदनन्ताय जुहोमि स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमदनन्तो देवता महाप्रसादसेवन-

---

कुशण्डिका समाप्तकर, प्रकृत कर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक होम कर व्यस्तसगस्तमहाव्याहृति होम करे। तत्पश्चात्

वृत्त्यविच्छित्त्यर्थस्य सायं प्रातः क्षुद्धोमे, विनियोगः ॐ विष्णवे क्षुधे स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमदनन्तो देवता महाप्रसादसेवन-वृत्त्यविच्छित्त्यर्थस्य सायं प्रातः क्षुत्तृड्ढोमे विनियोगः, ॐ विष्णवे क्षुत्पिपासाभ्यां स्वाहा।। ॐ प्राणाय स्वाहा।। ॐ अपानाय स्वाहा।। ॐ समानाय स्वाहा।। ॐ उदानाय स्वाहा।। ॐ व्यानाय स्वाहा।।', — इत्याहुतीर्जुहुयात्। ततो व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, प्रकृतं कर्म्म समाप्य सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायन होमादि वामदेव्य-गानान्तमुदीच्यं कर्म्म समाप्य, अनेन मन्त्रेण कुमारस्य मुखे सोपकरणसजलमहाप्रसादान्नं दद्यात्,—"ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीअच्युतो देवता कुमारस्य महाप्रसादान्न-प्राशने विनियोगः, ॐ अच्युत अन्नपते, अन्नस्य नो धेहि अनवीमस्य शुष्मिणः प्रदातारं तारिषः, ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे स्वाहा, ॐ प्राणाय स्वाहा।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीजनार्द्दनो देवता कुमारस्य महाप्रसादान्न-प्राशने विनियोगः ॐ जनार्द्दन अन्नपते कृणुत अन्नं, नो धेहि पीयुषरसाक्तं तेऽन्नं, यद्यत् युगे नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे स्वाहा,

---

"ॐ प्रजापतिः ॐ व्यानाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रसे होम करे। अनन्तर व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम और अमन्त्रक प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् निक्षेपकर प्रकृत कर्म समाप्त करे एवं सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्य कर्म समापन करे। तत्पश्चात् मूलमें कहे गये पाँच मन्त्रोंसे कुमारके मुखमें उपकरण जल सहित महाप्रसाद अन्न प्रदान करे। शिशुको पाँच बार अन्न प्राशन कराकर, कर्म करानेवाले पांचरात्रिक वैष्णवोंको और अन्यान्य ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। कृष्णभक्त

ॐ अपानाय स्वाहा।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीलक्ष्मीनारायणौ देवते कुमारस्य महाप्रसादान्न प्राशने विनियोगः, ॐ लक्ष्मीनारायणौ अन्नपती अन्नं अमृतं नो धेहि कमलासंस्कृतं, ते भुक्तशेषं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा।।३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीयज्ञो देवता कुमारस्य महाप्रसादान्न-प्राशने विनियोगः, ॐ अन्नपते यज्ञ अन्नम् अधियज्ञं त्वदीयं नो धेहि सर्व्वदुर्लभं मानुष्यं चै सुधायुत, नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा।।४।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीजनार्द्दनो देवता कुमारस्य महाप्रसादान्न-प्राशने विनियोगः, ॐ अन्नपते जनार्द्दनो षड़्रसमभृतसिक्तं निवेदितं ते सदन्नं नो धेहि किल्बिषापहं, नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा"।।५।। इति पञ्चकृत्वोऽन्नप्राशनं कुमारं कारयित्वा कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिकवैष्णवाय अपर-वैष्णव-ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात्। तथा कार्ष्णादिवैष्णवसेवामपि कुर्य्यात्। यथाशक्ति जीवसन्तर्पणञ्च। ततोऽन्नप्राशनानन्तरं पुत्रमूर्द्धाभिघ्राणञ्च।।

इति अन्नप्राशनम्।

वैष्णवोंकी सेवा और महाप्रसाद आदि द्वारा सब जीवोंका सन्तोष विधान करे। अन्न प्राशनके पश्चात् पुत्रके मस्तकको सूँघें। इति अन्नप्राशन।।

(१४) अथ नैमित्तिकं पुत्रमूर्द्धाभिघ्राणम्

तत्रान्नप्राशनानन्तरमाशीर्वादसमये, अथवा चिरप्रवासादागतः पिता कृतपादशौचः कृताचमनः शुचितः पूर्वाभिमुखः जेष्ठपुत्रक्रमेण हस्ताभ्यां पुत्रमूर्द्धान परिगृह्य मन्त्रत्रयं पठित्वा पुत्रमस्तकाघ्राणं कुर्य्यात्। यथा,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीपद्मनाभो देवता पुत्रस्य मूर्द्धानम् उपसंगृह्य जपे विनियोगः, ॐ अङ्गात् अङ्गात् संस्रवसि (संभवसि वा) हृदयात् अधिजायसे, प्राणं ते प्राणेन संदधामि, जीव मे यावदायुषम्।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता पुत्रमुर्द्धानम् उपसंगृह्य जपे विनियोगः, ॐ अङ्गात् अङ्गात् संभवसि हृदयात् अधिजायसे, वेदो वै पुत्रनामासि, संजीव शरदः शतम्।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीनारायणो देवता पुत्रमूर्द्धानम् उपसंगृह्य जपे विनियोगः, ॐ अस्मा भव, परशुः भव, हिरण्यम् अमृतं भव, आत्मासि पुत्र मा मृथाः, संजीव शरदः शतम्'।।३।। ततोऽनेन मन्त्रेण पुत्रस्य शिरः पिता जिघ्रति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णुऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीपुरुषोत्तमो देवता पुत्रमूर्द्धाभिघ्राणे विनियोगः,

---

(१४) अथ पुत्रका मूर्द्धाभिघ्राण—अन्न प्राशनके अन्तमें आशीर्वादके समय अथवा दीर्घकालके पश्चात् प्रवाससे लौटकर पिता हाथ-पैर धोकर तथा आचमन आदिके द्वारा पवित्र होकर पूर्वमुखी होकर ज्येष्ठ पुत्र आदिके क्रमसे पुत्रका मस्तक दोनों हाथोंसे धारणकर मूलमें कहे गये १-३-संख्यक मन्त्रोंका जप करे। तत्पश्चात् ४-संख्यक मन्त्रसे पुत्रका मस्तक सूँघे। अनन्तर वामदेव्यगानपूर्वक अच्छिद्रावधारण करे। यदि पिता प्रवासी (विदेश न गये हों) न हो, गृहमें ही अवस्थान कर रहे हों, तो पुत्र जब पिताको पिताके रूपमें पहचानने लगे, तब इस कर्मका अनुष्ठान

ॐ पशूनां त्वा हींकारेण अभिजिघ्रामि अमुक दास'।।४।। अत्रामुकेतिस्थाने सम्बोधनान्तं पुत्रनाम प्रयोज्यम्। ततो वामदेव्यं (ॐ कया नः चित्र इत्यादि) गीत्वा अच्छिद्रमवधारयेत्। अथ पिता यदि प्रवासं न गतः, गृह एव तिष्ठति, तदा पुत्रो यदा ममायं पिता इति जानाति तदैतत्कर्म्म कर्त्तव्यम्। यदि तदा न कृतं तदोपनयनानन्तरं कर्त्तव्यम्।

इति पुत्रमूर्द्धाभिघ्राणं कर्म्म।

---

(१५) अथ चूड़ाकरणम्

तत्र कुलाचारवशात् प्रथमे तृतीये वा वर्षे, पञ्चमाब्दे वा चूड़ाकरणं कर्त्तव्यम्। तत्र प्रथमं प्रातः कृतस्नानः कृतेष्टविष्णु-वैष्णवार्च्चनः कृत सात्त्विकवृद्धिश्राद्धः पिता सत्यनामानमग्निं संस्थाप्य, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, अग्नेर्दक्षिणतः एकविंशतिः दर्भपिञ्जलीः सप्तासप्तभिरेकीकृत्य कुशान्तरेण वेष्टयित्वा, उष्णोदकसहितं कांस्यपात्रं, ताम्रनिर्म्मितं क्षुरं तदभावे दर्पणं वा, लोहक्षुरपाणिं नापितञ्च; अग्नेरुत्तरतः वृषगोमयं, तिल-तण्डुल-माषसिद्धं कृशरञ्च; अग्नेः पूर्व्वतः मिश्रितव्रीहियव-

---

करे। उस समय यह कर्म अनुष्ठित नहीं हुआ तो उपनयनके बाद करना कर्त्तव्य है। इति पुत्रमूर्द्धाभिघ्राण।।

(**१५) अथ चूड़ाकरण**—कुलाचारके अनुसार पहले, तीसरे अथवा पाँचवे वर्षमें चूड़ाकरणका अनुष्ठान करना चाहिए। पिता पहले प्रातः स्नानकर इष्ट देवता और वैष्णवोंके अर्चनपूर्वक सात्त्विकवृद्धिश्राद्ध करे। अनन्तर सत्य-नामक अग्निकी स्थापनाकर विरूपाक्षजपान्त कुशण्डिका समाप्त करे। तत्पश्चात् अग्निकी दक्षिण दिशामें एक-एक गुच्छमें सात-

पूरितं पात्रत्रयं, मिश्रिततिलतण्डुलमाषपूरितं पात्रत्रयञ्च स्थापयेत्। ततो माता शुचिना वस्त्रेण कुमारमाच्छाद्य क्रोड़े निधाय अग्नेः पश्चिमतो भर्त्तुः वामपार्श्वे उत्तराग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुखी उपविशति।

ततः पिता प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तुष्णीमग्नौ हुत्वा व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहामे विनियोगः, ॐ भूः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा।।'

सात कुश, एक-एक कुश द्वारा परिवेष्टित इक्कीस दर्भपिञ्जली (कुश द्वारा वेष्टित प्रादेशप्रमाण दो कुशपात्र) गर्मजलसहित कांस्यपात्र, ताम्र निर्मित क्षुर (उस्तरा) अथवा उसके अभावमें दर्पण एवं लौहक्षुर हाथमें लिए हुए नाईकी स्थापना करे। अग्निकी उत्तर दिशामें बैलका गोबर और तिल, चावल, उड़दके द्वारा कृशर (खिचड़ी) स्थापन करे। अग्निके पूर्वमें मिश्रित चावल, गेहूँ, जौ से परिपूर्ण तीन पात्र एवं मिश्रित तिल, चावल, उड़दके द्वारा तीन पात्र स्थापन करे। माता शुद्धवस्त्रसे कुमारको आच्छादित कर अपनी गोदमें लेकर अग्निके पश्चिममें पतिकी बायीं ओर उत्तराग्र कुशासन पर पूर्वमुखी होकरके बैठे।

तदनन्तर पिता प्रकृत कर्मके प्रारम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक अग्निमें होम कर व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम करे। तत्पश्चात्

ततः पिता उत्थाय प्राङ्मुखः कुमारस्य मातुः पृष्ठतोऽवस्थितः क्षुरपाणिं नापितं पश्यन् सर्वेश्वरं श्रीभगवन्तं मनसा ध्यायन् जपति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः सर्वेश्वरः श्रीभगवान् देवता चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ आ अयमगात् सर्वेश्वरः श्रीभगवान्, कुरु कुमारमेनं अवतु वै मुण्डनं मन्त्रावशयिना क्षुरेण'।।१।। ततः उष्णोदकसहितं कांस्यपात्रं पश्यन् श्रीविष्णुः मनसा ध्यायन् जपति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता चूड़ाकरणे विनियोगः ॐ आ अयम् अगात् श्रीविष्णुः, कुरु कुमारमेनम् अवतं वै मुण्डनम् उष्णोदकेन'।।२।। ततः कांस्यपात्रस्थितउष्णोदकेन दक्षिण-करगृहीतेन दक्षिणकपुष्णिकादेशम् अनेन वक्ष्यमानमन्त्रेण क्ले-दयति। (कपुष्णिकाशब्देन • दक्षिणोत्तरतः शिखास्थानादधः शिरस उभयपार्श्वस्थः कर्णाभिमुखोच्चदेशः उच्यते।) 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतो देवता चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ आप उन्दन्तु जीवसे।।'३।। ततस्ताम्रक्षुरं तदभावे दर्पणं वा पश्यन् जपति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ विष्णोः दंष्ट्रोऽसि,

---

पिता पुत्रकी माँके पीछे पूर्वमुखी होकर खड़े होवें। हाथमें क्षुर लेकर नाईकी ओर देखकर हृदयमें सर्वेश्वर भगवान्का ध्यान कर मूलमें कहे गये १-संख्यक मन्त्रका जप करें। तत्पश्चात् उष्णोदक (गर्मजल) सहित कांस्य पात्रकी ओर देखकर मन-ही-मन श्रीविष्णुका स्मरण करते हुए मूलमें कहे गये २-संख्यक मन्त्रका जप करें। अतःपर कांस्यपात्रसे दाहिने हाथमें गरम जल लेकर मूलमें कहे गये ३-संख्यक मन्त्रके द्वारा

• "कपुष्णिकाभितः केशा मूर्दध्नि पश्चात् कपुच्छले" इति छन्दोगपरिशिष्टे।

कुरु कुमारमेनम् अवतु वै विष्णुः साक्षात् मुण्डनं क्षुर।।'४।। ततः कुशबद्धसप्तदर्भपिञ्जलीर्गृहीत्वा क्लिन्नदक्षिणकपूष्णिकादेशे वक्ष्यमानमन्त्रेण ऊर्ध्वमूला निदध्यात्,—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतानन्तनारायणा देवताः चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ अच्युतानन्तनारायणाः कुर्व्वन्तु कुमारमेनं चिरजीविनम्, औषधे त्रायस्व एनम्।।'५।। ततो वामहस्तगृहीत-दर्भपिञ्जलिसहित-दक्षिणकपुष्णिकादेशे दक्षिणहस्तगृहीतं ताम्रक्षुरं तदभावे दर्पणं वा वक्ष्यमानमन्त्रेण निदध्यात्,—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीसङ्कर्षणो देवता चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ संङ्कर्षणः कुरु कुमारमेनम् अवतु वै मुण्डनं, स्वधिते मा एनं हिंसीः।।'६।। ततः केशच्छेदो यथा न भवति तथा ताम्रक्षुरं दर्पणं वा तत्रैव दक्षिणकपुष्णिकादेशे वक्ष्यमाणमन्त्रेण प्रेरयेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीपुरुषोत्तमो देवता चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ येन पुरुषोत्तमः वासुदेवविष्ण्वोरच्युतस्य चावपत् तेन ते वपामि वैकुण्ठेन जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वलाय वर्च्चसे ।।'७।।

पुत्रका दक्षिण कपुष्णिकास्थान उक्त जलसे भिगावें। [मस्तकके शिखास्थानके नीचे दाहिने और बायें दोनों ओर कनपटीको 'कपुष्णिका' कहते हैं।] तदनन्तर ताम्रक्षुर या दर्पणकी ओर देखकर ४-संख्यक मन्त्रका जप करें। तत्पश्चात् पुत्रके उष्णजलसिक्त दक्षिण कनपटीमें कुशबद्ध सात दर्भपिञ्जली मूलोक्त ५-संख्यक मन्त्रसे ऊर्ध्वमूल (मूलको ऊपर रखकर) स्थापित करें। अतःपर उसी दाहिनी कनपटीमें उक्त दर्भपिञ्जलीको बायें हाथमें धारणकर दाहिने हाथमें तांबेका क्षुर अथवा दर्पण मूलोक्त ६-संख्यक मन्त्रसे वहाँ स्थापित करें। तत्पश्चात् केश न कटे इस प्रकारसे तांबेका क्षुर या दर्पण उसी दक्षिण कनपटीमें मूलोक्त ७-संख्यक मन्त्र

ततो बांरद्वयं तूष्णीं प्रेरयेत्। ततो लोहक्षुरेण कपुष्णिकादेशस्थितान् केशान् छित्वा दर्भपिञ्जलीभिः सह आचारतो बालकमित्रधृत पात्रस्थवृषगोमयोपरि निक्षिपेत्।

ततः कपूच्छलदेशविषयेऽपि [कपुच्छलशब्देन पश्चिमतः शिखास्थानादधः शिरसो मातृक्रोड़ाभिमुखोच्चदेशोऽभिधीयते] पूर्व्ववत् तत्तन्मन्त्रेण (१) नापितदर्शनं, (२) कांस्यपात्रस्थोष्णोदकावलोकनं, (३) कपुच्छलदेशस्य केशक्लेदनं, (४) ताम्रक्षुरस्य दर्पणस्य वा दर्शनं, (५) कपुच्छलदेशे दर्भपिञ्जलीस्थापनं, (६)तत्र ताम्रक्षुरस्य दर्पणस्य वा निधानं, (७) तत्र क्षुरस्य दर्पणस्य वा प्रेरणम्। ततो बारद्वयं तूष्णीं प्रेरणम्। ततः लौहक्षुरेण कपुच्छलकेशानां छेदनं गोमयोपरि निक्षेपश्च।।

पाठपूर्वक चलावे। बिना मन्त्रसे उसे दो बार और चलावे। अनन्तर लोहक्षुरके द्वारा दक्षिण कपुष्णिकास्थित केशोंको छेदनपूर्वक वहाँ दर्भपिञ्जलीसह आचारके अनुसार कुमारके किसी बन्धुके द्वारा घृत पात्रमें रखे हुए बैलके गोबरके ऊपर फिंकवा दें।

अतःपर कपुच्छल-स्थानका केशछेदन। [मस्तकमें शिखास्थानके नीचे पीछेकी ओर माताकी गोदकी ओर उच्च स्थानको 'कपुच्छल देश' कहते हैं।] उसमें भी दक्षिण कपुष्णिका स्थित केशोंको काटनेकी भाँति उसी-उसी मन्त्रसे यथाक्रमसे (१) नाईका दर्शन, (२) कांस्यपात्रमें रखे गरम जलको देखना, (३) कपुच्छल स्थानके केश भिगाना, (४) ताम्रक्षुर या दर्पणका दर्शन कराना, (५) कपुच्छल स्थानमें दर्भपिञ्जलीका स्थापन, (६) कपुच्छल स्थानमें ताम्रक्षुर या दर्पण स्थापन, (७) वहाँ क्षुर या दर्पण परिचालन आदि करे। तत्पश्चात् बिना मन्त्रके दो बार क्षुर या दर्पण परिचालन करे एवं लोहक्षुरके द्वारा कपुच्छल स्थानके केशोंको छेदन कर उन्हें पहलेकी भाँति बैलके गोबरके ऊपर उसी प्रकारसे निक्षेप करे। तदनन्तर पिता दोनों हाथोंसे कुमारका मस्तक धारणकर 'ॐ प्रजापतिः'

ततस्तथा तथा पूर्व्ववत् कृत्वा वामकपुष्णिकाकेशान् अपि छित्वा गोमयोपरि निदध्यात्। ततः पिता कुमारस्य शिरः कराभ्यामुपसंगृह्य जपेत्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीजमदग्नि-कश्यपागस्त्यादयो देवताः चूड़ाकरणे विनियोगः, ॐ जमदग्नेस्त्र्यायुषम्, ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, ॐ अगस्त्यस्य त्र्यायुषम्, ॐ यद्देवानां त्र्यायुषम्, ॐ तत्तेऽस्तु त्र्यायुषम्। ततोऽग्नेरुत्तरदेशं नीत्वा, पुष्पाद्यलङ्कृतो नापितः पूर्व्वमुखमुत्तरमुखं वा कुमारं मुण्डयति। सर्व्वमेव केशं वृषगोमयोपरि निधाय अरण्ये वंशविटपे वा स्थापयेत्।

अस्मिन् समये कर्णवेधोऽपि कर्त्तव्यः। ततः पिता पूर्व्ववत् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्तमुदीच्यं कर्म्म समाप्य, कर्म्मकारयितृपाञ्चरात्रिकवैष्णवाय अपरवैष्णव-ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात्। अथ कार्ष्णादिवैष्णवसेवां च कुर्य्यात्। कृशर-व्रीहि-यव-तिल-तण्डुल-माषान् नापिताय दद्यात्। इति चूड़ाकरणम्।।

इत्यादि मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् पुष्पादिके द्वारा अलंकृत नाई कुमारको अग्निके उत्तरमें ले जाकर, पूर्वमुखी या उत्तरमुखी बैठाकर उसका मुण्डन करे। सारे केश बैलके गोबरके ऊपर निक्षेपकर वनमें अथवा बाँशकी शाखाओंके ऊपर स्थापन करें।

इसी समय कर्णवेध करना भी कर्त्तव्य है। अनन्तर पिता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृति होम कर प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक होम करें एवं शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्यकर्म समाप्त कर कर्म करानेवाले पाञ्चरात्रिक वैष्णवोंको और अन्यान्य वैष्णव-ब्राह्मणोंको दक्षिणा दें। कृष्णभक्त वैष्णवगणोंकी सेवा करें। खिचड़ी, चावल, जौ, तिल, तण्डुल, उड़द नाईको दें। इति चूड़ाकरण।।

(१६) अथ उपनयनम्

गर्भाष्टमे अष्टमे वाऽब्दे ब्राह्मणस्योपनयनं कर्त्तव्यम्। तत्र तदसम्भवे षोड़शवर्षपर्य्यन्तमुपनयनाधिकारः, अतःपरं सावित्रीपतितो ब्राह्मणो नोपनेतव्य इति।

तत्र प्रातः कृतस्नानः कृतेष्टविष्णुवैष्णवार्च्चनः कृतसात्त्विकवृद्धिश्राद्धः पिता, तथोक्तेन पित्रा वृतोऽन्यो वा आचार्य्यः, तदभावे माणवककृतो वा आचार्य्यः समुद्भव-नामानमग्निं संस्थाप्य विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य माणवकं प्रातर्भोजयित्वा अग्नेरुत्तरतो नीत्वा शिखया विना मुण्डितं स्नापितं कुण्डलाद्यलङ्कृतं क्षोमवस्त्राद्यसम्भवे शुभ्रकार्पासैकवस्त्रावृतं स्वदक्षिणे

---

(१६) **अथ उपनयन**—गर्भसञ्चारसे गणना कर आठवें वर्षमें अथवा जन्म ग्रहणके दिनसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण बालकोंका उपनयन करना कर्त्तव्य है। किसी कारणसे ऐसा नहीं होने पर सोलहवें वर्षतक किसी भी समय शुभ दिनमें ब्राह्मण बालकोंका उपनयन हो सकता है। इसके पश्चात् ब्राह्मण सावित्रीच्युत हो जाता है और उसका फिर उपनयन नहीं हो सकता। [मतान्तरसे पञ्चम वर्षमें ब्राह्मणोंका उपनयन करनेकी विधि है। विप्रका पाँचसे सोलहवें वर्ष तक, क्षत्रियका छह से बाईस वर्षकी आयु तक और वैश्यका आठवेंसे चौबीसवें वर्षकी आयु तक उपनयनका अधिकार होता है।]

उपनयनके दिन पिता प्रातःकालमें स्नानकर पहले श्रीविष्णु-वैष्णवका अर्चनकर सात्त्विकवृद्धि श्राद्ध समाप्त करे। तत्पश्चात् पिता स्वयं अथवा उसके द्वारा वृत आचार्य अथवा उसके अभावमें माणवक द्वारा वृत आचार्य समुद्भव-नामक अग्नि स्थापनपूर्वक विरूपाक्ष जपकर कुशण्डिका समापन कर माणवकको (जिसका उपनयन हो रहा है) प्रातः कुछ प्रसाद भोजन कराकर एवं शिखा रखकर मुण्डन, स्नान करावे, कुण्डल आदि अलंकारोंसे अलंकृत करे। रेशमी वस्त्रों अथवा उसके अभावमें एक शुभ्र सूती वस्त्र

(पूर्व्वाभिमुखं) निधाय प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेश-प्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः ॐ भूः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भुवः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ स्वः स्वाहा। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, ॐ भूः भुवः स्वः स्वाहा।।'

तत आचार्य्य-होता पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चाज्याहुतीर्जुहुयात्—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयनहोमे विनियोगः, ॐ विष्णो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत् ते प्रब्रवीमि तत् शकेयं, तेनर्द्ध्यासम् (तेन ऋध्यासम्) इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि स्वाहा।।१।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीअच्युतो देवता उपनयनहोमे विनियोगः, ॐ अच्युत व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् शकेयं, तेन ऋध्यासम् इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि स्वाहा।।२।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीनारायणो देवता उपनयनहोमे विनियोगः, ॐ नारायण व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् शकेयं, तेन ऋध्यासम् इदम्, अहम्

पहनाकर अग्निकी उत्तरकी ओरसे लाकर अपनी दाहिनी ओर पूर्वमुखी कर बैठावे। अतःपर प्रकृत कर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध्

अनृतात् सत्यम् उपैमि स्वाहा।।३।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः बृहती छन्दः श्रीअनन्तो देवता उपनयनहोमे विनियोगः, ॐ अनन्त व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् शकेयं तेन ऋध्यासम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि स्वाहा।।४।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः पङ्क्तिः छन्दः श्रीसङ्कर्षणो देवता उपनयनहोमे विनियोगः, ॐ सङ्कर्षण व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् शकेयं तेन ऋध्यासम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि स्वाहा।।'५।।

एवमाज्याहुतीः हुत्वा अग्नेः पश्चिमतो आचार्य्य उदगग्रेषु कुशेषु कृताञ्जलिः प्राङ्मुख ऊर्ध्वस्तिष्ठेत्। अग्न्याचार्य्ययोर्मध्ये माणवकोऽपि कृताञ्जलिराचार्य्याभिमुख उदगग्रेषु कुशेषु ऊर्ध्वस्तिष्ठेत्। ततो माणवकस्य दक्षिणतः स्थितो मन्त्रवान् पाञ्चरात्रिको ब्राह्मणो माणवकस्याञ्जलिमुदकेन पूरयति, पश्चादाचार्य्यस्यापि। ततो गृहीतोदकाञ्जलिराचार्य्यः गृहीतोदकाञ्जलिं माणवकं पश्यन् जपति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णु नारायण-वासुदेव-सङ्कर्षणो देवता उपनयने आचार्य्यस्य माणवकं प्रेक्षमाणस्य जपे विनियोगः, ॐ

अमन्त्रक अग्निमें निक्षेपकर व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम करें। तत्पश्चात् आचार्य होता मूलमें कहे गये पाँच मन्त्रोंके द्वारा आज्य होम करें। आज्य होमके पश्चात् आचार्य अग्निकी पश्चिम दिशाकी ओर उत्तराग्र कुशासनके ऊपर कृताञ्जलि और पूर्वमुखी होकर खड़ा हो। माणवक अग्नि एवं आचार्यदेवके बीचमें उत्तराग्र कुशासनके ऊपरमें हाथ जोड़कर आचार्यके सम्मुख आकर खड़ा हो। अनन्तर कोई मन्त्रवान् अर्थात् दीक्षित पाञ्चरात्रिक ब्राह्मण माणवकके दक्षिण भागमें खड़ा होकर प्रथम माणवककी और बादमें आचार्यकी अंजलि जलसे परिपूर्ण करे। आचार्य जलाञ्जलिके

आगन्त्रा समगन्महि, प्र सुमर्त्त्य युयोतन, अरिष्टाः सञ्चरेमहि, स्वस्ति सञ्चरतात अयम्।।'६।। ततो गृहीतोदकाञ्जलिराचार्य्यो: गृहीतोदकाञ्जलिं माणवकं पाठयति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने आचार्य्यस्य माणवकपाठने विनियोगः, ॐ ब्रह्मचर्य्यम् आगाम्, उप मा नयस्व।।'७।। तत आचार्य्यो माणवकं नामधेयं पृच्छति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने आचार्य्यस्य माणवकनामप्रश्ने विनियोगः, ॐ को नाम असि।।'८।। ततो माणवकः स्व-नाम (प्रागाचार्य्यकल्पितं नाम वा) कथयति,—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने माणवकस्य नामकथने विनियोगः, ॐ अमुकदेवशर्म्मनामा अस्मि।।'६।। (१) तत आचार्य्यमाणवकौ पूर्व्वगृहीतोदकाञ्जली त्यजेताम्।

तत आचार्य्यो दक्षिणपाणिना माणवकस्य साङ्गुष्ठं दक्षिणं पाणिमनेन मन्त्रेण गृह्णाति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णु-नारायण-वासुदेव-सङ्कर्षणो देवता उपनयने आचार्य्यस्य माणवकहस्तगृहणे विनियोगः, ॐ देवस्य ते विष्णोः प्रसवे, नारायण-वासुदेवयोः बाहुभ्यां सङ्कर्षणस्य हस्ताभ्यां हस्तं गृभ्नामि अमुक।।'१०।। अत्र अमुकस्थाने अमुकदेवशर्म्मन् (२) इति माणवक-नाम प्रयोक्तव्यम्। ततो गृहीत-माणवकहस्त

साथ खड़े होकर माणवकको दर्शनपूर्वक मूलमें कहे गये ६-संख्यक मन्त्रका स्वयं जप करे एवं ७-संख्यक मन्त्र माणवकको पाठ करवायें। तत्पश्चात् ८-संख्यक मन्त्रके द्वारा माणवकका नाम पूछने पर माणवक

---

(१) "अमुकनामा कृष्णदासोऽहं"— (२) "अमुक कृष्णदास"—

आचार्य्यो जपति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्ण्वादयो देवता उपनयने गृहीतमाणवकहस्तस्य आचार्य्यस्य जपे विनियोगः, ॐ विष्णुः ते हस्तं अग्रहीत्, नारायणो महाविष्णुः हस्तम् अग्रहीत्, मुकुन्दो प्रभविष्णुः हस्तम् अग्रहीत्, मित्रः त्वं असि कर्म्मणा, विष्णुः आचार्य्यः तव।।'११।। ततो माणवकं आचार्य्योऽनेन मन्त्रेण प्रदक्षिणेन भ्रामयित्वा प्राङ्मुखं करोति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता माणवकस्य आवर्त्तने विनियोगः, ॐ विष्णोः विक्रमणम् अन्वावर्त्तस्व श्रीअमुकदेवशर्म्मन्।।'१२।। ततो माणवकस्य दक्षिणस्कन्धं स्पृष्ट्वावतीर्णेन दक्षिणपाणिना अव्यवहितं (वस्त्राव्यवहितं) नाभिदेशम् अनेन मन्त्रेणाचार्य्यः स्पृशति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतो देवता उपनयने ब्रह्मचारि-नाभिदेशस्पर्शने विनियोगः, ॐ प्राणानां ग्रन्थिः असि, मा विस्रसः, अच्युत तुभ्यम् इदं परिददामि श्रीअमुक-देवशर्म्माणम्।।'१३।। ततो माणवकस्य नाभेरुपरिदेशमनेन मन्त्रेणाचार्य्यः स्पृशति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीनारायणो देवता उपनयने ब्रह्मचारि-नाभ्युपरिदेशस्पर्शने विनियोगः, ॐ नारायण, तुभ्यम् इदं परिददामि श्रीअमुक-

---

९-संख्यक मन्त्रके द्वारा आचार्यको अपना नाम बतलाये। अनन्तर दोनों जलाञ्जलि त्याग करें।

तत्पश्चात् आचार्य मूलमें कहे गये १०-संख्यक मन्त्रका पाठ कर अपने दाहिने हाथके द्वारा माणवकका दाहिना हाथ पकड़कर ११-संख्यक मन्त्रका जप करें। अनन्तर आचार्य मूलमें कहे गये १२-संख्यक मन्त्रसे माणवकको प्रदक्षिणारूप घुमाकर पूर्वमुखी करें। तत्पश्चात् आचार्य अपने दाहिने हाथके द्वारा माणवकके दाहिने स्कन्धका स्पर्शकर मूलोक्त १३-

देवशर्म्माणम्।।'१४।। ततो माणवकस्य हृदयदेशमनेन मन्त्रेणाचार्य्य स्पृशति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीजनार्द्दनो देवता उपनयने ब्रह्मचारि हृदयस्पर्शने विनियोगः, ॐ जनार्द्दन, तुभ्यम् इदं परिददामि श्रीअमुकदेवशर्म्माणम्।।'१५।। तत आचार्य्यो दक्षिणपाणिना माणवकस्य दक्षिणस्कन्धं स्पृशन् जपति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः उपनयने ब्रह्मचारि-दक्षिणस्कन्धस्पर्शने विनियोगः, ॐ विष्णवे प्रजापतये त्वा परिददामि श्रीअमुकदेवशर्म्मन्।।'१६।। ततो वामेन पाणिना माणवकस्य वामस्कन्धं स्पृशन् आचार्य्यो जपति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने ब्रह्मचारि-वामस्कन्धस्पर्शने विनियोगः, ॐ विष्णवे दामोदराय त्वा परिददामि श्रीअमुकदेवशर्म्मन्।।'१७।।

तत आचार्य्यो माणवकमनेन मन्त्रेण सम्बोधयति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने ब्रह्मचारि-सम्बोधने विनियोगः, ॐ ब्रह्मचारि असि श्रीअमुक-देवशर्म्मन्।।'१८।। ततः सम्बोधितं माणवकमाचार्य्यः प्रेषयति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने ब्रह्मचारि प्रेषणे विनियोगः, ॐ समिधम् आधेहि,

---

संख्यक मन्त्रसे अनाच्छादित नाभिदेशका स्पर्श करें। तदनन्तर आचार्य मूलोक्त १४-संख्यक मन्त्रसे माणवकके नाभिके ऊपरी स्थानमें स्पर्श करें। तत्पश्चात् माणवकके हृदयस्थानका मूलोक्त १५-संख्यक मन्त्रसे स्पर्श करें।

१६-संख्यक मन्त्रसे माणवकके दाहिने कन्धेका स्पर्श करें। अनन्तर बायें हाथसे माणवकका बाया कन्धा स्पर्शकर आचार्य मूलोक्त १७-संख्यक मन्त्रका जप करें। तदनन्तर आचार्य मूलोक्त १८-संख्यक मन्त्रसे माणवकका

[ब्रह्मचारी—ॐ बाढ़म्]; ॐ अपः अशान् [ब्रह्मचारी—ॐ बाढ़म्]; ॐ कर्म्म कुरु, [ब्रह्मचारी ॐ बाढ़म्]; ॐ मा दिवा स्वाप्सीः, [ब्रह्मचारी ॐ बाढ़म्] ।।' ब्रह्मचारी सर्व्वत्र 'ॐ बाढ़म्' इति ब्रुयात् ।

ततोऽग्नेरुत्तरतः गत्वा आचार्य्य उदगग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुख उपविशति। माणवकोऽपि पातितदक्षिणजानुः उदगग्रेषु कुशेषु आचार्य्याभिमूख उपविशति। अथैनम् माणवकम् आचार्य्यस्त्रिः प्रदक्षिणां त्रिवृताम् मौञ्जमेखलाम् परिधापयन् मंत्रद्वयं वाचयति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने मेखला परिधापने विनियोगः, ॐ इयं दुरुक्तात् परिवाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनती मे आगात्; प्राणापानाभ्यां वलम् आवहन्ती, स्वसा देवी सुभगा मेखला इयम् ।।१६।। ॐ ऋतस्य गोप्त्री तपसः परस्वी, घ्नती रक्षः, सहमाना अरातीः; सा मा समन्तम् अभिपर्य्येहि भद्रे, धर्त्तारः ते मेखले मा रिषाम्'।।२०।। तत आचार्य्यो यज्ञोपवीतं कृष्णसाराजिनसहितं

सम्बोधन करें। तत्पश्चात् आचार्य माणवकको मूलोक्त वाक्यसे प्रेरणा या आदेश करें। माणवक सर्वत्र 'ॐ बाढ़ं' कहकर आदेशको ग्रहण करें।

अतःपर आचार्य उत्तरसे जाकर उत्तराग्र कुशासन पर पूर्वमुखी होकर बैठें। माणवक भी उत्तराग्र कुशासनपर दाहिना घुटना रखकर आचार्यके सम्मुख (पश्चिममुखी) होकर बैठें। अनन्तर आचार्य माणवकको त्रिगुण मुञ्जमेखला तीन बार घुमाकर (अर्थात् दाहिनेसे घुमाकर तीन बार) पहनाते-पहनाते मूलोक्त १६-२० संख्यक दोनों मन्त्रोंका पाठ करें। तत्पश्चात् आचार्य माणवकको कृष्णसार अजिन-सहित यज्ञोपवीत पहनायें। पहले आचार्य मूलोक्त २१-संख्यक मन्त्रसे यज्ञोपवीत ग्रहण करें। पीछे २२-संख्यक मन्त्र जप करते हुए माणवकको स्वयं उस यज्ञोपवीतको

माणवकं परिधापयेत्। तत्र प्रथमं यज्ञोपवीतादानं,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने यज्ञोपवीतादाने विनियोगः, ॐ यज्ञोपवीतम् असि, यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेन उपनह्यामि'।।२१।। इत्यनेन मन्त्रेण यज्ञोपवीतम् आदाय आचार्य्यस्ततः,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने माणवकस्य यज्ञोपवीत-परिधापने विनियोगः, ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेः यत् सहजं पुरस्तात्; आयुष्यम् अग्र्यम् प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं, वलमस्तु तेजः'।।२२।। इति (जप्त्वा माणवकम्) यज्ञोपवीतं (स्वयम्) परिधापयेत्। ततः (आचार्य्यः माणवकहस्ते अजिनं दत्त्वा)—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने माणवकस्य अजिनपरिधापने विनियोगः, ॐ मित्रस्य चक्षुः वरुणं वलीयः तेजोयशस्वि स्थविरं समिद्धम्; अनाहनस्यं वसनं जरिष्णु परि इदं वाजि अजिनं दधे अहम्'।।२३।। इति (मन्त्रं माणवकं वाचयित्वा) अजिनं परिधापयेत्।

ततो माणवक आचार्य्यस्य उपसन्नो ब्रवीति—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता आचार्य्यामन्त्रणे विनियोगः, ॐ अधीही भोः, सावित्रीं मे भवान् अनुब्रवीतु'।।२४।। ततस्तमुपसन्नं माणवकमाचार्य्यः प्रथमं पादं पादं ततोऽर्द्धमर्द्धं,

---

पहनायें। अतःपर आचार्य माणवकके हाथमें अजिन देकर मूलोक्त २३-संख्यक मन्त्र माणवकको पाठ कराकर अजिन परिधान करायें।

तत्पश्चात् माणवक आचार्यके सामने हाथ जोड़कर मूलमें कहे गये २४-संख्यक मन्त्रका पाठ करे। आचार्य सम्मुखस्थ हाथ जोड़कर खड़े हुए माणवकको पहले एक चरण, इसके अन्तमें सम्पूर्ण सावित्री मन्त्र

ततः कृत्स्नां सावित्रीमध्यापयेत्। यथा—ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता जपोपनयने विनियोगः, 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्' इति प्रथमं पादं बारत्रयम्।। ऋष्यादयः साधारणाः (प्रतिबारम् प्रतिमन्त्रं वाच्याः)। 'ॐ भर्गोदेवस्य धीमहि' इति द्वितीयं पादं बारत्रयम्। 'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्' इति तृतीयं पादं बारत्रयम्। 'ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि' इति पूर्व्वार्द्धं बारत्रयम्। ' ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्'। इत्युत्तरार्द्धं बारत्रयम्। 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ' इति सर्व्वामेव गायत्री बारत्रयं पाठयेत्। ततो माणवकमाचार्य्यो महाव्याहृतीः पृथक् पृथक् कृत्वा ॐकारपूर्व्विका ॐकारान्ताश्च (ॐकारपुटिताः) अध्यापयेत्। यथा,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता महाव्याहृतिपाठे विनियोगः, ॐ भूः ॐ।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः उष्णिक् छन्दः श्रीविष्णुः देवता महाव्याहृतिपाठे विनियोगः, ॐ भुवः ॐ ।। ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णुः देवता महाव्याहृतिपाठे विनि-

---

अध्ययन करावें। यथा—मूलोक्त विधिसे प्रथम पाद तीन बार, द्वितीय पाद तीन बार, तृतीय पाद तीन बार पाठ करावें। तदनन्तर आचार्य माणवकको महाव्याहृति पृथक्-पृथक् ॐकारपुटित (अर्थात् आगे और पीछे ॐकारयुक्त) कर पाठ करायेंगे। (व्याहृति पाठक्रम मूलमें द्रष्टव्य) । व्याहृति पाठ कराकर आचार्य माणवकको सप्रणव व्याहृतिसह प्रणवान्त गायत्री मंत्र तीन बार पाठ करायें। उसके बाद आचार्य माणवकके हाथमें बेल या पलाशका दण्ड प्रदान करते हुए मूलोक्त २५-संख्यक मन्त्र पाठ करावें और दण्ड धारण करावें। दण्ड ग्रहणपूर्वक ब्रह्मचारी भिक्षाके लिए प्रार्थना करे। भिक्षा प्रार्थनाके वाक्य मूलमें द्रष्टव्य है। सबसे पहले माताके

योगः, ॐ स्वः ॐ।।' ततः सप्रणवव्याहृतिकां प्रणवान्तां गायत्री-मध्यापयेत् बारत्रयम्,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता जपोपनयने विनियोगः, ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात् ॐ।।' ततो वैल्वं पालाशं वा माणवकपरिमाणं दण्डं माणवकाय प्रयच्छन्नाचार्य्यो माणवकं वाचयति,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः पङ्क्तिः छन्दः श्रीविष्णुः देवता उपनयने माणवकदण्डार्पणे विनियोगः, ॐ सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु, यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा देवेषु एवम् अहं सुश्रवः सुश्रवा ब्राह्मणेषु भूयासम्'।।२५।। (इति दण्डं ग्राहयेत्)। अथ गृहीतदण्डो ब्रह्मचारी भिक्षां प्रार्थयति। तत्र प्रथमं मातरम्,—'ॐ भवति भिक्षां देहि' इति। ततो लब्धभिक्षो माणवकः—'ॐ स्वस्ति, इति ब्रुयात्; एवं सर्व्वत्र। ततो मातृबन्धुस्त्रियः। ततः पितरम्—'ॐ भवन् भिक्षां देहि' इति प्रार्थयेत्। ततोऽन्यांश्च प्रार्थयेत्। सर्व्वं भिक्षालब्धमाचार्य्याय निवेदयेत्।

ततः पूर्व्ववदाचार्य्यो व्यस्तसमस्त-महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा, प्रकृतं कर्म्म समाप्य सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायनहोमादि-वामदेव्यगानान्त-

---

निकट, उसके बादमें माताकी सहेलियोंके निकट, तत्पश्चात् क्रमसे पिता और पिताके बन्धुओंके निकट भिक्षा करे। भिक्षालब्ध समस्त द्रव्य आचार्य अर्थात् श्रीगुरुदेवको निवेदन करे।

अतःपर आचार्य पूर्ववत् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृति होम कराकर प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक होम कर प्रकृत कर्म समापनपूर्वक सर्वकर्म-साधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्य कर्म समाप्तकर दक्षिणा करायें। यदि पिता स्वयं आचार्य हो तो कर्मकरानेवाले

मुदीच्यं कर्म्म निर्व्वर्त्य दक्षिणां कारयेत्। तत्र यदि पितैवाचार्य्यस्तदा कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिक-वैष्णवाय दक्षिणां दद्यात्। अपरवैष्णवब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात्। तथा कार्ष्णादिवैष्णव-सेवाञ्च कुर्य्यात्। ब्रह्मचारी तु तत्रैव स्थाने दिनान्तं यावत् वाग्यतस्तिष्ठेत्। ततः प्राप्तायां सन्ध्यायां तां उपास्य कुशण्डिकोक्तविधिना समुद्भव नामानमग्निं संस्थाप्य, 'ॐ इह एव अयम् इवरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् इति जप्त्वा, दक्षिणं जानु भूमौ पातयित्वा दक्षिणपश्चिमोत्तर-क्रमेण उदकाञ्जलिसेकं अग्निपर्य्युक्षणञ्च कृत्वा (कुशण्डिकायां द्रष्टव्यं) समिद्धोमं (१) कुर्य्यात्। तत्र प्रादेशप्रमाणां घृताक्तं समिन्त्रयं गृहीत्वा प्रथमम् एकां तूष्णीमग्नौ जुहुयात्। ततः— 'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता अग्नौ समिदाधाने विनियोगः, ॐ विष्णो अग्नये समिधं आहार्य्यं बृहते जातवेदसे, यथा अग्निः समिधा समिध्यति एवमे अहम्

पाञ्चरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा दें। अन्यान्य वैष्णव-ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दें एवं कृष्णभक्त वैष्णवोंकी सेवा करें। ब्रह्मचारी उसी स्थानमें संध्या न होने तक मौन रहकर खड़ा रहे। संध्या होने पर सायं संध्या समापन कर कुशण्डिकामें कहे गये विधानके अनुसार समुद्भव-नामक अग्नि स्थापनपूर्वक 'ॐ इहैवायं' इत्यादि मूलमें कहे गये मन्त्रका जप करे और दक्षिण जानु भूमिमें रखकर दक्षिण, पश्चिम, उत्तरादिके क्रमसे उदकाञ्जलिसेक और अग्निपर्युक्षण कर समिध्का होम करे। ब्रह्मचारी प्रादेशप्रमाण तीन घृताक्त समिध् लेकर उसमेंसे पहले एक समिध् अमन्त्रक होम करे। तत्पश्चात् मूलमें कहे गये २६-संख्यक मन्त्रसे द्वितीय समिध् होम कर तृतीय

---

(१) कार्यतः—व्यस्तसमस्त महाव्याहृतिहोम एवं अमन्त्रक समिध् होमके पश्चात् ब्रह्मचारी द्वारा समिध् होम करवाकर यथाविधि उदीच्य कर्म करें।

आयुषा मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिः ब्रह्मवर्च्चसेन धनेन अन्नाद्येन समेधिषीय स्वाहा'।।२६।। इत्यनेन द्वितीयां जुहुयात्। ततस्तृतीयां तूष्णीं जुहुयात्। ततः कर्म्मशेषोक्तविधिना पुनरग्निपर्य्युक्षणं, दक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण उदकाञ्जलिसेकञ्च कुर्य्यात्। ततः—'ॐ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्म्माहं भोऽभिवादये' —इत्यग्निमभिवाद्य—'ॐ क्षमस्व' इत्यग्निं विसृजेत्।

ततः अतीतायां सन्ध्यायां भिक्षालब्धमन्नं क्षारलवणवर्ज्जितं सघृतं (चरुशेषम्) उदकेनाभ्युक्ष्य,—ॐ अमुतोपस्तरणमसि स्वाहा' इत्यापोऽशनं कृत्वा मध्यमानामिकाङ्गुष्ठ-त्रिपर्व्व-गृहीतेनान्नेन 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा'—इति पञ्चाहुती-रभ्यवहृत्य सर्व्वत्र प्राणाहुतिशेषं भूमौ निक्षिप्य, वामहस्तविधृत भोजनपात्रो वाग्यतो भुञ्जीत। भोजनानन्तरम्—ॐ अमृत-पिधानमसि स्वाहा'—इति पुनरापोऽशनं कृत्वा आचामेत् एत-च्चाग्निकार्य्यं ब्रह्मचारिणा समावर्त्तनपर्य्यन्तं प्रत्यहं सायं प्रातः कर्त्तव्यम्। भोजनं चानेन क्रमेण यावज्जीवं कर्त्तव्यम्।। इति उपनयनकर्म्म।।

समिध् अमन्त्रक होम करे। तत्पचात् उदीच्य कर्ममें कही गयी विधिसे पुनः अग्निपर्युक्षण और उदकाञ्जलिसेक कर मूलोक्त विधानसे अग्निको नमस्कारपूर्वक अग्निका विसर्जन करे।

संध्या अतीत होनेपर क्षार-लवणवर्जित सघृत भिक्षान्न जलके द्वारा अभ्युक्षण कर, मूलोक्त मन्त्रसे आपोऽशन (गण्डुषमें) लेकर, मध्यमा, अनामिका, अंगुष्ठ अंगुलियोंके अग्रभागके द्वारा अन्न ग्रहणकर 'ॐ प्राणाय' इत्यादि पाँच मन्त्रोंसे पञ्चग्रास भक्षण करे एवं प्रत्येक ग्रासके अन्तमें कुछ-कुछ अन्न भूमिमें अवश्य छोड़ दे। तत्पश्चात् बायें हाथसे भोजनपात्र पकड़कर

अथ चतुर्थेऽहनि सावित्रीचरुहोमः। तत्र प्रथमं कृतस्नानः पिता, पितृवृतो ब्रह्मचारिवृतो वा अन्यो वाचार्य्यः समुद्भव-नामानमग्निं संस्थाप्य ब्रह्मस्थापनानन्तरं प्राङ्मुख उपविष्ट-स्तस्मिन्नेवाग्नौ चरु श्रपयेत्।

तस्यानुष्ठानं यथा,—अग्नेः पश्चिमायां दिशि प्रागग्रान कुशान् आस्तीर्य्य तदुपरि प्रक्षालितानीतं वारुणमुदूखलमूषलं, वैणवञ्च सूर्पं वारुणचमसस्थजलप्रोक्षितं संस्थाप्य? व्रीहिन् यवान् वा सूर्पे निधाय, 'ॐ सवित्रे त्वा युष्टं निर्व्वपामि' इति कांस्यपात्रे चरुस्थाल्यां वा गृहीत्वा उदूखले स्थापयेत्। द्विस्तूष्णीम्। ततो दक्षिणहस्तमुपरि कृत्वा मूषलेनावहत्य शूर्पेण प्रस्फोटयेत्। इत्थमेव बारत्रयं कृत्वा त्रिः प्रक्षाल्य चरुस्थाल्याम् अमन्त्रकं कृतोत्तराग्रं पवित्रं निक्षिप्य, तदुपरि प्रक्षालिततण्डुलान् निधाय, दुग्धं निक्षिप्य स्तोकं स्तोकम् उदकं दत्वा, तन्मध्ये खदिरपलाशोडुम्बराणामन्यतमस्य प्रादेशप्रमाणाम् अग्रे उभयतः सार्द्धाङ्गुष्ठपर्व्वप्रमाणं चतुष्कोणपुष्करं मेक्षणं दक्षिणावर्त्तेन

चुपचाप भोजन करे। भोजनके अन्तमें अमृतापधान मन्त्रसे पुनः गण्डुष आचमन करे। समावर्त्तन पर्यन्त प्रतिदिन प्रातः और संध्याके समय इस प्रकार अग्निकार्य करना चाहिए एवं उक्त नियमसे जीवनभर भोजन करना चाहिए। इति उपनयन।।

अथ चौथे दिन सावित्रीचरु होम—स्नान करनेके पश्चात् पिता अथवा पिता द्वारा वृत अथवा ब्रह्मचारीके द्वारा वृत आचार्य समुद्भव नामक अग्नि स्थापनान्तर ब्रह्म स्थापनाकर पूर्वकी ओर मुख कर बैठें। और उस अग्निमें चरु पाक करें।

तदनुष्ठान यथा,—अग्निके पश्चिममें पूर्वाग्रभावसे कुश बिछाकर उसके ऊपर जलसे धोये हुए वरुणकाष्ठनिर्मित उदूखल, मूषल एवं वरुण

भ्रामयित्वा तथा पचेत् यथा अन्तरुष्मणा पाको भवति सम्यक्, मण्डगालनं दाहश्च न भवति। सम्यक् पाके भूते मध्ये घृतस्रुवद्वयं दत्वा प्रागादि-दिक्चिह्नितां चरुस्थालीमवतार्य्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि स्थापयित्वा पुनर्मध्ये घृतस्रुवं दद्यात्।

ततो भूमिजपादि-स्रुवसंस्कार पर्य्यन्तं कर्म्म कृत्वा, अग्नेः पश्चिमतः आस्तरणकुशोपरि पूर्व्वमाज्यं पश्चाच्चरुं निधाय, उदकाञ्जलिसेकं कृत्वा, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ प्रक्षिपेत्। आज्यहोमोपक्रमविहितस्तु महाव्याहृतिहोमश्चरुहोमत्वात् अस्य प्रथमं न कर्त्तव्यः, अन्ते तु कर्त्तव्य एव विहितत्वात्। यदि संक्षेपोऽपेक्षितः जुहुर्व्वा न प्राप्यते, तदा चरुमध्ये घृतस्रुवं दत्वा, तत्रैव मेक्षणेन सकृदन्नं गृहीत्वा, अग्निमध्ये—'ॐ विष्णवे सवित्रे स्वाहा' इति जुहुयात्। अथ प्रवरसंख्यया पञ्च वा त्रयो मेखलाग्रन्थयः कर्त्तव्याः। अथ चेत् फलभूयस्त्वम् अपेक्षितं, जुहुश्च प्राप्यते, तदा भार्गवादिप्रवराणां जुह्वां पञ्चघृतस्रुवान् दत्वा, इतरप्रवराणां घृतस्रुवचतुष्टयं दत्त्वा, अग्नेरुत्तरे प्राग्गामिनीम्

काष्ठनिर्मित चमसके (कलछी) जलसे प्रोक्षितकर बाँससे बने हुए सूपकी स्थापना करें; उस सूपमें चावल व जौ रखकर 'ॐ सवित्रे' इत्यादि मन्त्रसे उसके कुछ अंशको कांस्यपात्र अथवा चरुकी थालीमें लेकर उदूखलमें स्थापन करें। अवशिष्टांश बिना मन्त्रके दो बार ओखलमें रखें। तत्पश्चात् ऊपरमें दाहिने हाथमें धारण किये हुए मूषलके द्वारा आघातकर सूपके द्वारा झाड़ लेंगे। इस प्रकार तीन बार करनेके पश्चात् उसे तीन बार धोवें। चरुपात्रमें अमन्त्रक पवित्र (प्रादेशप्रमाण दो गुच्छ कुश) उत्तराग्ररूपमें स्थापनकर उसके ऊपर धोये हुए चावलको स्थापनपूर्वक दूध डाल दें एवं पाक करते समय थोड़ा-थोड़ा जल देकर मेक्षण (कलछी)

आज्यधाराम्—'ॐ विष्णवे स्वाहा'—इत्यनेन हुत्वा, तथैवाग्नेर्दक्षिणभागे—'ॐ अनन्ताय स्वाहा'—इति जुहुयात्। अथ यदि भृगुगोत्रो भार्गवप्रवरो (वा) ब्रह्मचारी, तदा जुह्वां घृतस्रुवमेकं चरुमध्ये घृतस्रुवमेकं दत्वा तत्रैव मेक्षणेनावदाय अन्नं पुनरपि जुह्वां स्थापयेत्; अवदानस्थाने च चरौ घृतस्रुवं दद्यात्। ततश्चरोः पूर्व्वभागे घृतस्रुवं दत्वा तत्रैव मेक्षणेनावदाय अन्नं पुनरपि जुह्वां स्थापयेत्; अवदानस्थाने च चरौ घृतस्रुवं दद्यात्। ततश्चरोः पश्चिमे भागे घृतस्रुवं दत्वा तत्रैव मेक्षणेनावदाय अन्नं पुनरपि जुह्वां स्थापयेत्; अवदानस्थाने च चरौ घृतस्रुवं दद्यात्। ततो जुह्वां सर्व्वोपरि घृतस्रुवं दत्वा अग्निमध्ये—'ॐ विष्णवे सवित्रे स्वाहा'—इति जुहुयात्। यदि अन्यगोत्रोऽन्यप्रवरो वा तदाचरोः

द्वारा दक्षिणसे बायेंकी ओर उसे घोटकर इस प्रकारसे पाक करें, जिससे मध्यम तापके द्वारा अच्छी तरहसे चरु सिद्ध हो जाय। अर्थात् माँड़ भी निकालना न पड़े तथा नीचे लगकर जल भी न जाय। मेक्षण (कलछी) खदीर, पलाश या गूलरकी लकड़ीकी होनी चाहिए और वह प्रादेशप्रमाण लम्बी हो, उसके आगेका भाग मुख दोनों तरफ डेढ़ आंगुल गहरा और चतुष्कोण होना चाहिए। चरु अच्छी तरहसे पक जानेपर उसमें दो स्रुव घृत डालकर पूर्व आदि दिक् चिह्नयुक्त चरुपात्र अग्निसे उतारकर अग्निके उत्तर दिक्में कुशके ऊपर रखकर उसमें पुनः एक स्रुव घृत दें।

तदनन्तर कुशण्डिकाके अन्तर्गत भूमिजपसे स्रुव-संस्कार तक कर्मका अनुष्ठान कर, अग्निके पश्चिममें बिछाये हुए कुशके ऊपर पहले घी, पीछे चरु स्थापन करना चाहिए एवं उदकाञ्जलिसेक कर विरूपाक्षजपान्त कुशण्डिका समापनपूर्वक प्रकृत कर्मके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक होम करें। आज्य (घी) होमके प्रारम्भमें महाव्याहृति होम विहित होनके कारण, चरु होमके पहले उसे नहीं करना चाहिए। किन्तु उसके पश्चात् करना चाहिए। यदि कार्य संक्षेपमें करना हो अथवा जुहू

पश्चिमभागे घृतस्रुवं दत्वा अवदानं न कर्त्तव्यम्। किन्तु जुह्वां घृतस्रुवं दत्वा, चरुमध्ये प्रागावर्त्तनमेव, चरोरुपरि घृतस्रुवं दत्वा होतव्यम्। ततो भार्गवादिप्रवरो यदि ब्रह्मचारी, तदा जुह्वां घृतस्रुवद्वयं दत्त्वा, चरोः पूर्वोत्तरभागे घृतस्रुवं दत्त्वा,मेक्षणेन चरोः बहुतरमन्नं गृहीत्वा जुह्वां स्थापयेत्; अवदानस्थाने चरौ

(पलाशकी लकड़ीका यज्ञपात्र) नहीं मिले, तो चरुमें एक स्रुव घृत डालकर उसीमेंसे मेक्षणके द्वारा एक बार अन्न लेकर उसे 'ॐ सवित्रे स्वाहा' मन्त्रसे अग्निमें होम करें।

अनन्तर प्रवरसंख्याके अनुसार पाँच या तीन मेखलाग्रन्थि प्रस्तुत करें। यदि अधिक फलकी इच्छा हो और जुहू भी प्राप्त हो जाय, तो भृगुगोत्र या भार्गवप्रवर ब्रह्मचारी जुहूमें पाँच स्रुव घी देकर, अन्यप्रवरगोत्र ब्रह्मचारी चार स्रुव घृत देकर 'ॐ विष्णवे स्वाहा' मन्त्रसे अग्निके उत्तर अंशमें उत्तराग्र घृत-धारा प्रदान करे। "ॐ अनन्ताय स्वाहा' मन्त्रसे अग्निके दक्षिण अंशमें पूर्वोक्तप्रकारसे घृत धारा दे। अतःपर भृगुगोत्र अथवा भार्गवप्रवर ब्रह्मचारी जुहूमें एक स्रुव और चरुमें एक स्रुव घृत देकर, चरुके उस स्थानसे कलछीके द्वारा अन्न अवदान ग्रहणकर जुहूमें स्थापित करे और चरुके अवदान स्थानमें भी एक स्रुव घृत डाल दे। पुनः चरुके पश्चिम भागमें एक स्रुव घी देकर उस स्थानसे कलछीके द्वारा अन्न अवदान कर उसे जुहूमें स्थापनके अनन्तर चरुके अवदान स्थानमें एक स्रुव घृत डाल दे। तत्पश्चात् जुहूमें समस्त अन्नके ऊपर एक स्रुव घृत देकर 'ॐ विष्णवे सवित्रे स्वाहा' मन्त्रसे अग्निमें होम करे। ब्रह्मचारी अन्यगोत्रप्रवर होनेपर चरुके पश्चिम भागमें अवदान न करे। किन्तु जुहूमें एक स्रुव घृत देकर थालीमें रखे हुए चरुमें (पश्चिम भाग छोड़कर) पूर्व प्रक्रियाकी पुनरावृत्तिकर जुहूमें रखे हुए चरुके ऊपर एक स्रुव घृत देकर पुनः होम करे। अतःपर भृगुगोत्र वा भार्गवप्रवर ब्रह्मचारी जुहूमें दो स्रुव घृत देकर, चरुके पूर्वोत्तर भागमें (ईशान कोणमें) एक स्रुव घृत देकर कलछीके द्वारा उस स्थानसे अधिकांश अन्न उठाकर जुहूमें स्थापन

घृतस्रुवं न दद्यात्। ततो जुहुस्थचरोरुपरि घृतस्रुवद्वयं दत्त्वाग्नेः पूर्वोत्तरभागे—'ॐ स्वस्तिकृते श्रीअच्युताय स्वाहा'—इति जुहुयात्। यद्यन्यगोत्रोऽन्यप्रवरस्तदा प्रथममेक एव घृतस्रुवो जुह्वां दातव्यः (अन्यत् सर्व्वं समानम्।)

ततस्तूष्णीमग्नौ मेक्षणं हुत्वा महाव्याहृतिहोमं कृत्वा तूष्णीं प्रादेशप्रमाणसमित्प्रक्षेपान्तं प्रकृतं कर्म्म समाप्य सर्व्वकर्म्म साधारणं शाट्यायनहोमादि वामदेव्यगानान्तं उदीच्यं कर्म्म समाप्य आचार्य्याय दक्षिणां दद्यात्। पितैवाचार्य्यश्चेत् कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिक-वैष्णवाय ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात्।। इति सावित्रीचरुहोमः।।

करे। किन्तु चरुके अवदानस्थानमें घृत स्रुव न दे। तत्पश्चात चरुके ऊपर दो स्रुव घृत देकर अग्निके पूर्वोत्तर भागमें 'ॐ स्वस्तिकृते अच्युताय स्वाहा' मन्त्रसे होम करे। अन्यगोत्रप्रवर होने पर जुहूमें पहले एक स्रुव घृत दे। (अन्य समस्त कार्य समान रूपसे)।

अनन्तर कलछीको अग्निमें अमन्त्रक होम कर, महाव्याहृति होम कर, अमन्त्रक प्रादेशप्रमाण समिध् निक्षेप कर प्रकृतकर्म समापनपूर्वक सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन होम आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्य कर्म समाप्त करे एवं आचार्यको दक्षिणा दे। पिता ही आचार्य होने पर कर्म करानेवाले पाञ्चरात्रिक वैष्णवोंको दक्षिणा प्रदान करें। इति सावित्रीचरु होम।।

(१७) अथ समावर्त्तनम्

अथ कृतवेदाध्ययनं आचार्य्यनुमतं माणवकं समावर्त्तयेत्। तत्र प्रातः कृतस्नानः कृतविष्णुपूजनः कृतसात्त्विकवृद्धिश्राद्धः पिता, कृतवृद्धिश्राद्धेन पित्रा वृतो, ब्रह्मचारिवृतो वाऽन्य एवाचार्य्यस्तेजोनामानमग्निं संस्थाप्य, विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य, माणवकं दक्षिणे निधाय, प्रकृतकर्म्मारम्भे प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधमग्नौ तूष्णीं हुत्वा महाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। तत आचार्य्यः पञ्चाहुतीर्जूहुयात् यथा,—'ॐ प्रजापतिः विष्णु ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनन्तो देवता समावर्त्तनहोमे विनियोगः, ॐ अनन्त व्रतपते व्रतम् अचारिषं तत् ते प्रब्रवीमि, तत् अशकं, तेन अरात्सम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपागां स्वाहा।।१।। ॐ परमेश्वर ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीवासुदेवो देवता समावर्त्तनहोमे विनियोगः, ॐ वासुदेव व्रतपते व्रतम् अचारिषं, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् अशकं, तेन अरात्सम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपागां स्वाहा।।२।। ॐ सनक ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीचतुर्भुजो देवता समावर्त्तनहोमे विनियोगः, ॐ

---

(१७) **अथ समावर्त्तन**—आचार्यकी आज्ञासे अधीतवेद माणवकका (ब्रह्मचारीका) समावर्त्तन अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। समावर्त्तनके दिन पिता स्नानके अनन्तर विष्णुपूजा और सात्त्विकवृद्धिश्राद्ध करें अथवा वृद्धिश्राद्ध करनेके पश्चात् पिताके द्वारा वृत अन्य आचार्य अथवा ब्रह्मचारीके द्वारा वृत अन्य आचार्य तेजो-नामक अग्नि संस्थापनपूर्वक विरूपाक्षजपान्त कुशण्डिका समाप्त कर ब्रह्मचारीको अपने दक्षिणमें बैठाकर, प्रकृत कार्यके आरम्भमें प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक होम कर महाव्याहृति होम करे। तत्पश्चात् आचार्य मूलमें कहे गये पाँच मन्त्रोंसे पाँच आज्य होम करे। अनन्तर आचार्य उत्तराग्र कुशासन पर उत्तरमुखी बैठें। ब्रह्मचारी

चतुर्भूज व्रतपते व्रतम् अचारिषं, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् अशकं, तेन अरात्सम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपागां स्वाहा।।३।। ॐ सनत्कुमार ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीसर्व्वेश्वरो देवता समावर्त्तनहोमे विनियोगः, ॐ सर्व्वेश्वर व्रतपते व्रतम् अचारिषं, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् अशकं, तेन अरात्सम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपागां स्वाहा।।४।। ॐ आयुष्मान् ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअच्युतो देवता समावर्त्तनहोमे विनियोगः, ॐ अच्युत व्रतपते व्रतम् अचारिषं, तत् ते प्रब्रवीमि, तत् अशकं, तेन अरात्सम्, इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उपागां स्वाहा।।५।।

ततः आचार्य्य उदगग्रेषु कुशेषु उत्तराभिमुख उपविशति। ब्रह्मचारी तु आचार्य्यस्य पश्चिमोत्तरकोणे उदगग्रेशु कुशेषु प्राङ्मुख उपविशति। ततः शीतोष्णमिश्रिताभिरद्भिर्व्रीहि-यव-माष-मुद्गाद्योषधिद्रव्ययुक्ताभिश्चन्दनादिगन्धवासिताभिः पात्रान्तरस्थिताभिः स्वाञ्जलिं पूरयित्वा ब्रह्मचारी आचार्य्य-प्रेरितोऽनेन मन्त्रेण भूमौ उदकाञ्जलिं त्यजेत्,—'ॐ शौनक ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीनारायणानन्तादयो देवताः समावर्त्तने ब्रह्मचार्य्युदकाञ्जलित्यागे विनियोगः, ॐ अप्सु अन्तः-नारायणानन्तादयः प्रविष्टाः, गोह्य उपगोह्यो मयुखो मनोहाः खलो विरुजः तनूदूषिः इन्द्रियहा अति तानत् अग्नीन्

आचार्यके पश्चिमोत्तर कोणमें उत्तराग्र कुशासन पर पूर्वमुख होकर बैठे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी चावल, जौ, उड़द, मूँग आदि औषधिसहित चन्दन आदि द्वारा सुवासित, पात्रस्थित शीत-उष्ण मिश्रित जलसे अपनी अञ्जलि पूर्णकर आचार्यके आदेशसे मूलमें कहे हुए १-संख्यक मन्त्रसे जलाञ्जलि भूमिमें छोड़ दे। पुनः इसी प्रकार जलसे अंजलि पूर्णकर मूलोक्त २–संख्यक

सृजामि।।'१।। ततः पुनस्ताभिरञ्जलिं पूरयित्वा अनेन मन्त्रेण भूमौ त्यजेत्,—'ॐ व्यासदेव ऋषिः विराट् छन्दः श्रीमहाविष्णुः देवता समावर्त्तने ब्रह्मचार्य्युदकाञ्जलित्यागे विनियोगः, ॐ यदपां घोरं, यदपां क्रुरं, यदपाम् अशान्तम्, अति तत् सृजामि।।'२।। ततो ब्रह्मचारी आचार्य्यप्रेरितस्ताभिरद्भिः स्वाञ्जलिं पूरयित्वा अनेन मन्त्रेण आत्मानमभिषिञ्चेत्—'ॐ सनातन ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीवराहो देवता समावर्त्तने ब्रह्मचार्य्युदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ वराह त्वमिह भव, तेनाहं आत्मानं अभिषिञ्चामि'।।३।। ततः पुनरपि पूर्व्ववत् स्वाञ्जलिं पूरयित्वा अनेन मन्त्रेणात्मानमभिषिञ्चेत्,—'ॐ श्रीनारद ऋषिः बृहती छन्दः श्रीमदनन्तो देवता समावर्त्तने ब्रह्मचार्य्युदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ यशसे तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय वलाय इन्द्रियाय वीर्य्याय अन्नाद्याय रायस्पोषाय त्विष्ट्यै अपचित्तै'।।४।। ततः पुनरपि पूर्व्ववदञ्जलिं गृहीत्वा अनेन मन्त्रेणात्मानमभिषिञ्चेत्—'ॐ परमेश्वर ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीअनन्तो देवता समावर्त्तने ब्रह्मचार्य्युदकाञ्जलिसेके विनियोगः, ॐ येन कृष्णयशोगानं येन शय्या, येन आसनं, येन उपानं येन छत्रं व्यजनं सूत्रं वसनं, यत् यत् सेवा यशः ते सर्व्वं, तेन माम् अभिषिञ्च त्वम्'।।५।। ततः पुनरपि ब्रह्मचारी तादृशेनाञ्जलिना तूष्णीमात्मानम् अभिषिञ्चेत्।

मन्त्रसे उसे भूमिपर छोड़ दे। अतःपर ब्रह्मचारी आचार्यके आदेशसे उस जलसे अपनी अंजलि पूर्णकर मूलोक्त ३-संख्यक मन्त्रसे अपनेको अभिषिक्त करे। पुनः इसी प्रकार अंजलि पूर्णकर मूलोक्त ४-संख्यक मन्त्रसे स्वयंको अभिषिक्त करे। ५-संख्यक मन्त्रसे स्वयंको पूर्ववत् पुनः अभिषिक्त करे।

ततोऽभिषेकानन्तरं ब्रह्मचारी उत्थाय प्राङ्मुखे श्रीनारायणं पश्यन् चतुर्भिमन्त्रैरुपतिष्ठत्—'ॐ वेदव्यास ऋषिः विराट् छन्दः श्रीविष्णुः देवता श्रीनारायणोपस्थाने विनियोगः, ॐ नारायणः विराजन् भ्राजभृष्णुः इन्द्रो मरुद्भिः अस्थात् प्रातः यावभिः पार्षदैः दशसनिः असि, दशसनिं मा कुरु, आ त्वा विशामि, आ मा विश।।६।। ॐ वैशम्पायन ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीसहस्र-शीर्षा पुरुषो देवता श्रीनारायणोपस्थाने विनियोगः, ॐ नारायणो, विराजन् भ्राजभृष्णुः इन्द्रो मरुद्भिः अस्थात् दिवा यावभिः आवरणैः, शतसनिः असि, शतसनिं मा कुरु, आ त्वा विशामि, आ मा विश।।७।। ॐ श्रीसनन्दन ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीहृषिकेशो देवता श्रीनारायणोपस्थाने विनियोगः, ॐ नारायणो विराजन् भ्राजभृष्णुः इन्द्रो मरुद्भिः अस्थात् सायं यावभिः सखिभिः, सहस्रसनिः असि, सहस्रसनिं मा कुरु, आ त्वा विशामि, आ मा विश।।८।। ॐ सनातन ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीविश्वम्भरो देवता, श्रीनारायणोपस्थाने विनियोगः, ॐ एको देवः सर्व्वभूतेषु गूढ़ः सर्व्वव्यापी सर्व्वभूतान्तरात्मा। कर्म्माध्यक्षः सर्व्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। ॐ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्। तं पीठगं ये अनुभजन्ति धीराः तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।। ॐ नमो नमस्तुभ्यं नारायणाय'।।६।।

अतःपर पुनः और एक बार बिना मन्त्रसे उसी प्रकार अञ्जलि द्वारा स्वयंको अभिषिक्त करे।

अनन्तर ब्रह्मचारी पूर्वमुखी खड़ा होकर श्रीनारायण विग्रह दर्शनपूर्वक मूलोक्त ६ से ९ संख्यक चार मन्त्रोंसे उपासना करे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी

ततो ब्रह्मचारी मेखलामनेन मन्त्रेण अधस्तान्मोचयेत्—ॐ हरि ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीवसुदेवात्मजो देवता मेखलामोचने विनियोगः, ॐ उदुत्तमं वरूण पाशम् अस्मत् अव अधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथः विष्णो व्रते वयं तव अनागसः श्रियै स्याम'।।१०।। तत आचार्य्यो बैल्वं पालाशं वा दण्डम् अग्नौ क्षिप्त्वा, महाव्याहृतिहोमं कृत्वा, प्रादेशप्रमाणां घृताक्तां समिधं तूष्णीमग्नौ हुत्वा प्रकृतं कर्म्म समाप्य सर्व्वकर्म्मसाधारणं शाट्यायनहोमादि वामदेव्यगानान्त मुदीच्यं कर्म्म समापयेत्। ततो ब्रह्मचारी कार्ष्णादिवैष्णवान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयञ्च भुक्त्वा शिखावर्जं केश-श्मश्रु-नखानां स्फोटनं कारयित्वा स्नात्वा अहते वाससी परिधाय कृतालङ्कार अनेन मन्त्रेण यज्ञोपवीतद्वयं परिदध्यात्,—'ॐ सनन्दन ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीहरिः देवता समावर्त्तने यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः, ॐ यज्ञोपवीतम् असि, यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेन उपनह्यामि'।।११।। [कालान्तरेऽपि छिन्नं यज्ञोपवीतं जले त्यक्त्वा अपरं एतन्मन्त्राभिमन्त्रितं गृह्णीयात्।] ततः स्नातकोऽनेन मन्त्रेण मूर्द्ध्नि स्रजं वध्नीयात्,—'ॐ करभाजन ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीभागवती

मूलोक्त १०-संख्यक मन्त्रसे मेखलाको नीचेकी तरफसे निकाल दे। अनन्तर आचार्य बेल या पलाशका दण्ड अग्निमें निक्षेप कर महाव्याहृति होम करें, प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिध् अमन्त्रक होम कर प्रकृत कर्म समापनपूर्वक सर्वकर्मसाधारण शाट्यायन आदि वामदेव्यगानान्त उदीच्यकर्म समाप्त करें।

अनन्तर ब्रह्मचारी कृष्णभक्त वैष्णव-ब्राह्मणको भोजन कराकर एवं स्वयं भोजन कर, शिखा व्यतीत केश, दाढ़ी, लोम, नख कटाकर स्नान करे, नये दो वस्त्र (धोती और चादर) और अलंकार धारण करे तथा

देवता, स्रग्बन्धने विनियोगः, ॐ श्रीः असि, मयि भागवती रमस्व'।।१२।। ततः स्नातकोऽनेन मन्त्रेण चर्म्मपादुकायुगले चरणो निदध्यात्—'ॐ जमदग्नि ऋषिः विराड्गायत्री छन्दः श्रीउपेन्द्राच्युतौ देवते उपानत्-परिधाने विनियोगः, ॐ नेत्रौ स्थो, नयत माम्'।।१३।। ततः स्नातक आत्मपरिमितं वैणवं दण्डमनेन मन्त्रेण गृह्णाति—'ॐ परमेश्वर ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीकेशवो देवता दण्डग्रहणे विनियोगः, ॐ नारायणस्य त्वं विहितो, गन्धर्वोऽसि, उप मा अव'।।१४।। ततस्त्यक्तं कृष्णसाराजिनं यज्ञोपवीतञ्च दण्डोपरि निदध्यात्। ततः स्नातक आचार्य्यसमीपं गत्वा सपरिषदमाचार्य्यमनेन मन्त्रेण पश्येत्—'ॐ सनन्दन ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः श्रीईश्वराचार्य्यो देवता, आचार्य्यपरिषद्-वीक्षणे विनियोगः, ॐ यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम्'।।१५।। अथ स्नातक आचार्य्यसमीपं गत्वा उपविश्य प्रसारिताङ्गुलिना दक्षिणहस्तेन मूखमाच्छाद्य मूखभवं प्राणवायुं संस्पृशन् इमं मन्त्रं पठेत्—'ॐ करभाजन ऋषिः सावित्री

मूलोक्त ११-संख्यक मन्त्रसे दो यज्ञोपवीत धारण करे (दूसरे समय भी छिन्न उपवीत जलमें फेंककर उक्त मन्त्रसे नवीन उपवीत धारण करे।) तत्पश्चात् स्नातक मूलोक्त १२-संख्यक मन्त्रसे गलेमें माला धारण करे। अनन्तर स्नातक मूलोक्त १३-संख्यक मन्त्रसे चर्मपादुकामें दोनों चरणोंको स्थापित करे। अतःपर स्नातक स्वप्रमाण (अपनी लम्बाईका) बाँसका दण्ड १४-संख्यक मन्त्रसे ग्रहण करे। परित्यक्त कृष्णसार अजिन और यज्ञोपवीत दण्डके ऊपरमें स्थापन करे तत्पश्चात् स्नातक आचार्यके समीप जाकर सगोष्ठी आचार्यको मूलोक्त १५-संख्यक मन्त्रसे दर्शन करे। तदनन्तर स्नातक आचार्यके निकट बैठकर दाहिने हाथकी अंगुलियोंको फैलाकर उसी दाहिने हाथसे मुख आच्छादन कर, मुखसे निकली हुई प्राणवायुका स्पर्शकर मूलोक्त १६-संख्यक मन्त्रका पाठ करे। आचार्य

छन्दः सनातनो देवता मुख्यप्राणस्पर्शने विनियोगः, ॐ ओष्ठापिधाना नकुली, दन्तपरिमितः परिः, जिह्वे मा विह्वलो वाचं, चारु माद्येह वादय'।।१६।। आचार्य्यस्तं पाद्यादिभिरर्च्चयेत्। ततो स्नातको गोयुगसहितस्य रथस्य समीपं गत्वा, पक्षस्-शब्दवाच्यं कूवरबाहुशब्दवाच्यं वा रथावयवद्वयं स्पृशन् अनेन मन्त्रेण पादत्रयेन रथमारोहेत्—'ॐ नारद ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीविष्णु देवता रथाभिमर्षणे विनियोगः, ॐ वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाः, अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः, गोभिः सन्नद्धोऽसि वीड़यस्व'।।१७।। ततोऽनेन मन्त्रेण चतुर्थपादेनोपविशति—'ॐ परमेश्वर ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीविष्णुः देवता रथोपवेशने विनियोगः, ॐ आस्थाता ते जयतु जेत्वानि'।।१८।। ततः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा स्नातको रथेन गत्वा दक्षिणेन परावृत्याचार्य्यसमीपमागच्छति। आचार्य्यः पुनस्तस्मै पाद्यादिकं दद्यात्। ततो यदि पितैवाचार्य्यस्तदा कर्म्मकारयितृ-पाञ्चरात्रिक-वैष्णवाय, यदि अन्य एव आचार्य्यः कृतस्तदा तस्मै, अन्येभ्यो वैष्णव-ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां दद्यात्। ततः कार्ष्णादिवैष्णव-ब्राह्मण

उस समय पाद्यादिके द्वारा स्नातकका अर्चन करें। अनन्तर स्नातक दो बैलोंसे युक्त रथके निकट जाकर पक्ष और कुवर नामक रथके दो अंगोंका स्पर्शकर मूलोक्त १७-संख्यक त्रिपादविशिष्ट मन्त्रसे रथपर आरोहण करे एवं मूलोक्त १८-संख्यक एकपाद विशिष्ट मन्त्रसे रथमें बैठे। तत्पश्चात् स्नातक रथपर चढ़कर पूर्वकी ओर अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुखकर कुछ दूर जाकर दक्षिणावर्त्तसे घूमकर आचार्यके निकट आवे। आचार्य पुनः उसे पाद्यादि अर्पण करें। तत्पश्चात् पिता आचार्य होने पर कर्मकारक पांचरात्रिक वैष्णवोंको एवं अन्य आचार्य होनेपर उस आचार्यको एवं दूसरे वैष्णव-ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दें। अनन्तर कृष्णभक्त वैष्णव-ब्राह्मणोंकी

सेवां, जीवसन्तर्पणञ्च कुर्य्यात्। वैगुण्यप्रशमनाय श्रीकृष्णनाम यथाशक्ति जपेत्। दण्डवत् प्रणतिञ्च कुर्य्यात्। इति समावर्त्तनम्।

इति सत्क्रियासार-दीपिका समाप्ता।

सेवा और जीव-सन्तर्पण करें। वैगुण्यका प्रशमन करनेके लिए यथाशक्ति श्रीकृष्णनाम जप करें। श्रीश्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंको दण्डवत् प्रणाम करें। इति समावर्त्तन।।

इति सत्क्रियासार-दीपिकाका हिन्दी अनुवाद समाप्त।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

संस्कार-दीपिका

(श्रीकृष्णचैतन्यसम्प्रदायानुमोदिता वैष्णव-दशसंस्कारपद्धतिः)

श्रीगौरपार्षदप्रवरेण

श्रीमद्गोपालभट्टगोस्वामिना

कृता

जगद्गुरु ॐ विष्णुपादाष्टोत्तरशतश्री-

श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती-गोस्वामि-प्रभुपादानुकम्पित-

प्रियपार्षदप्रवर-"श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितेः" प्रतिष्ठाता-

नित्यलीलाप्रविष्ट-ॐ विष्णुपाद-अष्टोत्तरशत श्री-

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव-गोस्वामि-महाराजानुग्रहीत-

त्रिदण्डिस्वामिना

श्रीमद्भक्तिवेदान्त-नारायण-महाराज-

अनुदिता-सम्पादिता च

[सेवानुकूल्यम्—

संस्कार-दीपिकाकी विषय-सूची

विषय	पत्रांक
आश्रमादि निषेध अवैष्णवपर है	२
साम्प्रदायिक और तान्त्रिक वैष्णव	३
गृहीकी संज्ञा	३
संन्यासीकी संज्ञा	३
दशनामी ब्रह्मसंन्यासी	४
परमहंस अवधूतकी महिमा	५
वैष्णवी दीक्षासे विप्रत्व	६
स्त्रियोंका ब्रह्मचर्य आदि आश्रम	१०
शूद्र आदिकी भी संन्यास व्यवस्था	१५
गुरुपरम्परा	१७
संन्यासके विधिवाक्य	१८
संन्यासके संस्कार	१८
क्षौर-संस्कार (१)	२०
तीर्थस्नान (२)	२१
आचमन	२१
करन्यास	२३
अंगन्यास	२३
प्राणायाम	२४
हरिमन्दिर तिलक (३)	२४
विष्णुपञ्जरन्यास	२६
नाम-मुद्राधारण (४)	२७
पंचसंस्कार	२७
कौपीन शुद्धि (५)	२६
प्राणप्रतिष्ठा (६)	३२
कौपीन अधिकारी	३३
संन्यास-प्रार्थना	३५
नामकरण (७)	३७
विष्णुमन्त्रधारण (८)	३७
अच्युतगोत्र स्वीकार (६)	३८
शालग्राम अर्च्चन (१०)	४१
समाधि मन्त्र	४१

श्लोक-सूची

श्लोक पत्रांक

अ

अक्षोभ्य जयतीर्थ १७
अधुना तत् परित्यज्य................ ४०
अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे ६
अन्यत्र ब्राह्मणकुलात् १०, ४१
अपि चेत्सुदुराचारो ७
अवाप्तपञ्चसंस्कारो २७
अविद्यो वा सविद्यो वा ४
अवैष्णवपरं २
अमीभिर्निर्मिता ४०
अमी हि पंच संस्काराः २७
अश्वत्थपत्रसङ्काशं २५
अष्टमं वामकर्णेऽग्रे २०
अष्टादशाक्षरस्यैव २०
अस्माद्धर्मात् परो धर्म्मो ४०
अहं तरिष्यामि १२
अहोबत श्वपचोऽतः ६

आ

आ कुर्यादूर्ध्वरेखे २५
आरभ्य नासिकामूलं २५
आशीः कुरुत तत्पादे २१

ऊ

ऊर्ध्वपुण्ड्रं ललाटे २५

ए

एतच्च कौपीनं डोरं ३०
एतदन्यच्च तत्सर्व्वं ३२
एतद्धर्मं समाश्रितो ३८
एतन्न पूतं मुनिभिः.................... ३४
एतां समास्थाय १२
एतैर्दशभिः संस्कारैः २०
एवं न्यासं समाचर्य २७
एवं परम्पराप्राप्तं ३५

क

कन्थां वहसि दुर्बुद्धे १२
कमण्डलुं तथाऽन्यद्वा ३२
काषायरहितं वस्त्रं ३४
कुत्सितं मलिनं वासो ३४
कृत्वा तु तत् प्रयत्नेन ३०
कैश्चिदत्र त्रयः प्रोक्ता ३०
कौपीनं देहि शुद्ध्यर्थं ३५
कौपीनं परिशुध्यन्तु ३१
कौपीनं पृथ्वीरूपोक्तं ३०
कौपीनं ब्रह्मनिर्मितं ३५
कौपीनं युगलं वासः ३१
कौपीनग्रहणेनाहं ३५
कौपीनडोरं सूचीवेधयुक्तं ३४

ग

गङ्गादिसर्व्वतीर्थानि ३१
गार्हस्थ्यकृत्यसंप्राप्तौ १
गुञ्जा धात्री च पद्माक्षं ४०
गुणज्ञब्राह्मणो दासः ३७
गृहीतविष्णुदीक्षाको ३३
गोपीभावाश्रितो मन्त्रः ३८
गोपीमृदादिना २८
ग्रन्थिमध्ये स्थिता विष्णुः ३०
ग्रन्थ्यर्थं मुष्टियुगलं २६

च

चण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठो ७

श्लोक	पत्रांक
चतुर्थं चन्दनैर्गात्रे	१६
चतुर्द्दशमुष्टिदीर्घं	३०
चन्दनेनापि संप्रोक्ष्य	३०
ज	
ज्ञाननिष्ठो	१२, ३८
ड	
डोरश्चानन्तरूपोऽसौ	३०
त	
तच्छिष्यान्	१७
तच्छृण्वन् सुपठन्	२८
ततोऽस्मान्नारदः	३५
ततो द्वादशभिः	२४
ततो लक्ष्मीपतिं	१७
तत्प्रक्षालनतोयन्तु	२४
तथा दीक्षाविधानेन	६
तथैवाच्युतगोत्रेण	४०
तपः श्रुतिश्च योनिश्च	६
तमालमूलवच्छिरो	२५
तस्मात् प्राप्तो गौरचन्द्रः	३५
तस्मै देयं प्रयत्नेन	३३
तापः पुण्ड्रं तथा नाम	२७
तापादिदशसंस्कार	३
तापादिपञ्चसंस्कार	३
तापादिपञ्चसंस्कारैः	२०
तापोऽत्र तप्तचक्रादि	२८
तुलसीमालिकोरस्क	३६
तृतीयं हरिमन्दिरं	१६
तेनैव हरिनामादि	२८
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः	८

श्लोक	पत्रांक
तेषां दासानुदासोऽहं	३७
तेषां यो धर्मसम्पन्नः	४०
तेषामेकतरं किम्वा	३२
त्यक्तवर्णाश्रमो	४
त्रिविक्रमं कन्धरे	२४
द	
दक्षिणग्रन्थिसंयुक्तं	३०
दम्भाय भक्तिहीनाय	३३
दासो भवामि	२१
दीयतेऽस्मै, दासृ दाने	३७
देवं श्रीकृष्णचैतन्यं	१७
देवमीश्वरशिष्यं	१७
द्वादशाङ्गेषु	२४
ध	
धारयित्वा महायोगी	३५
धारयेच्छयनादौ	२८
न	
न दातव्यं न दातव्यं	३३
न धारयन्ति ये मालां	३६
नवमः चाच्युतगोत्र	२०
नरकान्न निवर्त्तन्ते	३६
न शूद्रा भगवद्भक्ताः	७
नामात्र कथितं सद्भिः	३७
नासादिकेशपर्यन्तम्	२५
नासिकायास्त्रयो भागा	२५
नित्यानन्दपदद्वन्द्वं	३७
निमाञ्याद्याख्यया	१७
निर्मिता गौरदासानाम्	४२
निषेधवचनं यद्यत्	२

श्लोक	पत्रांक
न्यसेत् किरीटमन्त्रञ्च	२७
न्यासप्रकरणे प्राज्ञः	३७
प	
पञ्चमं कौपीनशुद्धिं	१६
पद्मकुट्मलसन्निभं	२५
पालाशं वैणवं	३२
पितृगोत्राद् यथा कन्या	४०
पुण्ड्रं स्यादूर्ध्वपुण्ड्रं	२५
पुरुषोत्तम ब्रह्मण्य	१७
पृष्ठे तु पद्मनाभञ्च	२४
प्रैषेत्युच्चारणात् पूर्वं	३५
ब	
बहिर्व्वासो विष्णुशक्तिः	३०
ब्रह्मचर्य्यादि कृत्ये तु	१
ब्रह्मसंन्यासी ब्रह्मज्ञो	४
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चैव	३०
ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्	१
भ	
भावभक्तिजनैर्धार्य्यं	३०
म	
मत्स्यादीनां तथा	२८
मध्ये छिद्रसमायुक्तं	२५
मध्ये विष्णुः विजानीयात्	२५
मस्तकं मुण्डय मुण्डिन्	२०
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य	८
मातृ पितृसमाः	२१
मायातरङ्गे संसारे	३५
मुण्डनं प्रथमं	१६
मैत्रकारुण्यशीलश्च	३३

श्लोक	पत्रांक
य	
यच्छेदष्टादशार्णन्तु	३७
यज्ञोपवीतवत् धार्य्या	३६
यत्र ज्ञानविराग	१४
यथा काञ्चनतां याति	६
यद् गोत्रमाश्रितेनापि	४०
यस्मिन् पारमहंस्यम्	१४
ये कण्ठलग्नतुलसी	३६
ये बाहुमूलपरिचिह्नित	३६
योन्याकृतिधारणेन	३८
ल	
लज्जारूपा भगवती	३०
ललाटादिक्रमेनैव	२५
ललाटे केशवं	२४
व	
वक्षस्थले माधवन्तु	२४
वामपार्श्वे स्थितो	२५
विजितषड्गुणो यस्तु	३३
विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ	२४
वैष्णवस्तु द्विधा प्रोक्तः	३
वैष्णवोऽहं	४
वैष्णवो भक्तिमान्यासी	४
श	
शरीरत्राणकामो	३१
शालग्रामार्च्चनं	२०
शिखा यज्ञोपवीतं	१२
शूद्रजातिविदूरस्य	८
शौनकादिऋषिः	३५
श्रद्धा मे कृष्णचैतन्य	२०

श्लोक	पत्रांक
श्रीकृष्णतोषमात्रार्थं	३८
श्रीकृष्णप्रेमदानेन	१७
श्रीकृष्ण-ब्रह्म-देवर्षि	१७
श्रीकृष्णसेवी विप्रस्तु	३७
श्रीकृष्णोपासकानान्त	२८
श्रीगुरुं पूजयित्वा	१७
श्रीगोपीचन्दनेनैव	२८
श्रीचैतन्य दयासिन्धो	२१
श्रीधरं वामबाहौ	२४
श्रीविद्यानिधि-राजेन्द्र	१७
श्रीमद्भागवतं पुराणममलं	१४
श्रीमध्व-श्रीपद्मनाभ	१७
श्रीमन्नारायणाख्यस्य	२८
श्रीलाद्वैतं गदाधरं	१७
स	
संप्राप्य वैष्णवीं दीक्षां	६
संस्कारदीपिकानाम्नी	४२
संस्कारभेदसम्प्राप्त्या	२०
संस्कारादिविहीनत्वात्	२
संस्कारवान् कारयेद्	१७
स कस्माद् ब्रह्मचर्य्यादि	२
सनत्कुमारतन्त्रोक्त	३७
सन्न्यासधर्म्महीनस्तु	४०

श्लोक	पत्रांक
सन्न्यासी च द्विधैवादौ	४
सप्तमं हरिदासादि	२०
समारभ्य भ्रुवोर्मूलं	२५
सम्प्रदायी द्विभेदः स्यात्	३
सर्व्वत्रास्थलितादेशः	१०, ४१
सर्व्ववर्णेषु ते शूद्रा	१३
सर्व्वे विधिनिषेधाः	६
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्ता	२४
स लोकपावनो	२८
साक्षात्कृत्य हरिं	२७
साधुरेव स मन्तव्यः	८
सामान्यस्तान्त्रिको ज्ञेयो	३
सोमः शुक्रः सुराचार्यः	३०
स्तनात् स्तनान्तरं	२६
स्त्रियो वैश्यास्तथा	८
स्त्री-शूद-द्विजबन्धुनाम्	१
स्वसुखोत्पादिका भक्तिः	४०
स्मर्त्तव्यः सततं	६
ह	
हरिदासादिकमिति	३७
हरिनामाक्षरैः	२८
हरिभक्तिविहिनश्च	७
हरिमन्दिरमित्येवं	२५

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः

सत्क्रियासार-दीपिका-परिशिष्टे

संस्कार-दीपिका

गार्हस्थ्यकृत्यसंप्राप्तौ नरमात्राधिकारिता।
ब्रह्मचर्य्यादिकृत्ये तु त्रैवर्णिकमपेक्ष्यते।।१।।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमो विधिबोधितः।
स्त्री-शूद्र-द्विजबन्धूनामाश्रमः प्रतिषेधितः।।२।।

वैराग्यविद्या-निजभक्तियोग-शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।
तस्य पादाब्जमधुपं गोपालभट्टदेशिकम्।
संस्कार-दीपिकाग्रन्थकर्त्तारं प्रणमाम्यहम्।।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके साक्षाद् कृपापात्र श्रीवेंकट भट्टके पुत्र श्रीमद्गोपालभट्ट गोस्वामी महोदयने अपने प्रभुवर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आज्ञासे 'सत्क्रियासार-दीपिका' नामक पुस्तिकाकी रचनाकर गौड़ीय वैष्णवोंको प्रदान की है। इस दीपिकाके प्रथम भागमें गृहस्थ-वैष्णवोंके सभी स्मार्त्त पद्धतियों अर्थात् संस्कारादि पद्धतियोंको लिपिबद्ध किया है। द्वितीय भागमें अर्थात् परिशिष्टके 'संस्कार-दीपिका' नामक ग्रन्थमें गृहत्यागी वैष्णवोंके भिक्षुक आश्रमके सम्बन्धमें जो कुछ ज्ञातव्य है, उसको संक्षेपमें लिखा है। श्रीमन्महाप्रभुके समयसे आज तक भिक्षुक आश्रमके महापुरुषगण इसी ग्रन्थके अनुसार समस्त कार्यांका अनुष्ठान करते आ रहे हैं। आचार्यवर भट्टगोस्वामीका यह ग्रन्थ प्रकाशित होनेपर और किसी प्रकारकी अज्ञानतासे त्रुटि रहनेकी कोई सम्भावना नहीं रहेगी, ऐसी आशा करता हूँ।

गृहस्थाश्रममें मनुष्यमात्रका अधिकार है; किन्तु ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन तीनों आश्रमोंके कर्त्तव्यके विषयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और

संस्कारादिविहीनत्वात् शुचनात् शूद्र उच्यते।
स कस्माद् ब्रह्मचर्य्यादि-संस्कारादिकमर्हति।।३।। (इति)
निषेधवचनं यद्यद् पुराणे श्रूयते स्फुटम्।
अवैष्णवपरं तत्तद्विज्ञेयं तत्त्ववादिभिः।।४।।

वैश्य—इन तीन वर्णोंकी अपेक्षा रहती है अर्थात् उक्त तीन आश्रमोमें तीन वर्णोंका ही अधिकार है ।।१।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनका आश्रम अधिकार शास्त्र विहित है। स्त्री, शूद्र और द्विजबन्धु अर्थात् पतित ब्राह्मणोंका आश्रम अधिकार शास्त्रोंमें निषिद्ध है ।।२।।

शूद्र संस्कारादि-रहित होता है तथा ज्ञानके अभावमें सर्वदा शोकके वशीभूत रहता है, इसलिए उसे शूद्र कहा जाता है। वैसा शूद्र किस प्रकारसे ब्रह्मचर्यादिमें तथा संस्कारादिमें अधिकार पानेके लिए योग्य हो सकता है ? ।।३।। (१ से ३ श्लोक पर्यन्त पूर्व पक्ष है)।

(उक्त पूर्वपक्षके उत्तरमें कहा जा रहा है)—शूद्रके आश्रमाधिकारादिके सम्बन्धमें जो निषेध-वाक्य पुराणादि शास्त्रोंमें देखे-सुने जाते हैं शास्त्रतात्पर्यविचारपरायण तत्त्ववादीगण उन सबको स्पष्ट रूपसे ही अवैष्णवोंके लिए समझेंगे। अर्थात् ये सारे निषेधवाक्य अवैष्णव शूद्रोंके सम्बन्धमें ही कहे गये हैं, ऐसा समझना चाहिए। शूद्र कुलमें उत्पन्न पुरुष या स्त्री यदि किसी सौभाग्यसे शुद्ध अनन्य भक्ति प्राप्त हो, तो उसके सम्बन्धमें ये निषेध-वाक्य समूह प्रयोज्य नहीं है। शूद्र स्वभावतः मूर्ख, अतत्त्वज्ञ एवं शोकाविष्ट होते हैं। यदि कोई किसी सौभाग्यसे यथार्थ साधुसंगके प्रभावसे ब्रह्म-धर्मस्वभाव लाभ करता है, तब वह शूद्र नहीं है। यही सिद्धान्त पुराणादि शास्त्रोंके 'न शूद्रा भगवद्भक्ता' इत्यादि हजारों-हजारों वचनों तथा सत्यकाम-जावालि आदि वैदिक आख्यानोंके द्वारा स्थिरीकृत हुआ है (१) । सत्क्रियासार-दीपिकामें गृहस्थ आश्रमसे संन्यास

---

(१) इस विषयमें विस्तृत विचार 'गौड़ीय कण्ठहार' ग्रन्थके १४वें रत्नके अन्तर्गत 'वर्णधर्मतत्त्वमें' द्रष्टव्य है।

वैष्णवस्तु द्विधा प्रोक्तः,—सामान्यः, साम्प्रदायिकः।
सामान्यस्तांत्रिको ज्ञेयो, वैदिकः साम्प्रदायिकः।।५।।
सम्प्रदायी द्विभेदः स्यात्—गृहि-न्यासि-प्रभेदतः।
तापादि-पञ्चसंस्कारग्रहणाद् गृही संज्ञितः।
तापादि-दशसंस्कारसम्पन्नो न्यासी सम्मतः।।६।।

तक जो उत्तरोत्तर उन्नत क्रम दिखलाया गया है, उसमें केवल अनन्य भक्तोंका ही संन्यास ग्रहणमें सम्पूर्ण अधिकार प्रदर्शित हुआ है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या अन्त्यज कुलमें उत्पन्न कोई भी पुरुष संन्यास धर्म ग्रहणकी योग्यता प्राप्त होनेपर वह गृह त्यागकर सकता है। उक्त योग्यता प्राप्त होने तक सभीके लिए गृहस्थाश्रममें वैष्णव रहना ही कर्त्तव्य है।।४।।

इस संसारमें वैष्णव दो प्रकारके हैं—'सामान्य' और 'साम्प्रदायिक'। 'सामान्य'—वैष्णव उत्तमगुरु अर्थात् सद्गुरुके अभावमें 'तान्त्रिकके' रूपमें परिचित होता है। 'साम्प्रदायिक'-वैष्णवगण सद्गुरु-परम्पराका आश्रयकर आचार्यके बलसे 'वैदिक' होते हैं। अर्थात् वे सात्त्वत-तन्त्रके मतानुसार श्रीराधाकृष्णकी उपासना करनेपर भी वैदिकतत्त्वके ज्ञानके बलसे वैदिक कहलाते हैं।।५।।

सत्सम्प्रदायी वैष्णव गृही और संन्यासी भेदसे दो प्रकारके होते हैं। जो दैववर्णाश्रममें तापादि पञ्चसंस्कारोंके माध्यमसे दीक्षित होकर अनन्य कृष्णोपासक होते हैं, वे गृही हैं और जो लोग दैव-वर्णाश्रममें तापादि दस संस्कारोंसे सम्पन्न होकर अनन्य कृष्णोपासक चतुर्थाश्रमी होते हैं, वे संन्यासी कहलाते हैं।।६।।

संन्यासी भी प्रथमतः दो प्रकारके होते हैं—ब्रह्म-संन्यासी और विष्णु-संन्यासी। मायावाद ग्रहणकर निर्विशेष-ब्रह्मज्ञान परायण दशनामी संन्यासीगण-ब्रह्म-संन्यासी हैं। भक्तिमार्गका अवलम्बनकर सदासर्वदा विष्णु सेवामें परायण रहनेवाले संन्यासीगण—वैष्णवसंन्यासी या विष्णु संन्यासी कहलाते हैं।।७।।

सन्न्यासी च द्विधैवादौ-ब्रह्म-विष्णु-पुरःसरः।
ब्रह्मसन्न्यासी ब्रह्मज्ञो दशनामा (+) प्रसिध्यति।
वैष्णवो भक्तिमान्न्यासी सदा विष्णुपरायणः।।७।।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनूः
वैष्णवोऽहं गुरुरहमनन्यो मत्परायणः।
त्यक्तवर्णाश्रमोऽनन्यस्त्यक्तस्तद्धर्म एव सः।।८।। •

भगवान्ने कहा,—"ब्राह्मण विद्यासे युक्त हो अथवा विद्यासे विहीन ही हो, वे मेरे 'देह' स्वरूप हैं; अनन्य मत्परायण वैष्णव-गुरु—मैं हूँ, अर्थात् अनन्य रूपसे मेरे परायण वैष्णव-गुरु मेरे आत्मा स्वरूप हैं और जिन्होंने मेरे लिए ही वर्णाश्रम और वर्णाश्रमधर्मका त्यागकर दिया है, वे अनन्य हैं।"

यहाँ ब्राह्मण और वैष्णवोंका प्रभेद जान लेना आवश्यक है। अविद्याके कारण ही जीवोंका यह संसार है, विद्याके द्वारा ही जीवोंकी संसार मुक्ति है। संसारी ब्राह्मण वेद ज्ञानके द्वारा अलंकृत होकर संसारी जगतमें गुरुके रूपमें सम्मानित होता है। संन्यास ग्रहण करनेपर भी उसमें वर्णका अभिमान कुछ-कुछ अवशिष्ट रहता है; अतः वह विशुद्ध आत्म-स्वरूपमें अवस्थित रहनेके लिए समर्थ नहीं है। इसीलिए ब्राह्मण भगवान्के शरीरके रूपमें ग्राह्य होनेपर भी अधिकांश स्थानमें वह वैष्णव नहीं हो पाता। किन्तु अनन्य भगवत्परायण भक्त जिस किसी भी वर्णमें उत्पन्न होनेपर भी सभी जीवोंका गुरु एवं भगवान्का आत्मस्वरूप है। वैसे भगवद्भक्त

(+) तीर्थाश्रम-वनारण्यगिरि-पर्व्वत-सागराः।
सरस्वती भारती च पुरी नामानि वै दश।।

• आदि पुराणमें यथा,—अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः। भगवद्भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्व्वदा।। अर्ज्जुनके प्रति श्रीकृष्णका वाक्य,—जगतां गुरवो भक्ता भक्तानां गुरवो वयम्। सर्व्वत्र गुरवो भक्ता वयञ्च गुरवो यथा।।

अत्र ब्राह्मणमात्रस्य शरीरत्वेन निर्देशात् गुरुवैष्णवयोस्त्यक्त-वर्णाश्रमयोरुदासीनसंन्यासी-परमहंसावधूतयोरात्मस्वरूपत्वेन निर्देशो महत्त्वमर्य्यादया स्वयं भगवतैव कृत इत्यतो गृहि-वैष्णवादप्यनयोर्वर्णचिह्णधर्म्मत्यागेन, सन्न्यासगतचिह्णादि-त्यागेनावधूतपरमहंसस्य च महन्माहात्म्यं सूचितम्।।६।।

वर्णाश्रम-धर्मको अर्थात् समस्त मायिक अभिमानको भगवान्के लिए ही सर्वतोभावेन परित्यागकर चुके होते हैं। ब्राह्मणताके साथ सद्धर्मका संयोग होनेपर ब्राह्मणकी श्रेष्ठता या उच्चता सिद्ध होती है और ब्राह्मणत्वके अभिमानको छोड़कर सद्धर्म ग्रहण करनेसे वैष्णवता प्राप्त होती है। इसलिए सभी वर्णोंसे पारमार्थिक ब्राह्मणता या वैष्णवता प्राप्त की जा सकती है।।८।।

यहाँ पर ब्राह्मण-मात्रका भगवान्के शरीरके रूपमें निर्देश रहनेके कारण स्वयं भगवान्ने ही वर्णाश्रम धर्मका परित्याग किये हुए उदासीन संन्यासी और परमहंस अवधूत गुरु-वैष्णवोंके महत्वकी मर्यादा प्रदानपूर्वक उनको अपना आत्मस्वरूप बतलाया है; इसलिए वर्णके चिह्नको परित्याग करनेके कारण अवधूत परमहंसकी परम महत्ता सूचित हुई।।६।।

सत्क्रियासार-दीपिकामें कहे गये लक्षणोंसे युक्त वैष्णव-ब्राह्मणादि मानव जातिमें श्रेष्ठ हैं। उसमें वैष्णव-ब्राह्मण भगवान्के शरीर विशेष हैं— यह निश्चित है। शरीर कहनेसे बाह्य सम्मान समझना होगा। जो गृहस्थ-वैष्णव अधिकारी होकर वर्णचिह्न त्यागपूर्वक संन्यासी होंगे, वे वर्णी ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अनन्त गुण श्रेष्ठ हैं और जो संन्यास धर्मका आचरण करते-करते अधिकार लाभकर संन्यास-चिह्नको भी परित्याग कर परमहंस-अवधूत होंगे, वे भगवान्को और भी अधिक प्रिय होंगे, ऐसा समझना चाहिए। समस्त वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, साधारण विप्रसे विद्वान वैष्णव-ब्राह्मण अधिकतर श्रेष्ठ है, प्राप्त अधिकार संन्यासी गृही वैष्णव-ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है और परमहंस अवधूत सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं। कृष्ण-भक्तिके तारतम्यसे ही श्रेष्ठताका तारतम्य समझना चाहिए।

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्।।१०।।
अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शङ्खचक्रादिधारिणः।
संप्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इव संवभुः।।११।।
तपः श्रुतिश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम्।।१२।।

जिस प्रकारसे काँसा रासायनिक प्रक्रिया द्वारा (किसी रसके संयोगसे) सोना बन जाता है, उसी प्रकार (सद्गुरुसे पाञ्चरात्रिकी) दीक्षा विधानके द्वारा (किसी भी वर्णका) नरमात्रका विप्रत्व साधित होता है।।१०।।

उनके (उस भक्त राजाके) राज्यमें अन्त्यजगण शंख, चक्र, चिह्नादि धारणपूर्वक वैष्णवी दीक्षा प्राप्त होकर दीक्षित ब्राह्मणोंकी भाँति सुशोभित हुए थे।।११।।

इस पुराण वाक्यसे यह प्रमाणित होता है कि किसी भी वर्णमें उत्पन्न अथवा अन्त्यज व्यक्ति भी ब्रह्मस्वभाव लाभकर वैष्णव-सद्गुरुके निकट पंचसंस्कारोंके द्वारा दीक्षित होने पर संन्यास ग्रहण करनेमें दीक्षित ब्राह्मणोंके सहित समान अधिकार लाभ करते हैं।

तपस्या, श्रुति अर्थात् वेदज्ञान एवं योनि अर्थात् ब्राह्मण कुलमें जन्म—ये तीन ब्राह्मणत्वके साधारण कारण हैं। अर्थात् उक्त तीन लक्षणोंसे युक्त व्यक्ति ही साधारणतः ब्राह्मण है।।१२।।

यह साधारण ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है। वही ब्राह्मण वैष्णवी दीक्षा प्राप्त होनेपर द्विजत्व लाभ करता है। वैसे द्विजमें यदि वैराग्य धर्मका उदय हो, तो वह संन्यास धर्मका अधिकारी होता है। ब्राह्मण कुलमें जन्म नहीं होनेपर भी जो सौभाग्यसे ब्राह्मणत्व लाभ करते हैं, वे ही परमार्थ विचारसे ब्राह्मण हैं। महाभारतके वनपर्वमें तथा श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धमें, मनु स्मृति, जावालोपनिषद् और वज्रसूचिकोपनिषद्के वचनोंपर विचार करनेपर यह संपूर्णरूपसे प्रमाणित होगा। विशेषतः कलिकालमें शुद्ध योनि लक्षणकी संभावना नहीं है। इसलिए ब्राह्मणत्वके निरूपणमें तप और श्रुतिज्ञानको प्रधान लक्षण स्वीकार नहीं किये जाने

न शूद्रा भगवद्भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमाः।
सर्व्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्द्दने।।१३।।
चण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः।
हरिभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधमः।।१४।। +

पर वह ब्राह्मणत्व शास्त्र सम्मत नहीं है। इसलिए शूद्र कुलमें पैदा होनेवाला व्यक्ति निष्कपट और उत्तम भगवद्भक्ति लाभ करनेपर भागवतोत्तम हो सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी वर्णोंमें जो लोग भगवद्भक्त नहीं हैं, वे सभी शूद्र हैं।।१३।।

हरिभक्तिसे युक्त चाण्डाल व्यक्ति भी श्रेष्ठ मुनि है, किन्तु ब्राह्मण कुलमें पैदा होनेपर भी हरिभक्ति विहीन होनेपर वह चाण्डालसे भी अधम होता है।।१४।।

यहाँ पूर्वपक्ष उठनेकी सम्भावना है,—केवल जन्म आदिके द्वारा ही ब्राह्मणादि निरूपण तथा संन्यासादिका अधिकार विचार करनेकी प्रथा बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। अन्यथा सद्वंशमें जन्म लाभ करनेके कारण जो सदाचार वंशानुक्रमसे प्राप्त होते हैं अथवा जिनको लाभ करनेकी सम्भावना रहती है, अकस्मात् बने ब्राह्मण और संन्यासी व्यक्तिमें वैसे सदाचारकी सम्भावना कैसे हो सकती है ? इसके उत्तरमें स्वयं भगवान्‌ने कहा है—सर्वत्र ही यथार्थ साधुकी महिमा अधिक बतलायी गयी है; वंशगत सदाचार लाभ करनेपर भी यदि हृदयमें भगवद्भक्तिका लेश नहीं रहे तो उसका फल ही क्या है ? भगवद्भक्ति ही जीवोंके साधुत्वका एकमात्र लक्षण है। जो लोग अनन्य भगवद्भक्ति परायण हैं, वे ही साधु हैं। सदाचारकी शिक्षा लाभ करनेपर भी बहुतसे व्यक्ति कपटतापूर्वक ऊपरसे भक्ति दिखलाकर भी भक्ति-शून्य रह सकते हैं। इसलिए समस्त सदाचारके रहनेपर भी यदि किसी व्यक्तिका हृदय भगवद्भक्तिसे शून्य रहे तो, उसे किसी भी प्रकारसे साधु नहीं कहा जा सकता।

दूसरी ओर असद्वंशमें जन्म ग्रहण करनेके कारण अत्यन्त दुराचारी

+ "विप्राद्द्विषड्गुणयुतात् ...... भूरिमानः"।। (भा. ७/६/१०)

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः।।१५।।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
(स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्)।।१६।। •
शूद्रजाति-विदुरस्याश्रमान्तरं हि दृश्यते।।१७।।
अहोवत श्वपचोऽत गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्य्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते।।१८।।

व्यक्ति भी (सद्वंशसुलभ सामाजिक और शारीरिक आचार-विषयमें अत्यन्त हीन व्यक्ति भी) यदि अनन्य चित्त होकर मेरा भजन करता है, तो उसे साधु ही समझना चाहिए। क्योंकि—वह सर्वतोभावेन व्यवसित अर्थात् सुविचारित और सुनिश्चित सिद्धान्तमें प्रतिष्ठित हो गया है।।१५।।

जो लोग अनन्य भक्तिके द्वारा सर्वदा भगवद्दास्यमें नियुक्त हैं, उनमें किसी प्रकार स्मार्त्त दृष्टिसे असदाचार रहनेपर भी वह भक्तिहीन कपट सदाचारीकी अपेक्षा अनन्त गुण श्रेष्ठ और साधु है। उसका व्यवसाय सर्व प्रकारसे सुन्दर है—ऐसा समझना चाहिए।

इसलिए भगवान्ने कहा है,—हे अर्जुन ! जो पाप जातिके लोग (स्त्री, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज) भी यदि अनन्य भावसे मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं, तो वे परम गतिको प्राप्त होते हैं।।१६।।

शूद्र कुलमें उत्पन्न भक्त विदुरकी भी गृहास्थाश्रमसे अवधूत आश्रमकी प्राप्ति देखी जाती है।।१७।।

अहो ! जिस चाण्डालकी जिह्वाके अग्रभागमें आपकी प्रीतिके लिए ही आपका नाम निरन्तर विराजमान रहता है, वह इसी कारणसे अत्यन्त श्रेष्ठ है (ब्राह्मणोंसे भी अधिक श्रेष्ठ है)। जो लोग आपका नाम कीर्त्तन

• भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।। (भा.११/१४/२१)

स्मर्त्तव्य सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्व्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः।।१९।।

करते हैं, वे सभी आर्य अनुष्ठान अर्थात् सभी प्रकारकी तपस्या, सभी यज्ञ, सभी तीर्थोंमें स्नान, सम्पूर्ण वेदाध्ययन आदि पहले ही समाप्त कर चुके हैं।।१८।।

सब समय श्रीविष्णुका स्मरण करें, कभी भी श्रीविष्णुका विस्मरण न करें—यही शास्त्रोंके दो मुख्य विधि और निषेध हैं। शास्त्रोंके अन्यान्य सारे विधि-निषेध इन्हीं दोनों मुख्य विधि-निषेधके किंकर हैं।।१९।।

शास्त्रोंके अर्थ दो प्रकारके होते हैं—एक बाह्य और दूसरा निगूढ़। जो निगूढ़ तात्पर्य ग्रहण करनेमें समर्थ हैं, वे सारग्राही होते हैं; किन्तु जो लोग केवल वेद शास्त्रोंके ऊपरी अर्थ लेनेमें व्यस्त रहते हैं; वे भारवाही कहलाते हैं। कृष्ण-भक्ति ही समस्त वेदोंका निगूढ़ तात्पर्य है। वर्णाश्रम आदि समस्त अर्थ ही बाह्य है। जगतमें भारवाही लोग ही अधिक हैं। इसलिए साधारण लोगोंके निकट बाह्य अर्थ ही प्रबल है। इसके अतिरिक्त उनकी कोई गति नहीं है। निष्ठाके सहित बाहरी अर्थोंका अनुसरण करनेसे क्रमशः सारग्राही होनेकी योग्यता उदित होती है। इसलिए भारवाही लोगोंके लिए बाह्यार्थ प्राधान्य आश्रयपूर्वक जिन सब दान, व्रत, होम आदि कार्योंकी व्यवस्था दी गयी है, वे सारी व्यवस्थाएँ केवल तत्तत् अधिकारीके लिए आवश्यक एवं आदरणीय हैं। तथापि सारग्राही-प्रवृत्तिके उदय होनेके साथ-ही-साथ उन कार्योंके प्रति स्वभावतः आदर कम हो जाता है। भारवाही लोगोंके लिए धर्म-शास्त्रोंमें जो विधि और निषेधकी व्यवस्था देखी जाती है, उसका मूल तात्पर्य एकमात्र कृष्ण भक्तिसे है। उसका गूढ़ तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णकी स्मृति निरन्तर बनी रहे तथा कृष्णकी विस्मृति कभी भी न हो। सारग्राही व्यक्ति इसी निगूढ़ तात्पर्यको सब समय स्मरण रखेंगे। भारवाही लोगोंके द्वारा उत्तेजित किये जाने पर भी वे कभी भी कृष्णको न भूलें। इसलिए जिस किसी भी वर्णमें जन्म क्यों न हो, यदि किसी सौभाग्यसे किसी व्यक्तिके हृदयमें सारग्राही-प्रवृत्तिके

सर्व्वत्रास्खसलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ।
अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ।।२०।।

अतएव श्रीभगवद्दीक्षादिना स्वरूपतो द्विजत्वादिसम्भवात् गेहादौ वैराग्येण विष्णुसन्न्यासाच्युतगोत्रादिकं सिद्धमेव। तत्तच्चिह्नत्यागेनावधूतपरमहंसादित्वमपि सिद्धमित्यविरुद्धम्। एवम्प्रकारेण श्रीहरिभक्तिविलासकृद्भिः श्रीशालग्रामसेवनादौ दत्ताधिकाराणां मध्ये स्त्रीणामपि कौपीनं विना सम्प्रदायि वैष्णव-करणसुविज्ञेन गुरुणादत्त-बहिर्व्वासवद्-भेकाङ्गभूतचीरखण्ड-युग्मवसनादिधारणेन ब्रह्मचर्य्याद्याश्रमादिकमप्यविरोधसिद्ध-मिति ।।२१।।

उदय होनेपर कृष्ण-भक्ति उदित होती है; उस समय उसमें शास्त्र तत्त्वोंकी विद्वत् प्रतीति उदित हो गयी है—ऐसा समझना चाहिए। उस समय विद्वत्ब्राह्मणता, विद्वत्संन्यास, विद्वत्परमहंसता आदि अवस्थाएँ स्वयं उपस्थित हो जाती हैं।

सप्तद्वीपा वसुन्धराका एकमात्र शासनदण्ड धारण करनेवाले वैष्णव महाराजका आदेश ब्राह्मणों और अच्युतगोत्रीय पुरुषोंके अतिरिक्त दूसरे लोगोंके लिए सर्वदा अलंघित था अर्थात् दूसरा कोई भी उनके आदेशका उल्लंघन नहीं कर सकते थे।।२०।।

अतएव पाञ्चरात्रिकी दीक्षा-विधानके अनुसार सद्गुरुसे भगवन्नाम मन्त्रमें दीक्षादि ग्रहणके द्वारा स्वरूपतः विप्रत्वादिकी प्राप्ति हो जाती है, वैसे दैक्ष-ब्राह्मणका घर-बारसे वैराग्य होनेपर विष्णु-संन्यास और अच्युत-गोत्रादि सिद्ध हो जाता है। अनन्तर वह संन्यास चिह्नादि परित्यागपूर्वक अवधूत, परमहंसत्वादि अवस्थाको प्राप्त करता है। यह सब प्रकारसे सुसंगत है। इस प्रकार हरिभक्तिविलासके लेखकके द्वारा जिन लोगोंको श्रीशालग्राम—सेवादिका अधिकार दिया गया है, उनमेंसे स्त्रियोंको भी साम्प्रदायिक-वैष्णवता-सम्पादनमें सुविज्ञ गुरुदेव बहिर्वासकी भाँति भेक

यथा श्रीमहाप्रभोः पार्षदस्य श्रीदामोदरस्य शिखासूत्रत्यागेन कौपीनधारणेन च (किन्तु) योगपट्टं विना संन्यासेन स्वरूपाख्या अभूत्। यथा श्रीमाधवीवैष्णवी अपीति। एवं श्रीमन्नित्यानन्देन प्रभुणा स्वयमेव श्रीरघुनाथदासगोस्वामिने कौपीनादिकं दत्तमिति।।२२।। किञ्च,—

(वेष) के अंगीभूत दो खण्ड चीर-वस्त्र प्रदान किया करते हैं। इस प्रकार दोनों चीर-खण्डोंको धारणके द्वारा स्त्रियोंको भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रम सुसंगत सिद्ध है—इसमें तनिक भी सन्देह की बात नहीं है।।२१।।

जैसे श्रीमन्महाप्रभुके परिकर श्रीदामोदरका योगपट्टके बिना शिखासूत्र परित्याग और कौपीन धारणके द्वारा ही संन्यास ग्रहण करनेपर 'स्वरूप' नाम हुआ था। जैसे श्रीमाधवी वैष्णवीने गृहमें रहकर भी दो चीरखण्ड धारणपूर्वक संन्यास ग्रहण किया था। उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीको स्वयं कौपीन इत्यादि प्रदान किया था।।२२।।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीस्वरूप दामोदरके सम्बन्धमें ऐसा लिखा है—

संन्यास करिला शिखासूत्र त्यागरूप।
योगपट्ट ना निल, नाम हैल 'स्वरूप'।।

श्रीमाधवी देवीके सम्बन्धमें—

माहितिर भगिनी नाम-माधवी देवी।
वृद्धा तपस्विनी आर परमा वैष्णवी।।
प्रभु लेखा करे जारे राधिकार 'गण'।
जगतेर मध्ये 'पात्र'-साढ़े तीन जन।।
स्वरूप गोसाई, आर राय रामानन्द।
शिखि माहिति तीन, ताँर भगिनी अर्द्ध जन।।

इन दृष्टान्तोंसे ऐसा समझना होगा कि अधिकारी ब्राह्मण, अधिकारी स्त्रियाँ, कायस्थ आदि सभीका भिक्षुक आश्रममें अधिकार है और वे संन्यास ग्रहणकर सकते हैं।

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामुपासितां पूर्व्वतनैर्महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव।।२३।।
ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः।।२४।।
एतामिति कौपीनकन्थादिरूपाम्।
श्रीशङ्कराचार्य प्रति यथोक्तमुदयनाचार्य्येण,—
कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्द्दभैरपि दुर्व्वहाम्।
शिखा यज्ञोपवीतं ते कस्माद् भारायते वद।।२५।।

मैं अति प्राचीन महर्षियोंके द्वारा उपासित परमात्म निष्ठारूप संन्यासधर्मका अवलम्बनकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाके द्वारा इस दुरन्तपार तमः अर्थात् संसार-समुद्रसे उत्तीर्ण होऊँगा।।२३।।

ज्ञाननिष्ठ विरक्त पुरुष हों अथवा परम निरपेक्ष रहनेवाले मेरे भक्त हों, वे आश्रमचिह्न-सहित समस्त आश्रमोंको छोड़कर अविधिगोचर अर्थात् विधिके अतीत होकर विचरण करेंगे।।२४।।

श्रीमद्भागवतमें उल्लिखित श्रीकृष्णकी आज्ञा संन्यासाधिकारी व्यक्तिके लिए परमहंस-अवधूत अवस्थामें प्रवेशके लिए विधि-वाक्य है। ज्ञाननिष्ठ विरक्त व्यक्ति मायावादके विचारसे ब्रह्म-संन्यास और निरपेक्ष भगवद्भक्तगण विष्णु-संन्यास ग्रहणपूर्वक अन्तमें परमहंस-अवधूत अवस्था प्राप्त करनेके लिए साधन करेंगें। पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतके विचारसे केवल ऐकान्तिकी शुद्धाहरिभक्तिके द्वारा ही यथार्थ सुनिर्मल परमहंसपद प्राप्त किया जा सकता है।

'एतां समास्थाय' इत्यादि श्लोकमें 'एतां'—शब्दसे कौपीन-कन्थादि संन्यास चिह्नोंको समझना चाहिए। ब्रह्म-संन्यासी और विष्णु-संन्यासी दोनोंके लिए कौपीन-कन्थादि संन्यास चिह्नोंको धारण करना आवश्यक है। कर्मी उदयनाचार्यने संन्यासके प्रति स्वाभाविक द्वेषवशतः श्रीशंकराचार्यको लक्षकरके कहा था,—रे दुर्बुद्धे ! गधेकी भाँति कठिनतासे वहन किये जानेवाले कन्थाको (गुदड़ीको) तो तुम ढो रहे हो, किन्तु आश्चर्यकी बात

किञ्चेत्यादिवचनात् श्रीहरिदासादीनां विधिपूर्व्वक-ब्रह्मचर्य्यादिग्रहणं लोकसंग्रहमात्रं, वस्तुतस्तु मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैवेति, संसारतरणावधारणात् यथाकथञ्चित्प्रकारेण तत्तच्चिह्नादिधारणेन तत्तद्वर्णाश्रमाभिमानत्यागेन च श्रीभगवद्भजनमेव विधेयमिति तत्त्वं सूचितम्।।२६।।

तस्मादेव तत्तत्पुत्रप्रभृतीनां तांस्तानुद्दिश्य वैदिक-पैत्रादिकृत्यमप्यनुचितं तत्कृत्येन पुनः संसारप्राप्तिसम्भवादिति दिक्।।२७।।

है शिखा-सूत्र और यज्ञोपवीत तुम्हारे निकट भार प्रतीत हो रहा है, ऐसा क्यों, बतलाओ तो ?।।२५।।

'किञ्च' इत्यादि वाक्योंसे ऐसा प्रतिपन्न होता है कि श्रीहरिदास आदिका विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य ग्रहण करना केवल लोक-शिक्षाके लिए है। किन्तु श्रीमुकुन्दके चरणकमलोंकी सेवाके द्वारा वास्तविक ब्रह्मचर्य और संन्यास सिद्ध होता है। संसारको उत्तीर्ण करनेका संकल्प निश्चित हो जानेपर विविध प्रकारके आश्रम चिह्नों और सारे वर्णाश्रमाभिमानको त्यागकर किसी भी प्रकारसे एकमात्र भगवद्भजन करना ही कर्त्तव्य है—यही परिज्ञात हो रहा है।।२६।।

ऐकान्तिक या अनन्यरूपमें भजन करनेका नाम ही संन्यास है। तो भी लोक-संग्रहके लिए कौपीन इत्यादि धारणपूर्वक संन्यासी अभिमान परित्याग करना—उसी महत्कार्यकी दृढ़ताके लिए प्रदर्शन मात्र है। इसलिए संन्यासके बाह्य चिह्न संसार-बन्धनको छेदन करनेके लिए प्रधान उपायके रूपमें ग्रहणीय है।

इसलिए ऐसे ऐकान्तिक भगवद्भक्तोंके पुत्र आदिके द्वारा उनके उद्देश्यसे वैदिक-पितृ-श्राद्धादि कर्मानुष्ठान भी अनुचित हैं। क्योंकि उन-उन अनुष्ठानोंके द्वारा संसार-बन्धन होनेकी सम्भवना है। उक्त विचारका यही दिग्दर्शन है।।२७।।

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं +
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः।।२८।।

एवमादि श्रीमद्भागवतवाक्यैर्वैष्णवानामेवाच्युतगोत्रत्वं, परमहंसत्वञ्च विहितं, यतो वैष्णवानां भागवतप्रियत्वम्। तस्मात् पारहंस्यज्ञानत्वेन परमहंसत्वमपि तेषामेव नान्येषाम्। यतश्चतुर्व्वर्णानां मध्ये ब्राह्मणाद्येकतरोऽपि कश्चिदच्युतगोत्रोऽहमिति न ब्रूते। चत्वारः साम्प्रदायिका भेकधारिणस्तु सर्व्वेऽप्यच्युतगोत्रोऽहमिति वदन्ति (इति) लौकिक-शास्त्रीय व्यवहारनिष्पत्तौ न किञ्चिदनुपपन्नमितिस्थितम्। तस्मादेव

श्रीमद्भागवत—अमल पुराण है। ये वैष्णवोंके परम प्रिय हैं। उनमें एकमात्र विशुद्ध परमहंस ज्ञानका वर्णन किया गया है। उनमें ज्ञान-विराग-भक्तिके सहित नैष्कर्मका आविष्कार हुआ है। उन श्रीभागवतका श्रवण, पठन-पाठन और विवेचन होनेपर भक्तिके द्वारा लोक मायासे मुक्त हो सकेंगे।।२८।।

उक्त प्रकारके भगवद्वचनोंके द्वारा वैष्णवोंका ही अच्युतगोत्रत्व और परमहंसत्व स्थिर हुआ। क्योंकि वैष्णवोंमें ही श्रीमद्भागवतके प्रति प्रीति देखी जाती है। उन श्रीमद्भागवतमें कहे गये पारमहंस-ज्ञानके द्वारा वैष्णवोंको ही परमहंसत्वकी प्राप्ति होती है, दूसरोंको नहीं। क्योंकि चारों वर्णोंमें ब्राह्मणादि किसी वर्णका कोई भी व्यक्ति अपनेको अच्युत गोत्र नहीं कहता है। दूसरी ओर चारों शुद्ध भक्ति सम्प्रदायोंके भेकधारी सभी लोग अपनेको 'मैं अच्युत गोत्रका हूँ' ऐसा कहते हैं। इससे लौकिक और शास्त्रीय व्यवहार सम्पादनमें तनिक भी अयौक्तिकता नहीं होती,

---

+ गोपालपूर्वतापन्यां—भक्तिरस्य भजनम्। तदिहामुत्रोपाधिनैराश्येनाम्मस्मिन् मनःकल्पनम्। एतदेव च नैष्कर्म्यम्।

श्रीरामानुजाचार्य्यादीनां मतावलम्बिनो वैष्णवाः प्रथमं यागादि-स्थानं विधाय यान् कान् शूद्रादिबालकानपि संगृह्य क्षौरादिकं कारयित्वा, स्वयं विष्णुहोमादिकं कृत्वा, पूर्व्वाचार्य्यादीन् विधिवत् सम्पूज्य च, तान् बालकादिकान् पञ्चसंस्कारान् धारयित्वा द्विजत्वमासाद्य, पश्चात् याज्ञवल्क्यादिकृत-पद्धतिमतानुसारेण गर्भाधानाद्युप-नयनान्तान् संस्कारान् कारयित्वा, वेदमातरं सावित्रीमपि दीक्षयित्वा, पश्चाद् स्व-सम्प्रदायिमन्त्रस्य दीक्षयित्वा,—श्रीगुर्व्वादीन् श्रीशालग्रामादी-नप्यर्च्चयित्वा, पश्चात् भिक्षूपयोगि-कौपीन-बहिर्व्वास-झुलि-कन्था-संन्यासमन्त्रानपि दत्वा पुनः संन्यासिनः कुर्व्वन्तीति प्रसिद्धं सर्व्वैः दृष्टं श्रुतञ्चेति ।।२६।।

अस्माकन्तु श्रीमन्महाप्रभोरनुमतेन श्रीगोस्वामिचरणादयः (१) प्रथमतः श्रीभगवदालयादिषु गृहादिस्थानानि संशोध्य, तत्र

अतएव यही व्यवस्था है। इस विचारसे श्रीरामानुजाचार्य आदि मतावलम्बी वैष्णवगण पहले याग आदिके स्थानकी व्यवस्था करते हैं; पीछे शूद्रादि वर्णोंसे प्राप्त बालकोंका क्षौर कराकर स्वयं विष्णु-होमादि सम्पादनकर, पूर्वाचार्योंकी यथाविधि पूजाकर उन बालकोंको पञ्चसंस्कार प्रदानपूर्वक द्विजत्व विधान करते हैं। उसके पश्चात् याज्ञवल्क्य आदि द्वारा रचित पद्धतिके अनुसार गर्भाधानसे उपनयन पर्यन्त संस्कारोंको सम्पादन कराकर वेदमाता गायत्रीके मन्त्रमें दीक्षित करते हैं। उसके पश्चात् अपने-अपने साम्प्रदायिक मन्त्रमें दीक्षितकर श्रीगुरु-परम्परा और श्रीशालग्राम शिला आदिका अर्चन करते हैं। तत्पश्चात् भिक्षुक (संन्यास) के उपयोगी बर्हिवास-झोली-कन्था और संन्यास-मन्त्र प्रदानकर संन्यासी बनाते हैं। यह प्रसिद्ध प्रथा सभी देखते और सुनते हैं।।२६।।

हमारी गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायकी प्रथा यह है,—श्रीगोस्वामीवर्ग श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञासे (१) सर्वप्रथम श्रीमन्भगवन्मन्दिरादिमें गृह इत्यादिके

श्रीविष्णु होमं कृत्वा, विधिवदाचार्य्यादीन् सम्पूज्य च शूद्रादिकान् यथावत् दीक्षितांश्चक्रिरे। किम्वा (२) तत्र केवलमासनादीन् संस्थाप्य श्रीमध्वाचार्य्यादीन् सपार्षद-श्रीकृष्णचैतन्यादींश्च पञ्चोपचारैः पूजयित्वा, किम्वा (३) तत्र श्रीकृष्णचैतन्य-श्रीमन्नित्यानन्द-श्रीअद्वैत-श्रीगदाधर-श्रीवासान् पञ्चतत्त्वात्मकान् पाद्यादिभिः पञ्चोपचारैर्विधिवत् सम्पूज्य स्त्री-शूद्रादि-बालकादिकान् यान् कानपि संगृह्य क्षौर-स्नानादिकं कारयित्वा, ताप-पुण्ड्रादिकञ्च धारयित्वा श्रीहरेर्नामोपदिश्य च, पश्चाद् षड़क्षराद्यष्टादशाक्षरान्तेषु मन्त्रेषु मध्ये कमपि भगवन्मन्त्र-मुपदिश्य, तान् वैष्णवान् विधाय, तत्पूर्वकालीन वैष्णवत्व-प्राप्तान् वा, वैष्णवत्वेन द्विजत्वसिद्धेः पुनस्तांस्तान् श्रीभवदेवाद्यनुमतेन विधिना गर्भाधानाद्युपनयनान्तसंस्कारान् कारयित्वैव भिक्षूपयोगि-संन्याससंस्कारादिकं धारयन्तीति प्रथा।।३०।।

स्थानको शोधनकर वहाँ श्रीविष्णु होम और यथाविधि आचार्य-परम्पराकी पूजा सम्पन्नकर शूद्र आदि सभीको (अधिकार विचारपूर्वक) दीक्षित करते आ रहे हैं। (२) अथवा वहाँ (भगवद् गृहादिमें) आसन आदि स्थापनपूर्वक श्रीमध्व प्रभृति आचार्यगण और सपार्षद श्रीकृष्णचैतन्य आदिकी पंचोपचारसे पूजा कर, (३) अथवा वहाँ पञ्चतत्त्व-स्वरूप-श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर और श्रीवासादि पञ्च तत्त्वकी पंचोपचारसे यथा-विधान पूजाकर-स्त्री, शूद्र, बालक आदि किसी भी व्यक्तिको (अधिकार विचारकर) क्षौर, स्नान आदि तथा (शीतल) ताप और ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक आदि धारण कराकर श्रीहरिनामका उपदेश दिया करते हैं। पीछे षडाक्षर या अष्टादशाक्षर मन्त्रोंमेंसे कोई एक मन्त्र उपदेश करते हुए उनको वैष्णव बनाते हैं। वैष्णवताके द्वारा स्वयं ही द्विजत्वकी सिद्धि होती है। इसलिए उनको पहले सद्गुरुके निकट पंचसंस्कारमें दीक्षा विधानकर वैष्णवता प्राप्त व्यक्तियोंके भवदेव प्रभृतिके अनुमोदित विधानके अनुसार

तत्रादौ पूजायां आचार्य्यादीन् यथा—
श्रीकृष्ण-ब्रह्म-देवर्षि-बादरायण-संज्ञकान्।
श्रीमध्व-श्रीपद्मनाभ-श्रीमन्नृहरि-माधवान्।।
अक्षोभ्य-जयतीर्थ-श्रीज्ञानसिन्धु-दयानिधीन्।
श्रीविद्यानिधि-राजेन्द्र-जयधर्म्मान् क्रमाद्वयम्।।
पुरुषोत्तम-ब्रह्मण्य-व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः।
ततो लक्ष्मीपतिं श्रीमन्माधवेन्द्रञ्च भक्तितः।।
तच्छिष्यान् श्रीश्वराद्वैत-नित्यानन्दान् जगद्गुरुन्।
देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्च भजामहे।।
निमाञ्याद्याख्यया योऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले।
श्रीकृष्ण प्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्।।
देवं श्रीकृष्णचैतन्यं नित्यानन्दं जगद्गुरुम्।
श्रीलाद्वैतं गदाधरं श्रीवासं भक्तवर्य्यकम्।।
श्रीगुरुं पूजयित्वा च गौरांग पार्षदांस्ततः।
संस्कारान् कारयेद् वालान् यथायोग्यं समन्ततः।।३१।।

गर्भाधान आदि उपनयन संस्कारका सम्पादन सम्पन्नकर उनको भिक्षुके उपयोगी संन्यास संस्कार प्रदान करते हैं।।३०।।

पूजामें सबसे पहले आचार्य वर्गका अर्चन करना परम कर्त्तव्य है। श्रीगुरुपरम्परा यथा,—श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, नारद, व्यासदेव, मध्वाचार्य, पद्मनाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिन्धु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्म, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्य, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीईश्वर पुरीके शिष्य श्रीचैतन्यदेव जो निमाई नामसे जगतमें विख्यात हैं तथा जिन्होंने कृष्णप्रेम वितरणके द्वारा जगत्का उद्धार किया है।

भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य, जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर, भक्तश्रेष्ठ श्रीवास और श्रीगुरुदेवकी पूजाकर श्रीगौरपार्षदोंकी

तत्र तावत् प्रणवशिरस्क-तत्तन्नाम चतुर्थ्यन्तमन्त्रेणादौ गुर्व्वादीन् पूजयेत्। यथा—एतदासनम् ॐ श्रीगुरवे नमः,—इत्यादि क्रमेण षोड़शोपचारेण पूजयेत्। (ततः)—इदमासनम् ॐ श्रीकृष्णाय नमः, इदमासनम् ॐ श्रीनारायणाय ऋषये नमः, एतदासनम् ॐ श्रीब्रह्मणे नमः इत्यादि, तदनन्तरं—(इदमासनं) ॐ श्रीकृष्णचैतन्याय नम इत्यादि । (एवं) सर्व्वान् पूजयेत्।।३२।।

यथा 'स्वर्गकामोऽश्वमेधेन यजेत, कृष्ण-केशी ब्राह्मणोऽग्निना आदधीतेति' विधिवाक्यं कर्म्मकाण्डादावपेक्ष्यते, तद्वत् न्यासोऽपि विधिवाक्यमपेक्षते च,—"तद् यथेह कर्म्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवात्र पुण्यचितो लोकः क्षीयत इति परीक्ष्य लोकान्

पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर योग्य बालकका सभी संस्कार करना चाहिए।।३१।।

नामके आदिमें प्रणव और पीछे चतुर्थी विभक्ति युक्तकर उस मन्त्रमें सबसे पहले गुरुवर्गकी पूजा करें। यथा,—"एतदासनं ॐ श्रीगुरुवे नमः" इत्यादि क्रमसे षोडषोपचारसे पूजा करनी चाहिए।।३२।।

कर्मकाण्ड आदिमें जैसे शास्त्रोपदेश और विधि-वाक्योंकी आवश्यकता रहती है, संन्यासमें भी उसी प्रकार विधि-वाक्य प्रयोजनीय हैं। इसलिए श्रुतिमें संन्यासके विधि-वाक्य देखे जाते हैं—'इस संसारमें कर्मार्जित लोक जैसे क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही पुण्यार्जित लोक भी क्षीण हो जाया करते हैं; इस प्रकार कर्मफलोंके द्वारा प्राप्त लोक-समूह नश्वर हैं, ऐसा भलीभाँति विचारकर ब्राह्मण उससे निर्विन्न अर्थात् विरक्त होंगे; क्योंकि कृत अर्थात् कर्मके द्वारा, अकृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं होता'। 'जिस दिन वैराग्यका उदय हो, उसी दिन प्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण करे'। गृह इत्यादिके प्रति वैराग्य-सम्पन्न व्यक्ति गुरुके निकट प्रार्थना करे,—'हे गुरुदेव ! साम्प्रदायिक साध्य-साधनानुष्ठान तत्त्वमें विशेषरूपसे प्राज्ञ ! मैं घोर संसारमें पतित हूँ। हे करुणावरुणालय ! इस दुष्पार-समुद्रसे मेरी

कर्म्मचितान् ब्राह्मणो निर्व्वेदमायात्, नास्त्यकृतः कृतेन"; [तेन कृतेन कर्म्मणा अकृतं मोक्षो नास्तीति भाष्यम्।] "यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेदिति" च विधिः। गेहादिविरक्तिमान् गुरुं प्रार्थयेत्,—भो गुरो ! सम्प्रदायसाध्यसाधनानुष्ठानप्राज्ञ ! अस्मिन् भारते संसारान्मां त्राहि, सन्न्यासं देहीति। अतः स्वमतसम्प्रायि-सन्न्यासधर्म्मसाध्यसाधनानुष्ठानाप्राज्ञस्य सन्न्यासधर्म्मग्रहण संस्काराप्राज्ञत्वात् गृहिगुरुणा कृतः सन्न्यासो निरस्त।।३३।।

तत्र संस्कारा यथा,—

मुण्डनं प्रथमं कुर्य्यात्तीर्थस्नानं द्वितीयकम्।
तृतीय हरिमन्दिर-तिलकं भाल-शोभितम्।।
चतुर्थं चन्दनैर्गात्रे नाममुद्रादिधारणम्।
पञ्चमं कौपीनशुद्धिं, षष्ठं प्राणप्रतिष्ठकम्।।

रक्षा करें। मुझे कृपया संन्यास प्रदान करें'। इससे गृही-गुरुका संन्यास प्रदान करना निरस्त हुआ अर्थात् गृही-गुरु संन्यास प्रदानके लिए अयोग्य हैं, क्योंकि वे अपने इष्ट सम्प्रदायके संन्यास धर्मके साध्य-साधन अनुष्ठान तत्त्वमें अनभिज्ञ होते हैं तथा संन्यास-धर्म ग्रहणके संस्कारोंके सम्बन्धमें भी अज्ञ होते हैं।

दीक्षा-दानमें शास्त्रोक्त यथार्थ योग्यता रहनेपर गृही-गुरु मन्त्र दीक्षा दे सकते हैं; किन्तु जिन्होंने स्वयं ही कभी संन्यास ग्रहणकर उसका आचरण नहीं किया है, वे किस प्रकार संन्यास-दीक्षा दे सकते हैं ? संन्यास प्रदान करनेके लिए गुरुकी योग्यता विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। शिष्यकी भी योग्यता नहीं रहनेसे गुरु ऐसे शिष्यको कभी भी संन्यास प्रदान नहीं करें।।३३।।

संन्यासका संस्कार, यथा—१-मुण्डन, २-तीर्थस्नान, ३-हरिमन्दिर-तिलकादि धारण, ४-शरीरमें चन्दन आदिके द्वारा हरिनाम-मुद्रा धारण, ५-विशुद्ध कौपीन, ६-कौपीनकी प्राण-प्रतिष्ठा, ७-हरिदास आदि सूचक

सप्तमं हरिदासादि-नाममात्रप्रकल्पनम्।
अष्टमं वामकर्णेऽग्रे विष्णुमन्त्रस्य धारणम्॥
अष्टादशाक्षरस्यैव पञ्चपदादिभेदिनः।
नवमं चाच्युतगोत्रस्वीकारं सर्व्वपूजितम्॥
शालग्रामार्च्चनं भक्त्या दशमं परिकीर्त्तितम्।
एतैर्दशभिः संस्कारैर्विष्णुसन्न्यासी वैष्णवः॥
तापादिपञ्चसंस्कारैर्ज्ञातव्यो गृही वैष्णवः।
संस्कारभेद-सम्प्राप्त्या संज्ञाभेदो भवेद् द्वयोः॥३४॥

तत्र प्रथमः संस्कारः—क्षौरार्थे प्रार्थनम्

"मस्तकं मुण्डय मुण्डिन् शिखां संस्थाप्य यत्नतः।
श्रद्धा मे कृष्णचैतन्यपादाब्जे विक्रयः स्थिरः॥

नाम ग्रहण, ८-बायें कानमें पञ्चपदी अष्टदशाक्षर विष्णु मन्त्र ग्रहण, ९-सर्वजन वन्दित अच्युतगोत्र ग्रहण, १०-भक्तिपूर्वक श्रीशालग्रामका अर्चन। इन दश संस्कारोंको ग्रहण करनेवालोंको विष्णु संन्यासी वैष्णव और तापादि पञ्चसंस्कारोंको ग्रहण करनेवालोंको गृही वैष्णव समझना चाहिए। वैष्णव एक ही तत्त्व हैं, संस्कार भेदसे (उनमें गृही और संन्यासी नाम मात्रका भेद है।

यहाँ यह विशेष रूपसे द्रष्टव्य है—ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र, याग—इन पाँचों संस्कारोंका नाम पञ्चसंस्कार है। गृही व्यक्ति यदि सद्गुरुके निकट दीक्षा ग्रहण करते हैं, तब वे पञ्चसंस्कारको प्राप्त होते हैं। पञ्चसंस्कार प्राप्त व्यक्ति यदि संन्यास ग्रहण करना चाहता हो, तब संन्यास-गुरु उस व्यक्तिको पञ्चसंस्कार प्राप्त समझकर अवशिष्ट पाँच संस्कार प्रदान करेंगे। वे पाँच संस्कार हैं—१-मुण्डन, २-स्नान, ३-कौपीन ग्रहण, ४-कौपीन प्राण-प्रतिष्ठा, ५-अच्युत गोत्र स्वीकार॥३४॥

प्रथम संस्कार—मुण्डनकी प्रार्थना। संन्यासका इच्छुक व्यक्ति नाईके निकट प्रार्थना करे,—'हे नरसुन्दर ! सावधानीसे शिखा रखकर मेरा

मातृ-पितृसमाः सर्व्वे बान्धवा मे हितैषिणः।
आशीः कुरुत तत्पादे भक्तिः स्याद्भवकृन्तनी।।
श्रीचैतन्य दयासिन्धो भक्तानुग्रहकारक !
दासो भवामि, गृह्णातु, पतितं मां समुद्धर।।"
इत्युक्त्वा मुण्डनं कारयेत्।।३५।।

तततो द्वितीयः संस्कारः—तीर्थस्नानम्

ततो जलाशये गत्वा प्रथममाचम्य करन्यासमङ्गन्यासं प्राणायामञ्च कृत्वा स्नानं कुर्य्यात्। गुरुस्तु मन्त्रानुचार्य्य स्नानं कारयेत्। (क) आचमनमाह,—प्रथमं हस्तौ द्वौ प्रक्षाल्याचमनं कुर्य्यात्। (तद् यथा,)—दक्षिणहस्ते जलं संस्थाप्य 'ॐ केशवाय नमः' इत्युक्त्वा आचम्य तज्जलं त्यजेत्। 'ॐनारायणाय नमः'

मस्तक मुण्डन करें। श्रीकृष्ण चैतन्यके चरणकमलोंमें स्थिर रूपमें बिक जाऊँ—मेरी ऐसी श्रद्धा है। माता-पिता जैसे हितैषी मेरे बन्धु-बान्धव मुझे आशिष प्रदान करें कि मेरे हृदयमें श्रीकृष्णचैतन्यके श्रीचरणकमलोंमें भवखण्डिनी भक्ति उदित हो। हे भक्तानुग्रहकारी ! दयासिन्धो ! श्रीचैतन्यमहाप्रभो ! मैं आपका दास हूँ, आप मुझे ग्रहण करें। इस पतितका उद्धार करें।' इस प्रकार प्रार्थनाकर मुण्डन करावें।।३५।।

तत्पश्चात् द्वितीय संस्कार—तीर्थ स्नान। मुण्डनके पश्चात् जलाशयपर जाकर आचमन, करन्यास, अंगन्यास और प्राणायाम कर स्नान करें। आचार्य मन्त्रपाठ कराकर स्नान करावें। (क) आचमन—पहले दोनों हाथोंको धोकर आचमन करें। यथा,—दाहिने हाथमें जल लेकर 'ॐ केशवाय नमः' मन्त्रसे कुछ जल पानकर अवशेषको छोड़ दे; पुनः 'ॐ नारायणाय नमः' मन्त्रसे उसी प्रकारसे करें। पुनः 'ॐ माधवाय नमः' मन्त्रसे उसी प्रकार करें। तत्पश्चात् 'ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः' उच्चारणकर दोनों हाथोंका प्रक्षालन करें; 'ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः' मन्त्रसे मुखका मार्जन करें; 'ॐ वामनाय नमः, ॐ

इत्युक्त्वा आचम्य तद्वत् त्यजेत्। एवं 'ॐ माधवाय नमः' इत्युक्त्वा आचम्य त्यजेदेव। ततः 'ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः' इति द्वाभ्यां द्वौ हस्तौ प्रक्षाल्य, ततः 'ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः' इति द्वाभ्यां मुखं संमृज्य, ततः 'ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः' इति द्वाभ्यां अधरौ संमृज्य, ततः 'ॐ हृषिकेशाय नमः' इत्यनेन हस्तौ पुनः प्रक्षाल्य, ततः ॐ 'पद्मनाभाय नमः' इत्यनेन पादद्वयं प्रक्षाल्य, ततः 'ॐ दामोदराय नमः' इत्यनेन मस्तकं संप्रोक्ष्य, ततः 'ॐ वासुदेवाय नमः' इत्यनेन (पञ्चाङ्गुल्यग्रेण) मुखं संस्पृश्य, ततः 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः' इति द्वाभ्यां (तर्ज्जन्यङ्गुष्ठाग्रेण) दक्षिणक्रमेण नासिके संस्पृश्य, ततः ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' इति द्वाभ्यां (अनामिकाङ्गुष्ठाग्रेण) दक्षिणक्रमेण नेत्रे संस्पृश्य, ततः ' ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नृसिंहाय नमः', इति द्वाभ्यां (कनिष्ठाङ्गुष्ठेण) दक्षिणक्रमेण कर्णौ संस्पृश्य, ततः 'ॐ अच्युताय

श्रीधराय नमः' मन्त्रसे दोनों होठोंका मार्जन करें; 'ॐ हृषिकेशाय नमः' उच्चारणकर पुनः दोनों हाथोंका प्रक्षालन करें; 'ॐ पद्मनाभाय नमः' उच्चारणकर दोनों चरणोंका प्रक्षालन करें; 'ॐ दामोदराय नमः' मन्त्रसे जल मस्तकपर छिड़कें; 'ॐ वासुदेवाय नमः' मन्त्रसे मुख स्पर्श करें; 'ॐ संकर्षणाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः' मन्त्रका उच्चारणकर (दाहिने क्रमसे) दोनों नासिका स्पर्श करें; 'ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' मन्त्रका उच्चारणकर (दक्षिण क्रमसे) दोनों नेत्रोंका स्पर्श करें; 'ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नृसिंहाय नमः' मन्त्रसे (पहले दाहिने पीछे बायें) दोनों कानोंका स्पर्श करें; 'ॐ अच्युताय नमः' मन्त्रसे नाभि स्पर्श करें; 'ॐ जनार्दनाय नमः' मन्त्रसे हृदयका स्पर्श करें; 'ॐ उपेन्द्राय नमः' मन्त्रसे मस्तकका स्पर्श; 'ॐ हरये नमः' मन्त्रसे दक्षिण बाहुका स्पर्श करें; 'ॐ

नमः' इत्यनेन (करतलेन) नाभिं संस्पृश्य, ततः 'ॐ जनार्दनाय नमः' इत्यनेन (पञ्चाङ्गुल्यग्रेण) हृदयं संस्पृश्य, ततः 'ॐ उपेन्द्राय नमः' इत्यनेन (पञ्चाङ्गुल्यग्रेण) शिरः संस्पृश्य, ततः 'ॐ हरये नमः' इत्यनेन दक्षिणबाहुं संस्पृश्य, ततः 'ॐ कृष्णाय नमः' इत्यनेन वामबाहुं संस्पृश्येत्।

ततः (ख) करन्यासं कुर्य्यात्, यथा—क्लीं कृष्णाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, गोविन्दाय तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, गोपीजन मध्यमाभ्यां वषट्, वल्लभाय अनामिकाभ्यां हुं, स्वाहा कनिष्ठाभ्यां फट्।

ततः (ग) (षड्) अङ्गन्यासं कुर्य्यात्, यथा—क्लीं हृदयाय नमः, कृष्णाय शिरसे स्वाहा, गोविन्दाय शिखायै वषट्, गोपीजन कवचाय हुं, वल्लभाय नेत्राय वषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।

अथवा, प्रकारान्तरे करन्यासाङ्गन्यासावाह। करन्यासो यथा,—क्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, क्लीं तर्ज्जनीभ्यां नमः, क्लैं मध्यमाभ्यां नमः, क्लों अनामिकाभ्यां नमः, क्लौं कनिष्ठाभ्यां नमः, क्लं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।। अङ्गन्यासो यथा,—क्लीं उदराय नमः, क्लीं हृदयाय नमः, क्लुं कण्ठकूपाय नमः, क्लैं शिरसे स्वाहा, क्लौं शिखायै वषट्, क्लौं कवचाय हुं, क्लं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।।

कृष्णाय नमः' मन्त्रसे वाम बाहुका स्पर्श करें।

(ख) तत्पश्चात् मूलमें कहे गये क्रमके अनुसार मन्त्रोंसे करन्यास करें। (ग) अनन्तर मूलमें कहे गये क्रमानुसार मन्त्रोंसे षड़ंगन्यास करें। अथवा मूलमें कहे गये प्रकारान्तर विधिसे करन्यास करें। (घ) इसके पश्चात् मूलमें कहे गये क्रमसे कामबीजके द्वारा प्राणायाम करें। पुनः हृदयमें बत्तीस बीजसंख्यामें पूरक, चौसठ संख्यामें कुम्भक तथा सोलह

ततः (घ) प्राणायामः। कामबीजेन प्रणवेन कुर्य्यात्। —ॐ कामबीजस्य प्रजापति ऋषिः, देवी गायत्री छन्दः, श्रीकृष्णचैतन्यो देवता, क-कारो बीजं, ल-कारः कीलकं, ई-कारः शक्तिः, प्राणायामे विनियोगः, [एवम् ऋष्यादिकं स्मृत्वा बीजमभ्यस्येत्।] अस्य न्यासः—ॐ कामबीजाय नमः, शिरसि प्रजापत्यृषये नमः, शिखायै देवी गायत्रीच्छन्दसे नमः, आस्ये श्रीकृष्णचैतन्य देवतायै नमः, हृदि क-कारबीजात्मने नमः, दक्षिणकुचे ल-कारकीलकाय नमः, वामकुचे ई-कारशक्तये नमः, हृदि प्राणायामविनियोगाय नमः। पुनः हृदि पूरको द्वात्रिंशत् कुम्भकश्चतुःषष्टिः, रेचकः षोड़शः।।३६।।

ततस्तृतीयः संस्कारः—हरिमन्दिरतिलकं

ततो द्वादशभिः कुर्य्यान्नामभिः केशवादिभिः।
द्वादशाङ्गेषु विधिवदूर्ध्वपुण्ड्राणि वैष्णवः।।

द्वादशतिलकविधिः पाद्मोत्तरखण्डे, यथा—

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवन्तु गोविन्दं कण्ठकूपके।।
विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके।।
श्रीधरं वामबाहौ तु हृषिकेशन्तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभञ्च कट्यां दामोदरं न्यसेत्।।
तत्प्रक्षालनतोयन्तु वासुदेवाय मूर्द्धनि।।

संख्यामें रेचक करें।।३६।।

तृतीय संस्कार—अंगोंमे हरिमन्दिर-स्वरूप तिलक करें। वैष्णव लोग केशवादि द्वादश विष्णु नामके द्वारा ललाट आदि द्वादश अंगोंमें विधिके अनुसार ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। पाद्मोत्तर खण्डमें द्वादश तिलककी

किञ्च—ऊर्ध्वपुण्ड्रं ललाटे तु सर्वेषां प्रथमं स्मृतम्।
ललाटादि क्रमेणैव धारणन्तु विधीयते।।
आरभ्य नासिकामूलं ललाटान्तं लिखेन्मृदा।
नासिकायास्त्रयो भागा नासामूलं प्रचक्षते।।
(समारभ्य भ्रुवोर्मूलं अन्तरालं प्रकल्पयेत्)।

तथाच—आ-कुर्य्यादूर्ध्वरेखे द्वे कुर्य्यात् केशसमन्तिके।
तमालमूलवच्छिरो रेखाद्वयसुयोजितम्।।
वामपार्श्वे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु सदाशिवः।
मध्ये विष्णुं विजानीयात् तस्मान्मध्यं न लेपयेत्।।
नासादिकेशपर्य्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम्।
मध्ये छिद्रसमायुक्तं तद्विद्याद्धरिमन्दिरम्।।
हरिमन्दिरमित्येवं मन्यते तत्त्वविज्जनः।
पुण्ड्रं स्यादूर्ध्वपुण्ड्रं, तच्छास्त्रे बहुविधं स्मृतम्।।
अश्वत्थपत्रसङ्काशं, वेणुपत्राकृति तथा।
पद्मकुट्मलसन्निभं, मोहनं तृतीय स्मृतम्।।

विधि—'ॐ ललाटे केशवाय नमः' इत्यादि। और भी कहा गया है,—सबके लिए ललाटमें ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना परम विधि है। नासिकाके मूलसे आरम्भकर ललाट तक मृत्तिका (गोपी चन्दन) द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्रकी रचना करें। नासिकाके तीन भागको नासामूल कहते हैं। (भ्रूके मूलसे अन्तराल अंकन करें)। दोनों रेखाओंको सुनियोजित (जोड़कर) तमाल मूलकी भाँति शिर करें। ऊर्ध्वपुण्ड्रकी बायीं ओर ब्रह्मा और दाहिनी ओर सदाशिव एवं बीचमें श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं; इसलिए मध्यभागको लेपन नहीं करना चाहिए। नासिकाके मूलसे केश तक दीर्घ बीचमें छिद्र युक्त, बराबर ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'हरिमन्दिर' समझना चाहिए। तत्त्वविद् व्यक्ति इसको हरिमन्दिर ही कहते हैं। 'पुण्ड्र' शब्दसे ऊर्ध्वपुण्ड्र समझा जाता है, शास्त्रोंमें इसके बहुत प्रकार बतलाये गये हैं। जैसै—पीपलके पत्तेके

मोहनमिति कैश्चिदतिशोभनमभिप्रेतं, कैश्चिन्मोहकारयित्वाद्विरुद्धञ्चेति, दीपशिखाकारतया चान्याङ्गे पुण्ड्रमङ्कितम्।

अस्य च विष्णुपञ्जरन्यासे प्रणवपूर्व्वकं सविन्द्वकारादिद्वादशवर्णैः द्वादशादित्यैश्च + सहितानि केशवादिद्वादशनामानि न्यसेत्। यथा—(१) ॐ अं धातृसहिताय केशवाय नमः ललाटे, (२) ॐ आं अर्य्यमासहिताय नारायणाय नमः उदरे, (३) ॐ इं मित्रसहिताय माधवाय नमः वक्षसि, (४) ॐ ईं वरुणसहिताय गोविन्दाय नमः कण्ठकूपके, (५) ॐ उं अंशुसहिताय विष्णवे नमः दक्षिणकुक्षौ, (६) ॐ ऊं भगसहिताय मधुसूदनाय नमः दक्षिणबाहौ, (७) ॐ ऋं विवस्वत्सहिताय त्रिविक्रमाय नमः दक्षिणकन्धरे, (८) ॐ ॠं इन्द्रसहिताय वामनाय नमः वामपार्श्वके, (९) ॐ ऌं पूषसहिताय श्रीधराय नमः वामबाहौ, (१०) ॐ ॡं पर्ज्जन्यसहिताय हृषिकेशाय नमः वामकन्धरे, (११) ॐ एं त्वष्ट्रसहिताय पद्मनाभाय नमः पृष्ठे, (१२) ॐ ऐं विष्णुसहिताय दामोदराय नमः कट्याम्।। इति।

आकारवाला, बाँसके पत्तेके आकारवाला तथा पद्मकुट्मलके आकारवाला। तृतीय प्रकारके ऊर्ध्द्वपुण्ड्रको 'मोहन' कहते हैं। 'मोहन' पुण्ड्र अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण कोई-कोई उसे विरुद्ध भी समझते हैं। अन्यान्य अंगोंमें दीप शिखाके आकारका पुण्ड्र अंकित करना चाहिए।

हरिमन्दिर तिलकका विष्णुपञ्जरन्यासके द्वारा प्रणवपूर्वक, सबिन्दु द्वादश स्वरवर्ण और द्वादश आदित्य नामके साथ द्वादश-केशव आदि विष्णु नामसे नामका न्यास करें। यथा—मूलमें द्रष्टव्य है। साम्प्रदायिक

+ द्वादशादित्याः—

धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोऽशुर्भगस्तथा।
विवस्वानिन्द्रः पुषा च पर्ज्जन्यत्वष्ट्रविष्णवः।। इति।।

एवं न्यासं समाचर्य्य सम्प्रदायानुसारतः।
न्यसेत् किरीटमन्त्रञ्च मुर्द्धनि सर्व्वार्थसिद्धये।।

तत् प्रक्षालनतोयेन यथा—ॐ किरीट-केयूर-हार-मकर-कुण्डल-चक्र-शङ्ख-गदा-पद्महस्त-पीताम्बरधर-श्रीवत्साङ्कित वक्षःस्थल श्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्दीप्तिकराय सहस्त्रादित्यतेजसे नमो नमः।।३७।।

ततश्चतुर्थसंस्कारः—नाम-मुद्रादिधारणम्

अत्र नामपदेन हरेकृष्णादि-हरिनामरूपमन्त्रग्रहणम्, तथा श्रीहरिनामादि-भगवन्नाम्ना निर्म्मितमुद्रादिधारणञ्च विहितम्। यदुक्तं प्राचीनैः,—

अवाप्तपञ्चसंस्कारो लब्धद्विविधभक्तिकः।
साक्षात्कृत्य हरिं तस्य धाम्नि नित्यं प्रमोदते।।

पञ्चसंस्कारा यथा,—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तिहेतवः।।

विधिके अनुसार इस प्रकार न्यासकर सर्वार्थ सिद्धिके लिए मस्तकमें किरीटमन्त्रका न्यास करें। मूलमें कहे गये 'ॐ किरीट-केयूर' इत्यादि मन्त्र पाठपूर्वक प्रक्षालन जल मस्तकपर धारण करें।।३७।।

अतःपर चतुर्थ संस्कार—नाम मुद्रादि धारण। यहाँ नामका तात्पर्य हरे कृष्ण इत्यादि मन्त्र ग्रहणसे है; हरिनामादि भगवन्नामकी निर्मित मुद्रा धारण करना भी विहित है। प्राचीन आचार्योंने कहा है कि जिन्होंने पंचसंस्कारमें दीक्षित वैधी और रागानुगा दोनों प्रकारकी भक्तियोंका अर्जन किया है, वे हरिका साक्षात्‌रूपमें दर्शन लाभकर उनके नित्य धाममें आनन्द प्राप्त करते हैं। पंचसंस्कार ये हैं—ताप, पुण्ड्र, नाम, मन्त्र, और याग। ये पाँच संस्कार परम ऐकान्तिकताकी प्राप्तिके लिए होते हैं। यहाँ 'ताप' से गरम किये हुए चक्रादि मुद्रा धारणसे है; इसके द्वारा

तापोऽत्र तप्तचक्रादि-मुद्राधारणमुच्यते।
तेनैव हरिनामादि-मुद्रा चाप्युपलक्ष्यते।।

तथाच स्मृतौ,—

हरिनामाक्षरैर्गात्रमङ्कयेच्चन्दनादिभिः।
स लोकपावनो भूत्वा तस्य लोकमवाप्नुयात्।।
श्रीगोपीचन्दनेनैव चक्रादीनि बुधोऽन्वहम्।।
धारयेच्छयनादौ च तप्तानि किल तानि हि।।
श्रीमन्नारायणाख्यस्य मन्त्रदीक्षेयमीदृशी।
मत्स्यादीनां तथा तत्तन्नाम्नास्त्रमुद्रिका शुभा।।
श्रीकृष्णोपासकानन्तकार्ष्णानां शीतमुद्रिका।
गोपीमृदादिना धार्य्या श्रीकृष्णनामनिर्म्मिता।।

ताप इति पाद्मोत्तरखण्डादौ। अमी तापादयः संस्काराः पञ्च। तापादीन् व्याचष्टे तेनेति,—तापादिधारणेन च तप्तचक्रादिधृतिं

हरिनाम आदिकी मुद्रा भी उपलक्षित है। स्मृतिमें ऐसा ही लिखा है,—जो चन्दनादिके द्वारा हरिनामाक्षरकी मुद्रा अंगमें धारण करते हैं, वे लोक पावन होकर हरिके धामको प्राप्त होते हैं। विद्वान् व्यक्ति प्रतिदिन गोपीचन्दनके द्वारा अपने श्रीअंगमें चक्रादि धारण करें। इन चक्रादि तप्त मुद्राओंको शयनादि द्वादशीमें विशेषरूपसे धारण करना कर्त्तव्य है। श्रीमन्नारायणके मन्त्रमें दीक्षित होकर इस प्रकार तप्त मुद्रादि धारण करनेकी विधि है। श्रीमत्स्यादि अवतारोंके मन्त्र-दीक्षामें भी उन-उन भगवदवतारोंके शुभ नाम और अस्त्रोंकी मुद्रा धारण करनेकी भी विधि है। किन्तु श्रीकृष्णोपासक सभी कृष्णभक्तोंके लिए गोपीचन्दनके द्वारा श्रीकृष्णनामकी शीतल मुद्रा धारण करना ही हितकर और विधिपूर्वक है।

'तापः पुण्ड्रं' इत्यादि वाक्य पद्मपुराणके उत्तर खण्ड आदि शास्त्रोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। इन ताप आदि संस्कारोंका नाम ही पंचसंस्कार है। 'तापोऽत्र' इत्यादि श्लोकमें तापादिकी व्याख्या समझनी चाहिए। 'तेन'

कलिमलिनमनसां दुष्करं मन्वानः पतितानामुद्धिधीर्षुर्भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यश्चन्दनादिना भगवन्नाममुद्रादिधृतिं प्राचामपि स्वीकृतामुपादीक्षत्। सा पञ्चसंस्कारवाक्ये तप्तचक्रादिधारण-नोपलक्षितेति भावः। पुण्ड्रमिति हरिमन्दिरादितिलकम्। तिलकं तमालपत्रचित्रयुक्तं विशेषकं पुण्ड्रमिति हलायुधः। यद्यपि शयनादौ तानि चक्रादीनि तप्तानीत्ययुक्तं तथापि शिष्टाचारा-भावान्न व्यवह्रियते।।३८।।

ततः पञ्चमः संस्कारः—कौपीनशुद्धिः

कौपीनकरणप्रमाणं यथा—तत्रैव,

स्तनात् स्तनान्तरं प्रस्थं दीर्घन्तु कटि-वेष्टणम्।
ग्रन्थ्यर्थं मुष्टियुगलं पट्टयुगविनिर्म्मितम्।।

इत्यादि वाक्यका तात्पर्य यह है कि—तापादि-धारण करनेकी विधि होनेके कारण तप्तचक्रमुद्रादि धारण कलिकलुषित चित्तवाले व्यक्तियोंके लिए अत्यन्त कष्टकर समझकर भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेवने पतित जीवोंके उद्धारकी अभिलाषासे प्राचीन आचार्योंके भी स्वीकृत चन्दनादि द्वारा भगवान्की नाम-मुद्रादि धारण करनेका विधान किया है। ऐसा मंचसंस्कार वाक्यमें तप्तचक्रादि धारण शब्दसे उपलक्षित हो रहा है। 'पुण्ड्र' का अर्थ हरिमन्दिर आदि तिलक रचनासे है हलायुध कहते हैं—तमाल पत्रके चित्रयुक्त तिलकका पर्याय-शब्द विशेषक पुण्ड्र है। यद्यपि शयनादि द्वादश तिथिमें तप्त चक्रादि धारण करनेका विधान है, तथापि वर्तमान समयमें शिष्टाचारके अभावके कारण उसका व्यवहार नहीं देखा जाता है।।३८।।

अनन्तर पञ्चम संस्कार—कौपीनकी शुद्धि। कौपीन प्रस्तुत करनेका प्रमाण शास्त्रोंमें देखा जाता है। शास्त्रोंमें दो खण्ड वस्त्रके द्वारा कौपीन प्रस्तुत करनेका उल्लेख है। उसकी चौड़ाई—एक स्तनसे दूसरे स्तन तक होनी चाहिए। उसकी लम्बाई—कमरके घेरेके परिमाण तथा ग्रन्थि देनेके लिए दो मुष्टि और अधिक होनी चाहिए। अब कौपीनके अधिष्ठात्री-

कौपीनस्याधिष्ठातृदेवतामाह,—

लज्जारूपा भगवती कौपीनं भवतारणम्।
डोरश्चानन्तरूपोऽसौ धारणे शुभदायकः।।
भावभक्तिजनैर्धार्य्यं कौपीनं योनिसम्मतम्।
दक्षिणग्रन्थिसंयुक्तम् अनन्तरूपडोरकम्।।
चतुर्द्दशमुष्टिदीर्घं प्रस्थं प्रादेशमात्रकम्।
कृत्वा तु तत् प्रयत्नेन संस्कारं कारयेत्ततः।।
कौपीनं पृथ्वीरूपोक्तं डोरश्चानन्त एव ही ।
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चैव वासुकी पवनोऽनलः।।
सोमः शुक्रः सुराचार्य्याः कौपीने नव देवताः।
कैश्चिदत्र त्रयः प्रोक्ता ब्रह्माद्या नापराः किल।।
ग्रन्थिमध्ये स्थितो विष्णुः पार्श्वे च ब्रह्मरुद्रकौ।
बहिर्व्वासो विष्णुशक्तिस्तयाच्छाद्यं सुयत्नतः।।
एतच्च कौपीनं डोरं म्रक्षितं हरिचन्दनैः।
चन्दनेनापि संप्रोक्ष्य शुद्ध्यर्थं शोधयेत् पुनः।।

देवताके सम्बन्धमें कहा जा रहा है,—लज्जारूपा भगवती भवतारणी कौपीन और अनन्तरूपी डोर धारण करना शुभप्रद है। भाव भक्तिके अधिकारी व्यक्ति योनि-सम्मत दक्षिण ग्रन्थियुक्त अनन्तरूपी डोरके सहित कौपीन धारण करेंगे। चौदह मुष्टि दीर्घ प्रदेश प्रमाण चौड़ी कौपीन सावधानीसे प्रस्तुतकर उसका संस्कार करें। कौपीन पृथ्वी स्वरूप है, तथा डोर अनन्तस्वरूप है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वासुकी, पवन, अग्नि, चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति—ये नौ देवता कौपीनमें विराजमान रहते हैं। किसी-किसीके मतसे ब्रह्मादि तीन देवता कौपीनमें अवस्थित रहते हैं, दूसरे देवता नहीं। ग्रन्थिमें विष्णु तथा दोनों ओर ब्रह्मा और रुद्र अवस्थित रहते हैं। बहिर्वास—बहिर्वास विष्णु-शक्ति हैं। उसके द्वारा कौपीनको सावधनीसे आच्छादन करें। कौपीन और डोरको हरिचन्दन लगाकर शुद्धिके लिए

"गङ्गादिसर्व्वतीर्थानि यानि लोकगतानि तु।
कौपीनं परिशुध्यन्तु सर्व्वसिद्धिकराणि भोः।।"

ऋक्परिशिष्टे वैराग्यखण्डे च सपरिकरं कौपीनं निर्द्दिष्टम्—

कौपीनं युगलं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम्।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत्।।

वासो बहिर्व्वासः। शरीरत्राणेति—झुलि-शिरस्यवसनमपीतिज्ञेयम्।

'ॐ कौपीनशुद्धिमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, हंसो देवता, ब्रह्म बीजं, वैष्णवी शक्तिः, कौपीनशुद्धिविधानार्थं जपे विनियोगः, ॐ कौपीनाधिष्ठातृलज्जानन्तरूपाय नमः'—इति दशधा जप्त्वा, पुनः 'एते गन्धपुष्पे ॐ कौपीनाधिष्ठातृलज्जानन्तरूपाय नमः' इति सम्पूज्य प्रतिष्ठां कुर्य्यात्।—ॐ कौपीनाधिष्ठातृदेवते इहागच्छ इहागच्छ, इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि, इहावरुन्त्स्व इहावरुन्त्स्व, इह परमीकुरु इह परमीकुरु, इह कौपीनेऽधिष्ठानं कुरु स्वाहा।।' ३६।।

चन्दनसे प्रोक्षण कर 'गङ्गादि सर्वतिर्थानि' इत्यादि मूलमें कहे गये मन्त्रसे पुनः शोधन करें।

ऋक्-परिशिष्टके वैराग्य खण्डमें सपरिकर कौपीनका निर्देश है,—कौपीन, दो वस्त्र, शीतोपयोगी कन्था धारण करें, शरीरकी रक्षाके लिए पादुका धारण करना चाहिए। 'वासः'—शब्दका तात्पर्य बहिर्वाससे है। 'शरीरत्राण' इत्यादि पदसे झोली और शरीरका वस्त्र भी समझना होगा।

मूलमें कहे गये मन्त्रसे कौपीनकी पूजा और प्रतिष्ठा करनी चाहिए।।।३६।।

तत्पश्चात् षष्ठ संस्कार प्राणप्रतिष्ठा। पूर्वकी भाँति सब प्रकारसे संशोधनकर प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए। प्राण प्रतिष्ठाके पश्चात् अपने इष्टदेवको उसे समर्पण करें। 'तत्सर्वं' इस पदसे कौपीनके अंगीभूत

ततः षष्ठः संस्कारः—प्राणप्रतिष्ठा

एवं संशोध्य तत् सर्व्वं प्राणप्रतिष्ठां कारयेत्, ततः प्राणप्रतिष्ठानन्तरं स्वेष्टदेवेऽस्य समर्पणम्। तत् सर्व्वमित्यनेन कौपीनाङ्गभूत-दण्डादिकमपि संगृहीतं, तद् यथा—

पालाशं वैणवं बिल्वं त्रिदण्डमुपजीवयेत्। +
तेषामेकतरं किम्वा वैणं वापि समाचरेत्।।
कमण्डलुं तथाऽन्यद्वा तुम्बि-काय्र्यादिनिर्म्मितम्।
एतदन्यच्च तत्सर्व्वं विपत्तौ च समाचरेत्।।

कौपीनाङ्गभूतत्वादेतेषां शुद्धिः प्राणप्रतिष्ठा च कौपीनस्येव तत्तत्करणेन सिध्यतीति ज्ञेयम्।

दण्ड आदिकी व्यवस्था समझनी चाहिए। जैसे पलाश, वेणु और बेल इन तीनोंके एक-एक दण्ड एकत्र मिलित त्रिदण्ड ग्रहण करना चाहिए अथवा इनमेंसे किसी भी एकका अथवा केवल बाँसका ही त्रिदण्ड ग्रहण करना चाहिए। उसी प्रकार कमण्डलु, तूँबी या काठके द्वारा निर्मित जलपात्र ग्रहण करना चाहिए। विपदकालमें ये सब दूसरे रूपमें किये जा सकते हैं।

कौपीनकी भाँति कौपीनके अंगीभूत इन सबकी शुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा उसी-उसी अनुष्ठानके द्वारा सिद्ध होती है, ऐसा समझना चाहिए।

+ प्रभु बले—"जाहे सर्वदेव-अधिष्ठान।
से तोमार मते कि हईल बाँस-खान।।"

(चै. भा. आ. २/२२५)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने कहा—दण्डमें सभी देवताओंका अधिष्ठान है किन्तु तुम उसे केवल बाँसका डण्डा समझते हो।

उसकी विवृत्ति—दण्डको गुणावतारकी अर्चामूर्ति समझना चाहिए। अतः उसे परम पवित्र, चिन्मय और पूजनीय मानना चाहिए।

अथ प्राणप्रतिष्ठामाह,—

'ॐ अस्य कौपीन-प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य पुलस्त्य ऋषिः गायत्री छन्दः सावित्री देवता, कामो बीजं, वाराही शक्तिः, कौपीनप्रतिष्ठाजपे विनियोगः, वर्णधर्म्मादिविहीनकारिणि कौपीनेऽस्मिन् ॐ आं ह्रीं क्रौं ह्रीं सर्व्वे प्राणाः सर्व्वानीन्द्रियाणि च महात्मना सुखं प्रतिष्ठन्तु स्वाहा'—इति अष्टोत्तरदशधा जप्त्वा, पश्चात् 'ॐ आं क्रौं ह्रीं सुसिद्धाय कौपीनाय एतद् गन्धपुष्पादिकं नमोऽस्तु स्वाहा' इति।

कौपीनधार्य्याधिकारी यथा,—

विजितषड्गुणो + यस्तु दम्भहिंसादिवर्ज्जितः।
मैत्र-कारुण्यशीलश्च विगतेच्छो जितेन्द्रियः॥
गृहीतविष्णुदीक्षाको विष्णुभक्त्यादिसाधकः।
तस्मै देयं प्रयत्नेन याचिते सति साधुभिः॥

विपक्षे च,—

दम्भाय भक्तिहीनाय शठाय परहिंसके।
न दातव्यं न दातव्यं दत्ते तु धर्म्मनाशनम्॥

अनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा—मूलमें कहे गये विधान और मन्त्रसे कौपीन आदिकी प्राण प्रतिष्ठाकर उसका अर्चन करे।

कौपीन धारण करनेके अधिकारीका विचार,—षड्गुणजयी, दम्भहिंसादि, रहित, मैत्र और कारुण्य गुणोंसे परिपूर्ण, निष्काम, जितेन्द्रिय, विष्णुमन्त्रमें दीक्षित एवं भगवद्भक्ति आदिके साधनमें तत्पर व्यक्तिको उसकी प्रार्थना किये जानेपर सावधानीसे कौपीन दिया जा सकता है। निषेध पक्षमें—दाम्भिक, भक्तिहीन, शठ, परहिंसक व्यक्तियोंको कभी भी

+ क्षुत्-पिपासे शोकमोहो जरामृत्यु षडूर्म्मयः। (भा. ११/११/३१ स्वामी-टीका)

एतद्वर्ज्जनवत् दोषयुक्-कौपीनादिवर्ज्जनमपि कुर्य्यात्,—

कुत्सितं मलिनं वासो वर्ज्जनीयं विशेषतः।
काषायरहितं वस्त्रं बहिर्व्वासादिकं शुभम्।।

कौपीनडोरं सूचीवेधयुक्तं कषायितं तन्मलिनञ्च वासः।
एतन्न पूतं मुनिभिः प्रगीतं धृत्वा भवेत् शोभनकाचिकः परम्।।

यद्यप्यत्र सन्न्यासार्थं दशसंस्कारमुक्तं तथापि तापादि-यागान्तं दीक्षाङ्गभूतं, तदपरञ्च सन्न्यासाङ्गभूतम्। तस्मादेव पूर्व्वप्राप्तपञ्चसंस्कारं वा तत्कालगृहीतपञ्चसंस्कारं वा योगपट्टादिकं धारयेत्।

कौपीन नहीं देनी चाहिए। ऐसे लोगोंको कौपीन देनेसे गुरुके धर्मकी हानि होती है।

कौपीनधारी संन्यासी दो प्रकारके होते हैं विद्वत्संन्यासी और विवित्सासंन्यासी। जिन्होंने स्वाभाविक रूपसे षड्गुणोंको जीत लिया है, वे विद्वत् संन्यासी है। उनका कौपीन सनातन गोस्वामी और दास गोस्वामीकी भाँति अत्यन्त सहज है। जो पञ्चसंस्कार प्राप्तकर साधनके द्वारा दम्भ त्यागकर धीरे-धीरे भक्तिका साधन कर रहे हैं, सरलता अर्जन और परहिंसा वर्जनकर रहे हैं तथा अपने वैराग्य पिपासाको चरितार्थ करनेके लिए शास्त्रोक्त विधियोंके द्वारा कौपीन धारण करते हैं, वे विवित्सा-संन्यासी हैं। ऐसे विवित्सा-संन्यासी क्रमोन्नतिके द्वारा परमहंसत्व लाभकर सकते हैं—इसलिए इनको विवित्सा संन्यासी कहा जाता है। अभक्त और अजितेन्द्रिय व्यक्तिको कौपीन ग्रहण नहीं करना चाहिए, अन्यथा महान अनर्थ उत्पन्न होता है।

इस प्रकार अनधिकारीके वर्जनकी भाँति दोषयुक्त कौपीनादि भी वर्जनीय है। मैलाकुचला फटा हुआ वस्त्र, काषाय (गेरुआ रंग) रहित वस्त्र और अत्यन्त सुन्दर बहिर्वासका विशेषरूपसे वर्जन करें। सूचिविद्ध और काषायित डोर-कौपीन, मलिन वस्त्र—इन सबको मुनियोंने अपवित्र कहा है। ऐसे वस्त्र धारण करनेसे शोभनकाचिक (सुन्दर पोषाकधारी

सन्न्यासार्थं प्रार्थनं, यथा—

कौपीनं ब्रह्मनिर्मितमनन्तात् प्राप्तवांश्छिवः।
ततोऽस्मान्नारदः प्राप्तो महायोगी भवेत् स्वयम्॥
शौनकादि ऋषिस्तस्मात्ततः केशवभारती।
तस्मात् प्राप्तो गौरचन्द्रः स ददौ भक्तशाखिनि॥
एवं परम्पराप्राप्तं शाखाशाखानुभेदतः।
धारयित्वा महायोगी भवेत् किल न संशयः॥
"मायातरङ्गे संसारे पतितं मां समुद्धरः।
कौपीनं देहि शुद्ध्यर्थं भवतापनिवारणम्॥
कौपीनग्रहणेनाहं पूतोऽस्मीत्यचिरादिह।"
प्रैषेत्युच्चारणात् पूर्व्वं त्यक्तं किञ्चिन्न गृह्णीयात्॥

इत्युक्तदिशा "प्रैष" इत्युच्चारयित्वा योगपट्टादिकं ग्राहयेदेव। 'भो गुरो ! भिक्षूपयोगं योगपट्टादिकं मां ग्राहय' इति प्रार्थितस्तं

अभिनेता) होना होता है। यह दूषणीय है।

यद्यपि यहाँ संन्यासके लिए दस संस्कारका विधान दिया गया है, तथापि उनमेंसे तापसे याग पर्यन्त पाँच संस्कार ही दीक्षाके अंगभूत हैं। इसलिए पहले पंचसंस्कार प्राप्त अथवा उसी समय पंचसंस्कार प्राप्त व्यक्तिको योगपट्ट इत्यादि देना चाहिए।

संन्यासके लिए प्रार्थना, यथा—हे गुरुदेव ! श्रीसदाशिवने अनन्तदेवके द्वारा ब्रह्मनिर्मित[1] कौपीनको प्राप्त किया था। श्रीसदाशिवसे कौपीन प्राप्तकर देवर्षि नारद स्वयं महायोगी हुए थे। उसके पश्चात् शौनकादि ऋषि परम्परासे केशव भारती प्राप्त हुए। अनन्तर श्रीगौरसुन्दरने केशव भारतीसे प्राप्त होकर अपने भक्तवृन्द (अनुगत भक्तों) को दिया। इस प्रकार शाखानुशाखा क्रमसे परम्पराप्राप्त कौपीन धारणकर निःसन्देह रूपमें महायोगी हुआ जा सकता है। "मायातरंगमय घोर संसारमें पतित मेरा उद्धार करें। मेरा संशोधन करनेके लिए मुझे संसार-ताप निवारक कौपीन

वदेत्—"यद्येवं तर्हि 'प्रैष' इति बारत्रयं पठस्व भद्र।" "प्रैषोऽस्मि" इति त्रिबारमुक्त्वा करपुटाञ्जलीभूय स्थितेन तेन गुर्व्वादिस्वेष्ट-देवतान्तान् सर्व्वान् पूजयित्वा,—ततः स्वेष्टदेवात् पूर्व्वन्यस्तं कौपीनादिकं संप्रार्थ्य, संग्राह्य, तदानीं तत्र सन्न्यासिनः स्पर्शयित्वा च प्रार्थकं धारयेत्।

धारणानन्तरञ्च—

'ॐ क्लीं गोपीभावाश्रयाय स्वाहा' इति सन्यासमन्त्रं दद्यात्। ततःपरं त्रिगृहं पञ्चगृहं सप्तगृहं वा भिक्षयेत्। भिक्षा यथा,—प्रथमतो गृहिणो गृहं गत्वा—'भो मातर्भगवति भिक्षां देहि' इत्युक्त्वा भिक्षां कृत्वा प्रत्यागत्य, प्राप्तं यद्भैक्ष्यं वस्तु तत् सन्न्यासदात्रे गुरवे समर्प्य यथावदाश्रमधर्म्मान् कुर्य्यात्।।४०।।

प्रदान करें। कौपीन ग्रहणकर इस संसारमें मैं शीघ्र ही पवित्र हो सकूँ।" 'प्रैष'-वाक्य उच्चारण करनेसे पहले परित्याग की हुई वस्तुओंमें से कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। उक्त निर्देशके अनुसार गुरु 'प्रैष'-वाक्य उच्चारण कराकर योगपट्ट इत्यादि ग्रहण करायेंगे। "हे गुरुदेव ! भिक्षूपयोगी योगपट्ट इत्यादि मुझे प्रदान करें"—शिष्यके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गुरु कहेंगे,—"यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है, तब हे भद्र ! तीन बार प्रैष-प्रैष बोलो।" शिष्य 'प्रैषोऽस्मि' यह वाक्य तीन बार उच्चारणकर हाथ जोड़कर खड़ा रहे। गुरुदेव उसके द्वारा गुरुसे आरम्भकर अपने इष्टदेव तक सबकी पूजा करायेंगे। अनन्तर पूर्व स्थापित कौपीन इत्यादि अपने इष्टदेवके निकट प्रार्थनाकराकर ग्रहण करायेंगे एवं वहाँके संन्यासियोंसे स्पर्श कराकरके प्रार्थीको पहनायेंगे।

कौपीन धारणके पश्चात् मूलमें कहे गये संन्यास मन्त्रको प्रदान करेंगे। तत्पश्चात् तीन, पाँच या सात गृहोंसे भिक्षा करायेंगे। भिक्षाकी विधि—पहले गृहस्थके घरमें जाकर 'मातः भगवती ! भिक्षा दीजिए' ऐसा कहकरके भिक्षा करें। पुनः लौटकर भिक्षामें पायी गयी वस्तुओंको संन्यास-

ततः सप्तमः संस्कारः—नामकरणम्

नामात्र कथितं सद्भि हरेर्भृत्यत्वबोधकम्।
हरिदासादिकमिति कृष्णदासादिकं तथा।।
'नित्यानन्दपदद्वन्द्वं येषां हृत्कर्णिकालये।
तेषां दासानुदासोऽहं, प्रसीदन्तु सदैव हि।।'
गुणज्ञब्राह्मणो दासश्चुल्लीभट्ट प्रयोगतः।
दीयतेऽस्मै, दासृ-दाने इति रूपं विदुर्बुधाः।।
श्रीकृष्णसेवी विप्रस्तु दासाख्यं धारयेत् सुधीः।
सनत्कुमारतन्त्रोक्तत्वादत्यन्तञ्च शोभनम्।।४१।।

ततः अष्टमः संस्कारः—विष्णुमन्त्रधारणम्

न्यास प्रकरणे प्राज्ञः सन्न्यासग्राहकश्च यः।
यच्छेदष्टादशार्णन्तु वामकर्णे भवान्तकम्।।

दाता गुरुको समर्पणपूर्वक संन्यास आश्रमके धर्मका आचरण करें।।४०।।

अनन्तर सप्तम संस्कार—नामकरण। इस विषयमें साधुगण श्रीहरिदास, श्रीकृष्णदास इत्यादि नामोंका उपदेश देंगे। 'जिनके हृदय कमलमें श्रीनित्यानन्दके श्रीचरणयुगल नित्य विराजित हैं, मैं उनका दासानुदास हूँ, वे सदासर्वदा हमारे प्रति प्रसन्न हो—यही नामका तात्पर्य है। चुल्लीभट्टके प्रयोगानुसार गुणज्ञ ब्राह्मणकी दास उपाधि होती है। दासृ धातुका अर्थ—दान करनेसे है, जिसको दान किया जाय—इस अर्थमें दास—शब्दका पण्डितोंने ऐसा ही अर्थ निरुपित किया है। श्रीकृष्ण-सेवक सुधी-ब्राह्मण दास पदवी ग्रहण करेंगे, क्योंकि यह सनत्कुमार तन्त्र सम्मत है, एवं अत्यन्त शोभनीय है।।४१।।

तात्पर्य यह है कि—कलिकालमें ब्राह्मणलोग ब्रह्मका चित्स्वरूप धारण नहीं कर पानेके कारण ब्रह्मका दासत्व स्वीकार नहीं करते। किन्तु चित् तत्त्वको जाननेवाले ब्राह्मण भगवद्भक्तिको ग्रहणकर अपनेको भगवद्दासत्वके रूपमें अभिषिक्त करते हैं। जीवमात्र ही कृष्णके दास हैं।

मन्त्रो यथा,—

"क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।"
गोपीभावाश्रितो मन्त्रः सन्न्यासे शक्तिबोधकः।
योन्याकृतिधारणेन तद्भावसाधको यतः।।
'श्रीकृष्णतोषमात्रार्थं गोपीभावसमन्वितम्।
एतद्धर्म्मं समाश्रितो' ब्रुयाद्बारत्रयं जनः।।४२।।

ततो नवमः संस्कार अच्युतगोत्रस्वीकरणं (तच्च तिलकादि-धारणेन निर्णेयम्), सुसिद्ध आश्रमधर्म्मे तु सति 'ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः। सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः।। इति (भाः ११/१८/२८) वचनात् चतुरा-श्रमातीतावधूतापरपर्य्यायपरमहंसो भवेदिति चरमः। 'मद्भक्तः

संन्यास ग्रहण करनेमें भी दासत्व ग्रहण करनेके अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति नहीं है।

तत्पश्चात् अष्टम् संस्कार—विष्णुमन्त्र-धारण। संन्यास विधिमें कुशल संन्यास-प्रदाताचार्य शिष्यके बायें कानमें संसार नाशक अष्टदशाक्षर मन्त्र प्रदान करेंगे। मन्त्र मूलमें द्रष्टव्य है। गोपीभावाश्रित संन्यास मन्त्र शक्ति बोधक है, क्योंकि यह कौपीन धारणके द्वारा गोपीभावका साधन कर देता है। 'केवल श्रीकृष्णतोषणके लिए ही (कृष्ण प्रीतिके लिए ही) मैंने गोपीभावाश्रित इस संन्यास-धर्मका आश्रय ग्रहण किया है'—संन्यास ग्रहणकारी यह तीन बार कहेंगे।।४२।।

तत्पश्चात् नवम् संस्कार—अच्युत-गोत्र स्वीकार (वह तिलक मालादि धारण द्वारा निरूपणीय है) । संन्यासाश्रम धर्म सुसिद्ध होने पर 'विरक्त, ज्ञानी अथवा निरपेक्ष मेरे भक्त आश्रम-चिह्नसहित आश्रम धर्मका त्यागकर विधि-निषेधके अतीत होकर विचरण करते हैं'—इस भागवत प्रमाणके अनुसार चारों आश्रमोंके अतीत अवधूत परमहंस होवेंगे, यही चरम अवस्था है । 'मेरे भक्त स्वेच्छासे विचरण करते हैं,—इस प्रमाणसे भी ऐसा ही

स्वेच्छया चरे'दित्यस्मादपीति। किन्तु सामान्यवैष्णवचिह्नञ्च मालामुद्रातिलकादिकम् अनापदि न त्यजेदेव।

यज्ञोपवीतवत् धार्य्या तुलसीकाष्ठमालिका।
तुलसीमालिकोरस्कं न स्पृशेयुर्यमोद्भटाः।।
ये कण्ठलग्नतुलसी-नलिनाक्षमाला
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः।
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्रा-
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति।।

विपक्षे दोषश्च—

न धारयन्ति ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः।
नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः।।

निरूपित होता है। किन्तु परमहंसावस्थामें भी माला, मुद्रा, तिलकादि साधारण वैष्णव चिह्नोंको आपात्कालको छोड़कर कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।

तुलसीकाष्ठकी मालिका यज्ञोपवीतकी भाँति सदासर्वदा कण्ठमें धारण करना कर्त्तव्य है। जिनके कण्ठमें तुलसी माला होती है, यमदूत उसको स्पर्श नहीं कर सकते हैं। तुलसी और पद्मबीजकी माला जिनके कण्ठमें रहती है, जिनके ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक शोभा पाता है, जिनके बाहुमूलमें शंख, चक्रके चिह्न अंकित रहते हैं, ऐसे वैष्णव जगत्को शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं। पक्षान्तरमें जो हेतुवादी पापबुद्धिवाले व्यक्ति तुलसी माला धारण नहीं करते, वे हरिके क्रोधाग्निमें भस्म होकर नरकसे कभी उद्धार नहीं हो पाते।

विशेषतः मध्याह्नमें आह्निक इत्यादि कार्योंमें तथा हरिकी पूजा आदिमें पञ्चमाला धारण करना आवश्यक है। यथा—गुञ्जा, धात्री (आमलकी), पद्मबीज, तुलसी, पट्टडोर (पाटकी रस्सी); इनके द्वारा ग्रथित मालाको सुधी व्यक्ति आह्निक कालमें धारण करें।

विशेषतो माध्याह्नाह्निकादौ हरिपूजादावावश्यकमेव पञ्च मालाधारणम्। यथा,—

गुञ्जा धात्री च पद्माक्षं श्यामा च पट्टडोरिका।
अमीभिर्निर्मितां मालामाह्निके धारयेत् सुधीः।।इति।।
सन्न्यासधर्म्महीनस्तु न परमहंसको भवेत्।
अस्माद्धर्म्मात् परो धर्म्मो नास्ति सद्विदुषां मतः।।
स्वसुखोत्पादिका भक्तिर्येषां कृष्णे न विद्यते।
तेषां यो धर्म्मसम्पन्नः स स्यात् परमहंसकः।।

किन्त्वत्रैव हरिभक्तानामच्युतगोत्रत्वं मुख्यम्, अन्यत्र गौणमित्यपि बोद्धव्यम्।

"यद् गोत्रमाश्रितेनापि कृतं कर्म्म शुभाशुभम्।
अधुना तत् परित्यज्य भवाम्यच्युतगोत्रकः।।
पितृगोत्राद् यथा कन्या स्वामिगोत्रेण गोत्रिता।
तथैवाच्युतगोत्रेण भवाम्यच्युतगोत्रकः।।

संन्यास-विहीन व्यक्ति कभी भी परमहंस नहीं हो सकता। सज्जन एवं विज्ञ व्यक्तियोंके विचारसे संन्यास धर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं है। (श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें जिनकी कृष्णप्रीतिके लिए ही भक्ति है), उनमेंसे जो संन्यासधर्म सम्पन्न हैं, वे ही परमहंस हो सकते हैं। यही पर हरिभक्तोंका मुख्यतः अच्युत गोत्रत्व है, दूसरोंका गौण है—यहीं समझना चाहिए। "जिस गोत्रको ग्रहणकर अब तक मैंने शुभ या अशुभ जो कुछ भी किया है, उसे सम्पूर्णरूपसे छोड़कर अब अच्युत गोत्रका हुआ। कन्या जिस प्रकारसे पितृगोत्रको त्यागकर स्वामीके गोत्रमें गोत्रित होती है, उसी प्रकार मैं भी अच्युत गोत्रमें प्रवेश करनेके कारण अच्युत गोत्रीय हुआ। ॐ अच्युत गोत्राय स्वाहा, ॐ अच्युतगोत्रोऽहमस्मि" ऐसा कहें। अच्युत गोत्रकी महिमा भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें इस प्रकारसे है—केवलमात्र ब्राह्मण वंश और भगवत् सम्बन्धी विष्णु भक्तोंको छोड़कर

'ॐ अच्युतगोत्राय स्वाहा' इति, 'अच्युतगोत्रोऽहमस्मि' ।।"—इति वदेच्च।

अच्युतगोत्रस्य महिमा, यथा, चतुर्थ स्कन्धे—

सर्व्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक्।
अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः।।४३।।

ततो दशम संस्कारः—यागः (शालग्रामार्च्चनम्)

स हि श्रीहरिपूजनप्रकारः सर्व्वाश्रमगतः साधारणधर्म्म एव। इति।।४४।।

गृहीतसम्प्रदायिसन्न्यासवैष्णवानां पञ्चत्वप्राप्तौ शरीरत्यागे तु तदानीं देहे समाधिमन्त्रं लिखेत्—

'ॐ क्लीं श्रीं ह्रीं श्रीं लवणमृद्युजि भूवि श्वभ्रे स्वाहा।'

पश्चात्तीर्थोदके भूविवरे तद्देहं स्थापयेत्। विवरपरिमाणञ्च पादाधिकपुरुषपरिमितम्। दहेच्चेत् तत्, तथापि किञ्चित् तदस्थ्यादिकं तीर्थादौ समाज-संज्ञके भुविवरे संस्थापयेच्च,—'निवासो द्वारकादौ च गङ्गादेरपि सन्निधौ' इत्यनुसारेण।।४५।।

उनका सातों द्वीपोंके सभी पुरुषों पर अखण्ड एवं अगाध शासन था।।४३।।

तत्पश्चात् दशम संस्कार-याग (श्रीशालग्रामार्चन)। श्रीहरिका अर्चन ही याग है। हरि-पूजा विधि सर्वाश्रमगत साधारण धर्म है।।४४।।

साम्प्रदायिक-संन्यासी वैष्णवोंके शरीर-त्याग करनेके पश्चात् उनके शरीरपर समाधि मन्त्र लिखें। मन्त्र मूलमें द्रष्टव्य है। तत्पश्चात् तीर्थके जलसे भूगर्भमें उस देहको स्थापित करें। समाधिके लिए गड्ढेका परिमाण—पुरुषकी लम्बाईसे एक पाद भाग अधिक रहना चाहिए। यदि देहको दग्ध किया जाय तब भी 'द्वारकादि धाममें, गंगा इत्यादिके निकट वास करना कर्त्तव्य है'—इस वाक्यके अनुसार उनकी अस्थि इत्यादि तीर्थोंमें तथा समाज-नामक भूगर्भमें स्थापित करें।।४५।।

संस्कार-दीपिकानाम्नी सन्न्यासार्था सतां मता।
निर्म्मिता गौरदासानामेकान्तधर्म्मसिद्धये।।

इति श्रीगोपालभट्टगोस्वामि-कृता सत्क्रियासार-दीपिकान्तर्गता संस्कार-दीपिका समाप्ता।

श्रीगौरसुन्दरके दासों जैसी ऐकान्तिक धर्म सिद्धिके उद्देश्यसे साधु-सम्मत संन्यास विषयक इस 'संस्कार-दीपिका' ग्रन्थकी रचना की गयी।

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी कृत सत्क्रियासार-दीपिकाके अन्तर्गत संस्कार-दीपिका समाप्त।

महाभागवत-परमहंस ठाकुर भक्तिविनोद-कृत बंगानुवादके अनुसरणमें त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायण द्वारा हिन्दी अनुवाद समाप्त।।

[श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित शुद्ध भक्ति-ग्रन्थ]

हिन्दी-संस्करण

(१) जैव-धर्म (जीवका धर्म) (२) श्रीचैतन्य-शिक्षामृत (३) श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं-भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय-प्रमाण (४) श्रीशिक्षाष्टक (५) श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा (६) अर्चन-दीपिका (७) श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा एवं श्रीगौड़मण्डलके प्रमुख गौड़ीय-वैष्णव तीर्थ-समूह (८) भक्तितत्त्व-विवेक (९) श्रीगौड़ीय गीतिगुच्छ (१०) श्रीवैष्णव सिद्धान्त माला (११) श्रीउपदेशामृत (१२) श्रीमनः शिक्षा (१३) श्रीभक्ति-रसामृतसिन्धुबिन्दु (१४) श्रीभागवतामृतकणा (१५) श्रीउज्ज्वल नीलमणि-किरण (१६) श्रीरागवर्त्म-चंद्रिका (१७) श्रीमाधुर्यकादम्बिनी (१८) सत्क्रियासार-दीपिका एवं संस्कार-दीपिका।

बंगला-संस्करण

(१) जैव धर्म (२) श्रीमद्भगवद्गीता (३) श्रीदामोदराष्टकम् (४) मायावादेर जीवनी (५) शरणागति (६) श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा (७) प्रबन्धावली (८) प्रेम-प्रदीप (९) श्रीनवद्वीप-धाम महात्म्य (१०) श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा (११) विजय ग्राम ओ संन्यासी (१२) श्रीनवद्वीप-भाव-तरंग (१३) श्रीकृष्णप्रेमतरंगिणी (१४) सत्क्रियासार-दीपिका (१५) तत्त्वमुक्तावली (१६) श्रीमनः शिक्षा (१७) सिद्धान्तरत्नम् (१८) श्रीनवद्वीप-शतकम् (१९) श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ (२०) श्रीरूपानुगा भजन-सम्पद् (२१) अर्चन-दीपिका (२२)श्रीगौड़ीय पत्रिका (मासिक) (२३) श्रीहरिनाम-चिन्तामणि (२४) श्रीउपदेशामृतम्।

अंग्रेजी-संस्करण

1. Shri Chaitanya Mahaprabhu (His Life and Precepts) 2. The Vedanta (Its Morphology & Ontology) 3. Vaishnavism (Real & Apparent) 4. Rai Ramananda, 5. Nam Bhajan 6. The Bhagvat (Its Philosophy, Its Ethics & Theology) 7. Bhakti Rasayan 8. The Nectar of Govinda Lila 9. Going Beyond Vaikuntha 10. Venu Gita 11. Sikshastak

सत्क्रियासार- दीपिका